पुष्पांजलि

(प्रथम भाग)

साहित्य खंड

(काव्य और भाषा-कुसुमावलि)

लेखक

श्यामविहारी मिश्र

शुकदेवविहारी मिश्र

समर्पण

जिन चरणों की कृपा से ही हम लोगों को कुछ भी स्वल्प विद्या
एवं सांसारिक सुख प्राप्त हुए हैं,

जिन चरणों के प्रेम का हम लोगों के हृदयों में सदा निवास रहता
है और मरण पर्य्यन्त रहेगा,

जिन चरणों का हमें सदैव सब से बड़ा सहारा है,

जिन चरणों को ईश्वर के पश्चात् हम त्रयलोक में सबसे
बढ़ कर मानते हैं,

उन्हीं

देवतुल्य पितृवर

श्री मिश्र बालदत्तजी महाराज

के पूज्य एवं आराध्य चरणों में

यह पुष्पाञ्जलि

श्यामविहारी मिश्र और शुकदेवविहारी मिश्र द्वारा

अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति-पूर्वक

सादर समर्पित है।

संवत् १९७२

सूचीपत्र ।

काव्य-कुसुमावलि ।

पुष्पांजलि ।

भाषाकुसुमावलि ।

वक्तव्य ।

यह एक संग्रहग्रन्थ है, जैसा कि इसके नाम पुष्पांजलि से भी प्रकट होता है। इसमें तीन खंड हैं, जिनके नाम साहित्यखंड, आलोचनाखंड और शिक्षाखंड हैं। प्रथम दो खंडों में दो दो विभाग हैं और तृतीय में तीन। इन विभागों को पुष्पांजलि नाम के कारण कुसुमावलि कहा गया है। सम्भव है कि भविष्य में अन्य स्फुट लेखों के बढ़ जाने से इसका कोई और खंड निकले, किन्तु सम्प्रति यह इसी प्रकार से प्रकाशित की जाती है। प्रथम खंड (साहित्य-विभाग) में काव्य-कुसुमावलि तथा भाषा-कुसुमावलि सम्मिलित हैं। द्वितीयखंड आलोचनाविभाग में धर्म्मालोचना और काव्यालोचना को स्थान मिला है। तीसरे खंड (शिक्षा-विभाग) में समाज-कुसुमावलि, उपदेशमाला तथा स्फुट गुच्छे गूंथे गये हैं। कुल मिला कर छप्पन फूल इस पुष्पांजलि में हैं। इनके विषयों का वर्णन यहाँ कुछ अयुक्त समझ पड़ता है, क्योंकि इनके विषय में थोड़ा थोड़ा भी कहने से इस लेख का कलेवर उचित से बहुत अधिक बढ़ जावेगा, और फिर भी सिवा दोहराने के और कोई विशेष चमत्कार नहीं आता देख पड़ता। लेखों के विषय उनके नामों से बहुधा प्रकट हो जावेंगे, और जहाँ ऐसा न होगा वहाँ भी थोड़ा सा पढ़ने से विषय अवश्य ज्ञात हो जावेगा।

यह ग्रन्थ हमारे स्फुट लेखों का संग्रह है। प्रत्येक निबन्ध का निर्म्माण काल उसके सम्मुख कोष्ठक में लिख दिया गया है। इसके कुछ लेखों में हमारे ज्येष्ठ भ्राता पंडित गणेशविहारी मिश्र का भी योग है। जिन लेखों में ऐसा है उनके फुट नोटों में यह बात लिख दी गई है।

हमने इस ग्रन्थ के लेखों को काल-क्रमानुसार न रख कर विषयानुसार रक्खा है। जिन पाठकों को काल-क्रम पसन्द हो, वे दिए हुए संवतों से उसे सुगमतापूर्वक निकाल सकते हैं। हमें वैज्ञानिक शुद्धता विषय-क्रम ही में समझ पड़ी। इस अंजलि में अधिकांश लेख स्वच्छन्द हैं। जो लेख कवितादि अन्यत्र से अनुवादित हुए हैं, उनके विषय में ऐसा कह दिया गया है।

भाषा-कुसुमावलि के कुछ लेखों में पाठक महाशय साहित्य-काल-कथन की पुनरुक्ति सी पावेंगे। ये सब लेख स्वतन्त्र थे, इस लिए इनमें इतिहास का दिग्दर्शन आवश्यक था। पुष्पांजलि में उनका यह भाग निकाल कर प्रकाशित करना हमें ठीक नहीं समझ पड़ा, क्योंकि प्रत्येक लेख की पूर्णता के लिए उसका प्रत्येक अंश आवश्यक होता है। फिर वह इतिहास भी प्रत्येक लेख में भिन्न भिन्न शब्दों एवं पृथक् घटाव बढ़ाव के साथ कहा गया है। यही दशा दो चार स्थानों पर सामाजिक लेखों में भी समझ पड़ सकती है। यहाँ भी उनके शुद्ध स्वरूप स्थिर रखने के लिए उनमें घटाव बढ़ाव नहीं किया गया। काव्य-कुसुमावलि में बूँदीवारीश अपूर्ण है। इसके पूर्ण होने में अभी अधिक समय लगता देख कर हमने इसे भी स्फुट लेखों में सम्मिलित कर दिया है। हिन्दू धर्म्म को

हमने बहुत ही सूक्ष्मता से लिखा है। यदि इसके सम्बन्धी लेख में कथित विचारों एवं निष्कर्षों के प्रमाण दिये जाव, तो इसका आकार बहुत बढ़ जावे! सीतापूर के पादरी जोन्स महाशय हमारे मित्र हैं। उन्होंने सामाजिक क्लब में कई दिन तक ईसाई मत पर व्याख्यान दिये। इसी पर हमारे हिन्दू मित्रों ने हम से कहा कि हमारे तो तुम पादरी हो, सो तुम्हें भी हिन्दू मत पर व्याख्यान देना चाहिए। इसी आज्ञा को शिरोधार्य्य मान कर हमने दो दिन तक इस विषय पर व्याख्यान दिये। उनमें उक्त पादरी महाशय तथा हमारे एक मुसलमान मित्र भी सम्मिलित थे। उस स्थान पर यह नियम-सा था कि व्याख्यानों में उपस्थित महाशय शङ्कायें करके वाद-विवाद भी किया करते थे। इसी नियम के अनुसार हमारे व्याख्यानों पर भी हमारे पादरी और मुसलमान मित्रों ने वाद-विवाद किये। अन्त में पादरी महाशय बोले कि "मिश्र महाशय! यह हिन्दू मत नहीं है, वरन आप इसे वर्त्तमान विचारानुकूल बना रहे हैं (Mr, Misra ! this is not Hinduism, you are rationalizing it)। इस पर हमारे एक हिन्दू मित्र ने कहा कि यही हिन्दू मत है और मिश्र जी ने सच कहा है, सब सच कहा है और सिवा सच के कुछ नहीं कहा है (Mr. Misra has said the truth, the whole truth and nothing but the truth.)"। इससे प्रकट हुआ कि हमारे हिन्दू श्रोताओं ने इसे बदला हुआ हिन्दू मत नहीं माना। उन्हीं महाशयों के आग्रह से हमने इस व्याख्यान को लेख स्वरूप में परिणत कर दिया। बहुत लोग इसे वर्त्तमान हिन्दू धर्म्म से कुछ भिन्न समझ सकते हैं, किन्तु आपकी

समझ कर हमने इसमें सूक्ष्म रीति से वर्त्तमान हिन्दू मत का सभी कुछ रख दिया है । चाहे वह सभ्य समाज में अच्छा समझा जाता हो चाहे बुरा, हाँ, विविध विषयों के आनुषंगिक विस्तार में कुछ भेद अवश्य मिलेगा । अर्थात् कुछ विषय ऐसे हैं जिनका समाज में विशेष बल है किन्तु इस लेख में कथन सूक्ष्म है और इसी भाँति समाज में कुछ सूक्ष्म बल-धारी विषयों का कहीं कहीं कुछ बड़ा वर्णन पाया जावेगा ।

सम्मिलित कुटुम्ब के दोषों वाला लेख हमारे पाँच विभागयुक्त एक भारी लेख का अंश मात्र था, किन्तु दैवात् यही छपने भेज दिया गया । उस पूरे लेख में कुटुम्ब के गुण भी लिखे थे तथा अनेकानेक अन्य बातें कुटुम्ब-सम्बन्धी थीं । दुर्भाग्यवश हमारा यह भारी लेख कहीं गुम हो गया और अब यह दोषों वाला भाग मात्र रह गया, जो इस पुष्पांजलि में सम्मिलित है ।

हिन्दी काव्यालोचना नामक लेख में हमने प्रत्यक्ष कह दिया है कि यह खंडनालोचना मात्र है और इसमें केवल दोषों का वर्णन इसलिए किया गया है कि लोगों का ध्यान उधर आकृष्ट हो कर वह दूर हो जावें । इस पर भी हमारे एक मित्र ने लिखा था कि:—

"भाषा काव्य प्रणाली पर करि ख्याल ।
दोषै दोष बखान्यो मिश्र विशाल ॥
कविता में जे प्रस्तुत गुन-गन भूरि ।
जानि बूझि कै तिन पर डारयो धूरि" ॥

यह कथन हमारे एक मित्र एवं सम्बन्धी का भी हो कर पूर्ण-

त्रुटि-निवारण का है। हिन्दू मिलित कुटुम्ब में दैवात् दोषों ही का कथन शेष रहा है और काव्यप्रणाली में उतनाही कहा गया था। आशा है कि विद्वान् लोग हमारी इस धृष्टता को क्षमा करेंगे।

ग्रन्थ के विषय में कुछ विशेष न कह कर अब हम यह पुष्पांजलि भी सहृदय पाठकों को सप्रेम अर्पित करते हैं। आशा है कि आप लोग अन्य ग्रन्थों की भाँति इस बालविनोद को भी प्रसन्नतापूर्वक अपनाने की कृपा दिखलावेंगे।

लखनऊ
सं० १९७२

विनीत,
मिश्रबन्धु।

वन्दना ।

काव्यकुसुमावलि ।

अट्ठारहौ पुरान के निर्माता जै व्यास !
तौ समान भो जगत में को कवि-वर मतिरास ? ॥ १ ॥

आदि कवि वालमीकि सरिस बखान करि
अमित कथान को सजीव कहि गायो है ।
भावन सों पूरित कथन मन-भावन कै
चाव सों रसन को सरूप दरसायो है ॥
कालिदास आदि कलि-कविन समान पुनि
उपमादि पूरित कबित्तन बनायो है ।
बढ़ि सब ही सों सदगुन रचना मैं धरि
कविता सों व्यास भगवान पद पायो है ॥ २ ॥

जीवन के फुर चरित सकल कविता मैं गायो ।
सतजुग आदिक आनि मनो सनमुख दिखरायो ॥
हे भारत के महापुरुष-गन जौन सयाने ।
कविता बल दै जीव-दान तिन कहँ सनमाने ॥
तुम एक सकल सत गुनन के जीवन-दान महान हौ ।
तुमही कवि-पुंगव जगत मैं धन्य व्यास भगवान हौ ! ॥ ३ ॥

भादौं दसमी पच्छ सित रवि वासर गुन आल ।
बैठि व्यासगद्दी रच्यो शिरमौरऽरु ससिभाल ॥ ४ ॥

फल बाबूपरसाद की सुभ संगति को पाय ।
कही व्यास-महिमा कछुक नीमसार मैं जाय ॥ ५ ॥

(संवत् १९७१)

पुष्पाञ्जलि ।

पहला पुष्प ।

श्रीकृष्णचन्द्र (सं० १९६५)

भयउ नहिँ भारत मैं अस आन ।
आठैँ असित मास भादैां जस भो जदुपति भगवान ॥
यहि नरबर मैं बालापनही सों जे सुगुन महान ।
देखि परे ते एक पुरुष मैं सुने न कबहूँ कान ॥ १ ॥
एक एक गुन मैं याजग में भे बहु पुरुष प्रधान ।
कैयो गुनन माहँ कितनेहु नर भए प्रतिष्ठावान ॥
पै जितने गुन नंदनँदन में लखे पूर्ण सविधान ।
तितने संग्रह करन हार कोउ सुन्यो न दुतिय सुजान ॥ २ ॥
गोपिन मैं मुरली धुनि करि जेहिँ कियो अलैाकिक गान ।
जा पर वारि डारिए कोटिन तानसेन की तान ॥
वर्तमात मैं योरपीय जो बाल-प्रथा* को ठान ।
गोपिन अपसरान बिच जदुपति ताको दियो प्रमान ॥ ३ ॥
रास रसिक नट-नागर नायक कोऊ कान्ह समान ।
तिहु पुर में नहिँ भयो आजुलैां ह्वैहु की आसा न ॥

---

* Ball = नृत्य ।

इतनेहु पर भगवत-गीता को परम अपूरब ज्ञान ।
जोग, सांख्य, बेदन, उपनिषदन मथि भाख्यो जगत्रान ॥ ४ ।
राज-प्रबन्ध करन में इनकी लखो बुद्धि मन मान ।
उग्रसेन, वसुदेव, राम के देखत सकल प्रजान ॥
पालन किया, होय सबके लघु, पै कबहूँ तिल मान ।
इनसों वैमनस्य काहू को भयउ न दुखद मलान ॥ ५ ॥
बालापन सों मरन काल लौं कोटिन भट जुत सान ।
जीति लिया भगवान अकेलेहि धारि चक्र, धनु, बान ॥
शाल्व, कंस, शिशुपाल, बकासुर एकहु बीर बचा न ।
बिना अस्त्रहू बहु खल मारे गाजत मनु हनुमान ॥ ६ ॥
परे कठिनतम अवसर जितने तिनपर बर व्याख्यान ।
देनहार वसुदेव-तनय सम नहिँ कोउ पुरुष लखान ॥
सुमिरन करिकै पूर्व प्रीति को देखि दसा जदुभान ।
आपु सरिस करिदिया सुदामहि एक बेर दै दान ॥ ७ ॥
राजसूय में नृपन, ऋषिन की जुरी सभा गुन-खान ।
प्रथम पूजिबे लायक तेहि थर यहइ पुरुष ठहरान ॥
केशव के सिगरे गुनगन कोउ करि नहिँ सकेउ बखान ।
कहेउ इन्हैं अवतार सबन तब जुत षोड़शहु कलान ॥ ८ ॥

दूसरा पुष्प ।

हिन्दी-अपील* (सं० १९५७)।

सुनहु सभा-पति, सभ्य गन ! धन्य धन्य यह द्यौस ।
हिन्दी प्रेमी जो इतै भे इकत्र करि हौस ॥ १ ॥
काशी, मेरठ, जौनपुर में सुनि तीनि समाज ।
श्री नागरी प्रचार हित को नहिँ पुलकित।आज ? ॥ २ ॥
तीस वर्ष पीछे रह्यो जो हिन्दी कर हाल ।
करि ताको सुमिरन अजैा होत शोक बिकराल ! ॥ ३ ॥
किते रहे मासिक किते साप्ताहिक तब पत्र ? ।
ग्रन्थ किते तब होत हे मुद्रित इत सरवत्र ? ॥ ४ ॥
किते हुते हिन्दी रसिक ? रहीं सभा तब कौन ? ।
हिन्दी हित उद्योग कछु हुतीं करत नित जौन ॥ ५ ॥
सरस्वती, छत्तीसगढ़ मित्र, सुदर्शन, एक
मासिक पत्रऽरु पत्रिका इन मैं हुतीं न नेक ॥ ६ ॥
हिन्दी-परदीपहु रह्यो तब नहिँ कतहुँ लखात ।
मासिक-पत्रन मैं इतौ जो प्राचीन विख्यात ॥ ७ ॥
समाचार वेंकटेश्वर, भारतजीवन जौन ।
अवध-समाचारहु तथा बङ्गबासि सब तौन ॥ ८ ॥

---

* यह सं० १९५७ में जौनपूर नागरी सभा के वार्षिकोत्सव में पढ़ी गई थी। अवश्यही तब से अब तक अनेक परिवर्तन हो गए हैं और अब हिन्दी की दशा और भी अच्छी है।

भारतमित्रादिक जिते बर सप्ताहिक-पत्र ।
का पर तिन के नामहू रहे ज्ञात तब अत्र ? ॥ ९ ॥
एक मात्र जो पत्र है दैनिक हिन्दी माहिँ ।
जाके स्वामी की कबहुँ उऋण नागरी नाहिँ ॥ १० ॥

सो हिन्दुस्थानहु न तब रह्यो प्रकाशित होत ।
हिन्दी केर कलंक यक धोयो होत उदोत ॥ ११ ॥

गद्य लिखन में कब रह्यो तब इतनो उतसाह ? ।
रही खड़ी बोलीहु की पद्य माहिँ केहि चाह ? ॥ १२ ॥

रह्यो न एकहु ग्रन्थ तब ज्यों शिवसिंहसरोज ।
जासों सब प्राचीन कवि गण कर पावत खोज ॥ १३ ॥
रही दशा तब औरही अब औरहि दरसात ।
हिन्दी के शुभ दिवस से आवत सबहिँ लखात ॥ १४ ॥
आपेक्षक उन्नति निरखि होत प्रफुल्लित हीय ।
गहत चित्त सन्तोष कछु धरत धीर कमनीय ॥ १५ ॥
नातरु आशा की लता जाती अति कुम्हिलाय ।
हरी भरी होती न फिरि बिन अति उग्र उपाय ॥ १६ ॥
भारतेन्दु हरिचन्द भे या उन्नति के मूल ।
मिश्र प्रताप-नरायनहु किय उद्योग अतूल ॥ १७ ॥
राजा शिवपरसाद अरु लछिमनसिंह भुआल ।
धन्यबाद भागी सबै किय हिन्दी प्रतिपाल ॥ १८ ॥
इत नागरी-प्रचारिणी सभा काशि महँ जौन ।
हिन्दी के उपकार हित सदा बद्ध कटि-तौन ॥ १९ ॥

करि अनेक उद्योग जेहि हिन्दी सेवा कीन्ह।
उर्दू सँग न्यायालयन महँ यहि आसन दीन्ह ॥ २० ॥
ताकी करनी जानहीं हिन्दी प्रेमी सर्व।
है लघुता अति बड़े की कहे तासु गुण खर्व ॥ २१ ॥
को ताके सब गुणन की करन प्रशंसा जोग ?।
ताते धारण मौनही उत्तम परम प्रयोग ॥ २२ ॥

पै इती उन्नति सकै करि पूर्ण नहिँ सन्तोष।
होय जौ लगि नाहिँ हिन्दी त्रुटि रहित निर्दोष ॥
तजि समस्या पूर्ति कवि-जन रचैं उत्तम ग्रन्थ।
लाभ नहिँ कछु गहे यक शृङ्गारही को पन्थ ॥ २३ ॥
जमक, अनुप्रास, अतिशय उक्ति, इन में एक।
मुख्य अंग न काव्य को हम कहत हैं गहि टेक ॥
पद्य काव्यहि सों न केवल सधै गो अब काम।
गद्य उन्नति करन ताते है उचित अभिराम ॥ २४ ॥
लिखौ जीवन-चरित तिनके जे प्रशंसा-जोग।
कला, विद्या, शूरता, बल, बुद्धि के संयोग ॥
रचौ अब भूगोल और खगोल के बर ग्रन्थ।
शिल्प अरु वाणिज्य के सब को दिखावहु पन्थ ॥ २५ ॥
किती लज्जा होति है यह स्मरण आवत बात।
शुद्ध हिन्दी कोषहू को ग्रन्थ एक न ख्यात ! ॥
व्याकरण, विज्ञान की बहु रचहु पुस्तक मित्र !
कृषि, रसायन, गणित शास्त्रन पै सु-ग्रन्थ विचित्र २६ ॥

तिमि अर्थ-शास्त्र विचारिकै अरु राज-शास्त्र विशाल ।
इतिहास निज अरु अन्य देशन के रचहु ततकाल ॥
शोधहु चिकित्सा-शास्त्र के जे ग्रन्थ बहु प्राचीन ।
तिमि देश, काल, स्वभाव, के अनुरूप ग्रन्थ नवीन ॥ २७ ॥
बिरचहु, सबै मिलि करहु भारत बुद्धि जग-विख्यात ।
धोवहु लगावत कालिमा जो जगत तुम पर भ्रात ! ॥
तजि मोह-निद्रा उठहु देखहु होत का चहुँ ओर ।
सन्ध्या-समय नियरान लाग्यो तुम्हैं अजहु न भोर ॥ २८ ॥
निज देश-भाषा की करहु उन्नति करन में यत्न ।
जनि तुच्छ हिन्दी को गनहु भाषान की यह रत्न ॥
सर्वाङ्ग-पूरन स्वच्छ याकी वर्णमाला ख्यात ।
अर्द्धांश सुन्दर अन्य भाषन मैं न जौन लखात ॥ २९ ॥
जो जो सकै नर भाषि यामैं शुद्ध लिखिये तौन ।
आह्वान करि हम कहत ऐसी अन्य है लिपि कौन ? ॥
पुनि दूसरो गुण एक यामैं है अमोल महान ।
जो और लिपि गन मैं न लेशहु मात्र जग ठहरान ॥ ३० ॥
जो कछु लिखौ सोई पढ़ौ भ्रम सकै परि न कदापि ।
उर्दू सरिस लिपि में कहो को सकै यह गुण थापि ? ॥
द्वै वर्ष ही मैं सकैं बालक शुद्ध लिखि पढ़ि याहिँ ।
पर और भाषा सिखन को षट वर्षहू बस नाहिँ ॥ ३१ ॥

तौ लौं उन्नति है कहां जौ लग या जग बीच ।
नर-नारिन के हिय जमी अन्धकार की कीच ? ॥ ३२ ॥

अन्धकार हिय को कबौ सकै न मिटि बिन ज्ञान।
ज्ञानोदय नहिँ ह्वै सकै बिन विद्या सुखदान ॥ ३३ ॥
हिन्दी सब विद्यान महँ हम सब कहँ हितकारि।
स्वच्छ, सरल, सुन्दर, ललित, आसु देति फल चारि ॥ ३४ ॥
अँगरेजन जैसे करी निज भाषा शिरताज।
ताही बिधि उन्नति करौ हिन्दी की मिलि आज ॥ ३५ ॥
गद्य, पद्य, नाटक रचौ जग-उपकारक भ्रात !
स्वाभाविक प्राकृतिक ही उत्तम ग्रन्थ कहात ॥ ३६ ॥
बँगला, अँगरेजी, तथा उर्दू में विख्यात।
और मराठी, फ़ारसी, मैं जे ग्रन्थ लखात ॥ ३७ ॥
करि तिन के अनुवाद बहु भरहु नागरी भौन।
या बिधि सों दरसाइए उन्नति-मारग जौन ॥ ३८ ॥
औरहि यों ह्वै जाइ है या भारत की भूमि।
ठौर दीनता के इतै रहि है सुख झुकि झूमि ॥ ३९ ॥
मत्सर कलह बिरोध की छाहँ न परिहै देखि।
काव्य कला उद्योग ही लखिहौ इतै बिसेखि ॥ ४० ॥
हिन्दी उन्नति साथही सब उन्नति ह्वै जाहिँ।
तातें तन मन धन लगौ हिन्दी उन्नति माहिँ ॥ ४१ ॥

———

तीसरा पुष्प ।

मदन-दहन (सं० १९५९) ।

यह पद्य कवि-कुल-चूड़ामणि श्री कालिदासजी कृत कुमार-सम्भवान्तर्गत मदन-दहन का स्वच्छन्द अनुवाद है । कालिदास की कविता का अनुवाद होने के कारण इसमें अल्प शब्दों में विशेष अर्थ आ गया है । इससे यदि हमारे सहृदय पाठक इसके प्रत्येक शब्द पर ध्यान दें और अनुवाद को मूल से मिलावें तो कदाचित उन्हें पूर्ण आनन्द आवै । विशेष सुभीते के लिए प्रत्येक छन्द की गणना के बाद हमने कोष्ठक (ब्रैकेट) में उन श्लोकों के नम्बर भी दे दिये हैं, जिनका अनुवाद उनमें हुआ है । जिन छन्दों के आगे ब्रैकेट में कुछ न दिया हो, वहाँ समझना चाहिए कि उतना अंश हमने मूल के बाहर अपनी ओर से बढ़ा दिया है । कुछ छन्दों में कुछ अंश मूल का है और शेष अपनी ओर से हमने बढ़ाया है ।

तारक सों अति पीड़ि सुरन जुरि मंत्र विचारी ।
जाय पितामह पास कही विपदा निज भारी ॥
सुर-गुरु-मुख सुनि दशा तौन वेधा दुख आनी ।
निज बरदानिक असुर हनन अनुचित अनुमानी ॥

भे कहत "शैलजा शम्भु सुत प्रकटि होय सेनाधिपति ।
तौ लहौ विजय त्रिभुवन-दुखद सुरघालक असुरेश हति" ॥ १ ॥

भवहिँ डिगावन योग शक्र कामहि अनुमानी।
सुमिरयो कारज हेत ताहि तुरता अति आनी॥
तियभ्रू की धनुकोटि लता सम सोहति जाकी।
सोइ रति-कंकन-खचित-कंठ धनुहीं धरि बाँकी॥
है जासु सुरभि-कर पै लसत अम्ब-बैार-आयुध परम।
सोइ करन जोरि सुरनाथ पै गयो मार बूझन मरम॥ २॥

सहसनैन की दीठि सकल सुर यूथ बिहाई।
सहसहु नैनन परी मीनकेतुहि दिसि धाई॥
स्वामि समादर करत सेवकन करतब नीको।
परत काज कछु आनि जबै दुखदायक जीको॥
तब सिंहासन ढिग जाय युतमान बरासन पायकै।
भो कहत मार पुरहूत सों लहि इकंत हरषाय कै॥ ३॥ (१ और २)

सकल जनन के मनविकार सब जानन हारे।
हे सुरनायक! कुलिशपानि सिर छत्र सँवारे॥
आयसु दीजै नाथ जैान चाहत जग कीन्हो।
करि सुमिरन अनुचरहि यथा आदर अति दीन्हो॥
यह भई अनुग्रह रावरी जैान प्रकट यहि काल मैं।
तेहि चहत विवर्धित होन, तव लहि निदेस सुरपाल! मैं॥ ४॥ (३)

कैान साहसी पुरुष आजु तपतेज सम्हारयो?
तीन लोक के राज-लोभ इरषा तव धारयो।
कियो जैान महिदेव दनुज सुरगन मद चूरन।
सुनत जासु टंकोर प्रकम्पित सिद्ध ऋषयगन॥

जड़ चेतन थावर जगमहु निमिष माँहि जो बस करै ।
सोइ सर-संयुत-कोदंड मम तासु गरब छिन मैं हरै ॥ ५ ॥ (४)

तव सम्मत बिनु कौन डरपि जगके जंजालन ।
चाहत तिनसों छुटन, चतुरता के बर ख्यालन ? ॥
आरेचित भृकुटीन युवति-गन के फँसवाई ।
राखहुँ ता कहँ बाँधि कटाच्छन के बस लाई ॥

केहि नय शुक्रहु सिच्छित रिपुहि अरथ धरम सों करि बिमुख ।
सरि-कूल ढहावति, हरहुँ तिमि, राग दूत बल तासु सुख ? ॥६॥(५-६)

पातिव्रत से कठिन धरम की साधनहारी ।
सहज सुघरता सों चित चंचल बाधनहारी ॥
लखि गुलाब-कलिकाहु जासु कुच की छबि भारी ।
हारि मानि मन फारि फारि दृग रही निहारी ॥
केहि प्रमदागन-भूषन तियहि लाज दाम सों मुकुत करि ।
मद मत्त, अरुन चख, सिथिल तन, चहत करन प्रभु भुजनि भरि ॥७॥(७)

गरबवती केहि सती तिरसकारयो प्रभु तोहीं ?
सुरति-दान अभिलाष जानि करि दृग सतरोहीं ॥
सापराध लखि नमित तोहिँ, बिनती सुनि तोरी ।
कियो महत अपमान, कौनि तरुनी मति भोरी ? ॥
तेहि पछितावहि के पातकी कोमल सेज बिछायकै ।
छिन माँहिँ नाथ सम्मुख करहुँ कुसुम बान धनु लायकै ॥ ८ ॥ (८)

धरहु धीर तव कुलिस, नाथ ! त्रिपुरारि त्रिशूला ।
काल दण्ड, हरिचक्र करें जेहि रिपुहि न सूला ॥

ताहि कुसुम सर कोपवती अबलन बल जीतौं।
तेहि रुद्रहु इक मधु सहाय धीरज सों रीतौं॥
सुर असुर चराचर थरहरैं लखि पिनाक जाके करन।
को त्रिभुवन धनुधर आन, मम जो न होय संकित सरन ?॥९॥ (९-१०)

पाद-पीठ-चल जंघ पर लखि प्रतिबिम्बित तत्र।
ध्यान-मगन-पुरहूत तब धरयो चरन अन्यत्र॥ १०॥ (११)

निज मन बांछित काज पर कामहि तत्पर जानि।
शक्ति प्रकट तेहि करत लखि कह्यो शक्र सनमानि॥ ११॥ (११)

मीत सकौ करि जो तुम भाषत या महँ नेक नहीं सक मोरे।
वज्रहु काम प्रसिद्ध पुरातन हैं जुग अस्त्र सदा ढिग मोरे॥
कुंठित है मम वज्र सही तप तेज भरे विजयीन के ओरे॥
पै सब ठौर बिजै कर तू थहराय न को सर जोरत तोरे?॥१२॥ (१२)

जानहुँ तो बल भाँति भली तोहिँ आपु समान बली निरधारी।
चाहत सौंपन मीत तुम्हैं हित देवन के निज कारज भारी॥
श्री हरि औ महि धारन से गुरु काज सरैं अहिराजहि पाहीं।
त्यों यह काज बड़ो, जग मैं तजि तोहि सकै करि दूसर नाहीं
॥१३॥ (१३)

रुद्रहि धीरजहीन बनावन जौन कियो तुम है पन गाढ़ो।
अंतर जामि भये, अरि पीड़ित देवन संकट सों तिमि काढ़ो॥
सेनप ते रिपु जीतन हेतु चहैं शिव-शुक्र समुद्भव जोई।
धारि समाधि रहे शिव, ताहि छुड़ाय सकै नहिँ तो बिन कोई
॥१४॥ (१४-१५)

जाय उपाय रचौ जित-इन्द्रिय शंकर छोड़ि समाधिहि जाते ।
चारु सती गुन रूप भरी रुचि कै मन प्रेम करैं गिरिजाते ॥
जो अबला-गन की सिरताज करै हिमि भूधर पूरित भा ते ।
ताहि बिरंचि कह्यो शिवशुक्रहि धारन जोग भली बसुधाते
॥१५॥ (१६)

शैल-सुता, पितु आयसु लै, नग पै तपसी त्रिपुरारि अराधैं ।
नाक नटीन कह्यो यह मोसन जे छिपि दूत पनो मम साधैं ॥
कारज देवन को सिधि, त्यों गिरजा-शिव व्याह, न तौ बिन होई ।
खेतन बीज कितेक, बिना जल अंकुर धारि सकैं किमि कोई ?
॥१६॥ (१७-१८)

देवन के जय साधन मूल सदा शिव तेज अपार पसारे ।
तो सर की गति है तिन मैं, तेहि ते तुम धन्य मनोज सुखारे ॥
कारज जो न प्रसिद्धि महीतल, औ बहु लोग सकैं करि जाहीं ।
तौनहु कारन है जस को, यह तौ अति दुस्तर है जग माहीं
॥१७॥ (१९)

तीनिहु लोकन को हित-कारज त्यों सुरजूथन जाचक पायो ।
हे जग जाहिर सूर सिरोमनि ! घातक काज न तोहि बतायो ॥
है ऋतुराज सहायक तो, बिन जाचेहु काज करै मन भायो ।
पावक पौन प्रचंड करै जिमि, को तेहि को फरमान सुनायो ?
॥१८॥ (२०-२१)

स्वामी के ये बचन सुनि, "भलेहि, नाथ !" कहि मार ।
चल्यौ, प्रसादित-माल-सम आयसु धारि लिलार ॥१९॥ (२२)

ऐरावत-उतसाह-हित-ताड़न सों दृढ़ जौन ।
ता कर सों परस्यो बपुष तासु मुदित सुर रौन ॥२०॥ (२३)

तासु मीत बसन्त, अरु रति, महा भय सों पागि ।
करत मन सङ्कल्प बहु विधि चले ता सँग लागि ॥
प्रानहू ते काज साधन परम प्रिय अनुमानि ।
गयो सो हिमवान पै जहँ तपत शिव तपखानि ॥ २१ ॥ (२३)

समाधिस्थ मुनीन के तप तेज को रिपु घोर ।
मार-मद तहँ धारि तनु भो प्रकट मधु बरजोर ॥
होत उत्तर ओर सूर प्रवृत्ति देखि अकाल ।
तज्यो दच्छिन वायु मुखते मनहु श्वास बिहाल ॥२२॥ (२४-२५)

भूषनन सों जटित, नखसिख भरी रूप ललाम ।
मदन मद सों छकी, अनुपम चारुता की धाम ॥ (२६)
बजत नूपुर मन्दगति-बस आँगुरिन यहि भाँति ।
मनहु तन धरि सुरुचि, पगपरि, रूप बरनत जातिं ॥ २३ ॥
जटित जेहरि तड़ित सी युग गुलुफ पै छबि देत ।
भानु अरु सितभानु को मनु करति मेल सहेत ॥
होन ताड़ित तौन सुन्दरि चरन सों बिसराय ।
पल्लवित ह्वै उठ्यो फूलि असोक रीति बिहाय ॥ २४ ॥ (२६)

मञ्जरि चारु रसालन की ऋतुराज मनो बर बान बनायो ।
भौंरन सों किसलै करि भूषित मानहु नाम मनोज लिखायो ॥
बानन पत्र समान तिन्हैं लखि कोकिल कूक पुकारि सुनायो ।
"होहु सचेत, अहो बिरही जन ! चाहहु जो निज प्रान बचायो"
॥ २५ ॥ (२७)

फूलि उठी सरसौं दुहु कूल सोई बर बालक भीर लखानी ।
नागर बाहु सोई जल पै बिरवान की डार बढ़ीं सुखदानी ॥
बाजन कूजनि पच्छिन की गति मन्द तरङ्ग बहै मद सानी ।
तालन के प्रतिबिम्बन मैं दरसात बरातन की अगवानी ॥ २६ ॥

रूप मनोहर भयहु सुगन्धित पुहुप न पाई ।
कर्निकार बस लाज रह्यो निज सीस नवाई ॥
चतुराननहू भए चूक बिधि की यह भारी ।
सब गुन भूषित करत न जग एकहु तनुधारी ॥

निज मानहानि लखि शोक भरि धारन तेहि कटुता किया ।
ह्वै गयो हलाहल मूल लैां तदपि रह्या धधकत हियो ॥ २७ ॥ (२८)

बक्र बाल-बिधु सरिस पुहुप किंसुक बिनु फूले ।
अरुन बरन दरसात नखच्छत-नव सम-तूले ॥
दियो जैान ऋतुराज आज बनभूमि कुचन मैं ।
निरखि जासु लावन्य चराचर छोभित मन मैं ॥

सुभ सीतल मन्द सुगन्ध तिमि बायु बहै मन-भावनी ।
अरु कोकिल कीर कपोत गन कलरव करत सुहावनी ॥ २८ ॥ (२९)

नव बसन्त श्री छपद नैन कज्जल सम धारयो ।
चित्र बरण पुनि तिलक बरानन माँहि सँवारयो ॥
सैारभ किसलय अधर चारु करि पूरित भा तें ।
अरुन बरन किय तिन्हैं बाल रवि सम परभाते ॥

करि यहि बिधि नूतन साज सब मनमोहनि अतिही भई ।
को देव दनुज नर जासु तेहि देखि न मति गति हरि गई? ॥२९॥(३०)

तरु पियाल मञ्जरी सु रज करसायल चख परि।
है सहजहि मद मत्त, अन्धवत देति तिन्हैं करि॥
मारुत सम्मुख आय तैान अति भरि चित चावन।
मर मरात तरु पातन पै बिचरैं मन भावन॥
भखि अम्ब बैार रव कोकिलन अहन कण्ठ ह्वै जो करयो।
सो काम बचन सम मान सब मानवतिन कर अपहरयो॥३०॥

(३१ व ३२)

किन्नरीन के अधर सीत-गत सुन्दर सोहैं।
ह्वै कपोल पुनि पीत बरन चञ्चल-चित मोहैं॥
होत प्रवाहित स्वेद चित्र रचना महँ गातन।
कामानल के समन हेत निसरत मनु जल कन॥
कै आगम ग्रीसम को समुझि दुसह दाह के तपनि डरि।
जलदान जीव तन को करै रुदत चतुरता प्रकट करि॥ ३१॥ (३३)
शङ्कर-बन-बासी सुमुनि लखि ऋतुराज अकाल।
मन विकार कर दमन किय नीठि नीठि केहु चाल॥ ३२॥ (३४)
जब सुमनचाप चढ़ाय, रति सह, मार बन रुचि सों भरयो।
अति नेह रस सम्मिलित भावहि दम्पतिन चेष्ठित करयो॥
बर कुसुम पात्रहि माहिँ षटपदु रति अलैाकिक सों मयो।
निज प्रिया पीछे चलत मधु रस पान करि आनँद छयो॥ ३३॥(३५)
तिमि असित करसायलहु हरिनिहि चाव सों खजुवायऊ।
तेहि परस सों चख मूँदि अनुपम भाव तहँ दर सायऊ॥ (३६)
ह्वै हंस मदनासक्त मुकुतन चंचु मैं निज धारि कै।
मुख हंसिनी के लै धरयो बहु भाँति सों मनुहारि कै॥ ३४॥

कौल-पराग-सुगंधित बारि दियो करिनी कर१ सों निज स्वामिहि ।
खाय कछू२ तिमि पंकज नाल दियो चकवा चकई सहगामिहि ॥
किन्नर पूरित स्वेद महा मद मत्त प्रिया मुख चुम्बन कीन्हों ।
पूरन चन्द बिलोकि अकाल, कला कछु राहु मनो गसि लीन्हों
॥ ३५ ॥ (३७-३८)

फूलन के बर गुच्छ सलौननि ३ ओंठ प्रवाल भरी रुचि सोहैं ।
कोमल शाख-भुजानि लता लपटीं बिरवान महा मन मोहैं ॥
नाक नटीगन के सुनि गान तबौ शिव साधि समाधि रहे यें ।
इन्द्रिन जीति धरयो प्रभु ध्यान, डिगाय सकै बिघनादि कहौ क्यों ?
॥ ३६ ॥ (३९-४०)

जदपि भंग नहिँ भई शम्भु की अचल समाधी ।
पै खरभर जग डारि मदन लज्जा गति बाधी ॥
थावर जंगम जीव सबै मद अंध बनायो ।
असमै समै विचार असम सर सकल छुड़ायो ॥
ह्वै अथल बिथल नर नाग सुर नहिँ छाँड़त छिन तरुनि गन ।
तपसिहु जन सेलिन तजि बिकल लगे नबेलिन दिसि झुकन ॥ ३७ ॥
मुगुधा मध्या नारि कतहुँ नहिँ परहिँ लखाई ।
रतिप्रीता प्रौढ़ाहि मदन जग युवति बनाई ॥
तजि तजि गुन मरजाद लाज कुल बिभव बड़ाई ।
कुल पतनिहु मद-अंध फिरैं कुलटन की नाई ॥
रतिनाथ कोपबश भुवन तिहु सिंधु सरिस सीमा तरयो ।
सो उबरि बच्यो ताहू समय ईश जासु रच्छा करयो ॥ ३८ ॥

१ शुंडा; सूंड । २ कुछ अंश । ३ कुचनि, कुचों से (सलौना = कुच)

त्रिभुवन मैं बिकराल भयो अनरथ यह जैसो ।
तैसोई हर गणन कुलाहल कियो अनैसो ॥
भूत प्रेत गन कूदि कूदि करि करि अठखेली ।
नाचत ह्वै उनमत्त बजावत मगन हथेली ॥
हर लता-भवन के द्वार तब कनक दंड कर मैं लिए ।
नन्दी तरजनि मुख धरि, सबन "सावधान !" इंगित किए
॥ ३९ ॥ (४१)१

कम्प बिहीन भए तरु वृन्द मलिन्दन चंचलता बिसराई ।
मैान बिहंगन धारि लियो तिमि फाल कुरंगन हाल भुलाई ॥
शासन सों हरवाहन के बन चित्र समान परै दरसाई ।
साँझहि कानन बीच सुथम्भित तालन के प्रतिबिम्ब कि नाई
॥ ४० ॥ (४२)

हैं बरावत, शुक्र सम्मुख दीठि, यात्रन लोग ।
त्यों बचाय पुरारि दीठि-प्रपात मार सयोग ॥
पारिजात सुशाख बहुतक रहीं मिलि जेहि ठाम ।
ध्यान थल त्रिपुरारि को तहँ गयो संकित काम ॥ ४१ ॥ (४३)

काल-बस-झखकेतु देख्यो ध्यान- थित-सुरराय ।
लसत बेदी-कलपतरु पर सिंह चाम दसाय ॥
झुके कोमल कन्ध, राजत बीर आसन मारि,
लसैं बिकसित कंज से जुग पानि गोद मँझारि ॥ ४२ ॥ (४४-४५)

---

१ इस छप्पय के केवल अंतिम दो चरणों में मूल के ४१ वें श्लोक का आशय है ।

जटा जूट उठाय बाँधे नाग गन सों तौन ।
अच्छ १ माला कान मैं आसक्त २ सुखमा भौन ॥
धरे ग्रंथित चारु श्याम-कुरंग चर्म ललाम ।
भयो जो अति नील, कंठ-प्रभानि सों, तेहि याम ॥ ४३ ॥ (४६)
उग्र चख पूतरि अचल, अति धरे स्वल्प प्रकास ।
नैन पट तिमि भुकुटि थिर, अति सिथिल अच्छ ३ बिकास ॥
नमित मुख करि नासिका दिसि लखत प्रभु ईशान ॥
योग आपुहि धारि तन मनु तपत तेज निधान ॥४४ ॥ (४७)
प्राण के अवलम्ब श्वासन रोकि हर सविधान ।
अचल, पावस-मेघ से, प्रभु लसत अगम अमान ॥
किधौं रहित तरंग-सरवर सरिस शिव भगवान ।
किधौं मारुत-हीन-थल पै अचल-दीप समान ॥ ४५ ॥ (४८)
कढ़त बाहेर तृतिय चख मग जौन तेज अपार ।
सीस सों उतपन्न ह्वै, बन करत सुखमागार ॥
बाल-विधु श्री जो मृणालहु तार सों सुकुमारि ।
करत ता कहँ मन्द सो, दिसि बिदिसि जोति पसारि ॥४६॥(४९)
इन्द्रियन अवरोधि, चित्त समाधि-बल बस लाय ।
हृदय मैं तेहि थापि, देखत आतमरूप अघाय ॥
इबिधि चित्तहु-दुराधर्ष महेश को लखि तीर ।
खसत शर धनु करहु सों जान्यो न मार अधीर ॥ ४७ ॥ (५०-५१)
जीवदान तब देत, नष्टप्राय-बल-मार कहँ ।
आई उमा सहेत, रूप शील गुण अवधि सी ॥ ४८ ॥

---

१ रुद्राक्ष । २ लटकती हुई । ३ अक्ष, नेत्र ।

बन देवी बन देव सेवित हिमगिरि कन्यका ।
सोहति अनुपम भेव, शंकर पद अनुरागरत ॥ ४९ ॥ (५२)
पुहुप असोकनि पदुमराग मनिप्रभा लजावति ।
कुसुम कनैरनि कनक कांति छबिहीन बनावति ॥
सिन्धुबार के सुमन मुकुत माला सम धारे ।
मधु फूलनही सकल मनोहर गात सँवारे ॥

बच्छोज भार भावक झुकी बाल-सूर-सम अरुन पट ।
धरि, कुसुमित गुच्छनि पात युत भई नमित लतिका निपट
॥ ५० ॥ (५३-५४)

स्मर-धनु-ज्या मनु दुतिय[1] बकुल माला कटि धारै ।
छुद्र घंटिका सरिस, चलत तेहि खसत सम्हारै ॥
अधर बिम्ब ढिग स्वास-सुगन्धित हित ललचाई ।
तृष्णा पूरित बार बार मधुकर मड़राई ॥
डरि तासों मृग छौना सरिस चञ्चल नैन नचावती ।
निज क्रीड़ा-पङ्कज सों सकुचि छिन छिन ताहि उड़ावती
॥ ५१ ॥ (५५-५६) ॥

निरखि जासु लावण्य रतिहु कर मद दुरि भाज्यो ।
लाज सृष्टि कर हेतु जाहि सन दृढ़ता साज्यो ॥
तेहि गिरिजहि लखि मीनकेतु साहस पुनि धारयो ।
इन्द्रियजित शिव माहिँ काज की सिद्धि बिचारयो ॥

---

१ धनुष की दुतिय ज्या (अर्थात् ताँत) उसके दण्ड में लपेटी रहती है कि यदि धनुष पर चढ़ी हुई ताँत, (जिससे काम लिया जाता है), किसी तरह टूट जाय तो उसी समय दण्ड से खोल कर इसे चढ़ाकर काम किया जाय ।

निज होनहार पति द्वार जब भई प्राप्त सैलेसजा ।
लखि परम आतमा निज हृदय, तज्यो ध्यान त्रिभुवन-पिता
॥५२॥ (५७-५८) ॥

आसन-महि बहु जतन जासु धारत सहसानन ।
मन्द मन्द हर मोचि श्वास छाँड़्यो बीरासन ॥
तब नन्दी कर जोरि तुरत शिव सम्मुख जाई ।
सेवा हित गिरिराज-सुता की कह्यो अवाई ॥
सो भृकुटि-सहित-चख चालि प्रभु अङ्गीकृत संज्ञहि करयो ।
तब सकुचि गौरि मुख मोरि कछु, लताभवन बिच पग धरयो
॥ ५३ ॥ (५९-६०) ॥

लघुपातन युत चुन्यो सखिन निज कर मधु फूलन ।
तिन्हैं सहित परनाम समरप्यो शिव-पद-मूलन ॥
करत दण्डवत प्रभुहि उमा के नील अलक सों ।
नव कनैर खसि खसे श्रवन के पात झलक सों ॥
"नहिं आन तरुनि मुख जेहि लख्यो, लहु सो पति" भव
अस कह्यो ।
सो औशि सत्य, बिपरीतता ईश-वचन कबहूँ लह्यो ? ॥ ५४ ॥
(६१-६२-६३)

धावत यथा पतङ्ग अनल दिसि मीचु भुलाई ।
तथा, सुऔसर जानि, असमसर सङ्ग बिहाई ॥
पारबतिहि शिव निकट देखि, साध्यो धनु शायक ।
ताही छिन गिरिसुता कञ्ज सम कर सुखदायक ॥

सों, रविकिरननि सूखे कमल गङ्गधारसन जे लियो ।
तिन्ह बीज-माल तपसी हरहिँ प्रेम सहित अरपित कियो ॥५५॥
(६४-६५)

भक्ति प्रीतिबस लगे शम्भु तेहि ग्रहन करन ज्यों ।
सम्मोहन शर दुसह मार धनु बीच धरयो त्यों ॥
चन्द्रोदय छिन सिन्धु-तरङ्गनि सरिस पुरारी ।
चलित धीर कछु, रहे उमा मुख-चन्द निहारी ॥
करि दीप्तिमान कोमल-कदम-सम-अङ्गनि भावहि प्रकट ।
मुख मोरि, तिरीछे चखन सों, रही लाज बस ह्वै निपट ॥५६॥
(६६-६७-६८)

इन्द्रिय-जित-पन सों तदनु गो १ विकार पुनि रोधि ।
जानन कारन तासु हर रहे सकल दिसि सोधि ॥५७॥ (६९)
हरि चक्र सम धनु धरे, उद्यत करन बाण प्रहार ।
अप सव्य चख ढिग मूठि कीन्हे लख्यो हर तहँ मार ॥
कछु समाकुञ्चित किए दच्छिन पावँ, कन्ध झुकाय ।
पुनि बाम पद करि अग्र, बिलसत द्रुतिय नैन दबाय ॥५८॥ (७०)
निज तपस्या निरखि बाधित कोप करि त्रिपुरारि ।
भए बिकट-स्वरूप, जो नहिँ नेक जात निहारि ॥
भङ्ग करि भृकुटीन दीन्हो तृतिय नैन उघारि ।
कढ़ी जा सों ज्वाल-माल प्रचण्ड अति भयकारि ॥५९॥ (७१)
"छमहु हे प्रभु ! छमहु कोप कराल, त्रिभुवन पाल !" ।
होय व्योम प्रवृत्त जौ लगि देव-रोर बिहाल ॥

---

१ इन्द्रियगण ।

तासु प्रथमहि प्रलय करनि ललाट चख की ज्वाल ।
कियो मारहि छारवत्, अति भरी तेज कराल ॥ ६० ॥ (७२)
अति अनादर-जनित गो-गति सकल रोधनहार ।
कन्तनास भुलाय, रति कर मोह किय उपकार ॥
तपी हर तेहि बिघन-बिटपहि तड़ित सम झरसाय ।
गणन सह भे गुप्त तरुनी-गन-समीप बिहाय ॥ ६१ ॥ (७३-७४)

यह चरित्र लखि शैलजा ह्वै भयभीत महान ।
गई पिता भवनहि सपदि, मन अति किए मलान ॥ ६२ ॥
स्वारथ रत बहु लोग नेह अविचल दरसाई ।
अभिमानिन बहँकाय लेहिँ निज काज बनाई ॥
पै तिन पै जब परति आनि भावी कछु भारी ।
तब शठ पूँछ दबाय जाहिँ कढ़ि बिरद बिसारी ॥
जिमि सहसनैन रतिनाथ कहँ दिय बधाय निज काज हित ।
पुनि हरयो शम्बरासुर रतिहि, रहयो निलज चुप साधि तित
॥ ६३ ॥

स्वर्गवासिनी महारानी विक्टोरिया।

चौथा पुष्प ।

श्रीविक्टोरिया अष्टादशी* (सं० १९५७)

हा जगदीश्वर ! आजु भयो अनरथ यह कैसो ?
नृपगन को सिरताज गयो उठि जगते ऐसो ॥
चहुँ दिसि जौन दयालु अमित सुख सम्पति छायो ।
करि सत असत बिबेक धरम निज बिमल बनायो ॥
जग सुखद पारलीम्यण्ट को जेहि बहु बिधि आदर कर्‌यो ।
सोइ जगत जननि विक्टोरिया हाय आजु कित पगु धर्‌यो ? ॥१॥
फूस सरिस सब रूस सैन पावक सम जार्‌यो ।
परे क्रैमिया वार जगत जस अतुल पसार्‌यो ॥
ताही छिन कम्पनिहि तोरि करुना भरि भारी ।
बिकल प्रजा लखि करी हिन्द पुहुमी उजियारी ॥
सित असित प्रजा सम करि सकल प्रीति अलौकिक सों भर्‌यो ।
बिसराय हाय तिन सुतन कहँ मातु कितै अब पगु धर्‌यो ? ॥२॥
अरिगन हृदय कँपाय जगत जय ध्वजा उड़ायो ।
दूध फेन सम धवल सुजस महिमण्डल छायो ॥
अन्धकार हरि सकल हिन्द मुख बिमल बनायो ।
हम सब कहँ अपनाय मातु दुख दूरि बहायो ॥
करि आरज जाति अनाथ अब हे जगदम्ब दयालु कत ।
तजि व्याकुल बिलपत इन सुतन गई हाय तजि यह जगत ? ॥३॥

---

* महारानी की मृत्यु पर सन् १९०१ में "मिश्रबंधुओं" ने इस पद्य को रच कर इसकी १००० प्रतियाँ बिना मूल्य निज व्यय से बाँटी थीं ।

कत जनमी जनवरी अभागिनि पाप निसानी।
बाइसईं तिथि भई प्रकट कत औगुन खानी॥
मन्द प्रभा करि सूरचन्द मुख कारिख आनी।
करि सब कहँ बिनु मातु हरी जेहि जग महरानी॥

जुबिली हीरक जुबिलीहु लखि राज मिलाय प्रिटोरिया।
अब इन्द्रलोक शासन करन गई मातु विकटोरिया॥ ४॥

सन अट्ठारह सै उनीस चौबीस मई को।
लियो जनम जग आय महरानी अति नीको॥

अष्टादस की बैस सुशोभित सिंहासन पर।
होय, भई कटिबद्ध मिटावन दुःख प्रजा कर॥

सम्बत तिरसठि ऋषि मास द्वै दिन करि शासन इन्द्र सम।
निज पुत्र पउत्रन मध्य किय त्याग जगत तेहि गुनि अधम॥५॥

जदपि अभागे भारत के दुरभागहि कारन।
आय नहीं श्रीमती सकीं इत हमैं उधारन॥
पर हम सब प्रियहुते उन्हैं पुत्रन की नाईं।
मान्यो उन भारत कलेस निज दुःख सदाई॥
अब सप्तम जो यडवर्डनृप भे शासक लखि हिन्द कहँ।
तेहि हेत सबै औरै कृपा अभिलाषहिँ यहि राज महँ॥६॥

उदै अस्तलौं राज पुरानन मैं सुनि पायो।
याते बढ़ि विस्तार ध्यान काहुहि नहिँ आयो॥
पै श्रीमती प्रताप रह्यो दसहू दिसि छाई।
होत न सूरज अस्त कबहुँ जाकी ठकुराई॥

महि मण्डल मैं नहिँ और नृप इती प्रजा शासित किया ।
पुनि इते काल ! याते जगत कहत "धन्य विकटोरिया" ॥७॥

तीजे हैनरिहि आदि तीनि राजा अतिभारी ।
बहुत बरष भरि चाव पुहुमि पाल्यो पनधारी ॥
तिरसठि बरष हमीर देव चित्तौरहिँ पाल्यो ।
अरिगन सकल कँपाय दरप तिन सबको घाल्यो ॥
पै अलप भूमि भोग्यो सबन षष्ठमांस महि इन लियो ।
तपि इन्द्र सरिस चौंसठि बरष अचल सुजस थापित कियो ॥८॥

भये मकाले आदि ऐतिहासक बहुतेरे ।
ग्लैड्स्टन ब्रैड्लादि राजनैतिज्ञ घनेरे ॥
टेनिसन प्रभृत कविन्द जासु राज्यहि छबि दीन्हो ।
सूरज रथ गति निन्दितार अवतारहि लीन्हो ॥
है सकल हिन्द जाके सरन तासु भक्ति उरमैं धरयो ।
सोइ जगत जननि विकटोरिया हाय आजु जग परिहरयो ॥९॥

कालिका सी अति ह्वै बिकराल दल्यो रिपुजाल धरे नव तौरनि ।
राम समान प्रजा प्रति पालि भरयो पुहुमी सुख सों सब ठौरनि ॥
पूरित कै जस सेत ससी सम कैरव साधु खिलाय सडौरनि ।
राजसिँहासन दै सुत को मलिका सुरलोक भरयो गुन गौरनि ॥१०॥

तुपक भुसुण्डिन बिदारि दलबोरन को
धीर बीर योधन समर महि डारयो है ।
ट्रांसवाल बहुरि मिलाय अधरम देखि
देस परदेस जस बिसद पसारयो है ॥

पादरिन पीड़ित बिलोकि तिमि चीन माहिँ
छिनमैं बिपच्छिन को गरब बिदार्‌यो है।
बिलपत छोड़िकै अनाथ इत पुत्रन को
हाय जगदम्ब अब कित पगुधार्‌यो है॥ ११॥

गादी उदयाचल पै होतहि उदित तम
चुंगिहि विनासि कंज बानिज खिलायो है।
कुमुदिनि दोष अरु दारिद मलीन करि
धरम लता मैं मोद फूल विकसायो है॥
सूरजमूखीहू हिन्द सुघर बनाय चोरगन
रिपु यूथन को दरप नसायो है।
भानु विकटोरिया प्रताप दरसाय, हाय
गोपित ह्वै जगमैं अँध्यार दुख छायो है॥१२॥

आय दुसह दुकाल इत जब ईस कोप समान।
धारि भीषम रूप धायो भरो रिस अतिमान॥
छाँड़ि साहस धीर जब सब लोग हा हा खाय।
छुधा पीड़ित लगे डोलन चहूँदिसि बिललाय॥१३॥
रहे जब नर चहत सुख सों जान कारागार।
मिलै जासों सांझ लौं भरि पेट तत्र अहार॥
एक कर मैं धारि बालक दुतिय कर फैलाय।
अन्न कन जब हुतीं जाचत तरुनि-गन बिलखाय॥१४॥
एक अंजलि धानहित जब मातु पितु अरु बाल।
रहे झगरत खान तिनकहँ भरे भूख कराल॥

गई जब नभ कुसुमसी घन आस झूठी होय ।
बारि धारन ठौर रबि कर परत लखि भय भोय ॥१५॥

उड़त पावस माहिँ जब नभ धूरि धार महान ।
लाज बस सहसांसु ढाकत मनहु मुख तजि मान ॥
रैनि मैं जब कुटिल अच्छन खोलि खोलि अकास ।
नखत गन मिस सरुष देखत रह्यो हिन्द निरास ॥१६॥

दया भरि तेहि समै जेहि धन धान्य अमित पठाय ।
लिये कोटिन छुधा-पीड़ित मरत लोग जियाय ॥
गई सो जग-जननि श्री विकटोरिया कित हाय ?
देखि ब्याकुल सुतन अब नहिँ गहति कर इत धाय ॥१७॥

पीड़ित ह्वै बस प्लेग हिन्द जब भरि भय भारी ।
हुतो बिकल बिललात चखन जल धारनि डारी ॥
तबहु चिकित्सक अमित बोलि जेहि रोग नसायो ।
ताप दाप ह्वै राहु हिन्द ससि गसन न पायो ॥
सो जगत-मातु विकटोरिया हाय गई सुरलोक थल !
पै तदपि हियो दरकत नहीं ओरिा कृतघ्नी हम सकल ॥१८॥

हा ! काशीप्रकाश ।

प्रस्तावना

प्रिय पुत्र काशीप्रकाश के जन्म होने पर हमें अपार आनंद हुआ था और उसके हृदय-विदारक मृत्यु पर और भी अपार दुःख हुआ। इससे क्या शिक्षा लेनी चाहिए सो स्पष्ट ही है, पर इन बातों का छिपा रखना हमने उचित न समझा। लड़का बड़ा ही प्रतिभावान् और होनहार था, जैसा कि निम्नलिखित छन्दों से ज्ञात होगा और इसीसे हमको उसका स्मारकरूपी यह पद्य लिखना पड़ा। हमको आश्चर्य्य हुआ करता था कि ऐसे पद्य स्वजनों के मृत्यु पर शोक-सन्तप्त लेखनी से कैसे लिखते बनते होंगे और प्रायः आठ मास तक इस ओर हमारी प्रवृत्ति कभी न हुई, पर अन्त को नवम्बर १९०७ के आरंभ से कुछ ऐसी तरंगें उठीँ कि हमें यह पद्य दौरे में लिखना ही पड़ा। यह पद्य केवल हमारी (श्यामविहारी मिश्र की) ओर से जान बूझ कर लिखा गया है, पर इसके रचयिता हम दोनों ही भाई हैं, जैसा कि हमारे सभी (गद्य एवं पद्य) प्रबन्धों में होता है।

श्यामविहारी मिश्र

११ । ११ । १९०७ । शुकदेवविहारी मिश्र

नोट—कई कारणों से यह पद्य अब तक नहीं प्रकाशित कराया गया था। अब छापा जाता है।

छतरपुर
२५ । ३ । १९१४ } "मिश्रबन्धु"

हम ध्रुव सत्य सत्य कहते हैं पढ़ने में पटु ऐसा ।
कोई कहीं कदाचित ही सुन पड़ता, यह था जैसा ॥
पन्द्रह मास मात्र में इसने कर ली थी उन्नति इतनी ।
पाँच वर्ष में लोग पाठशालाओं में करते जितनी ॥

—"मिश्रबन्धु"—
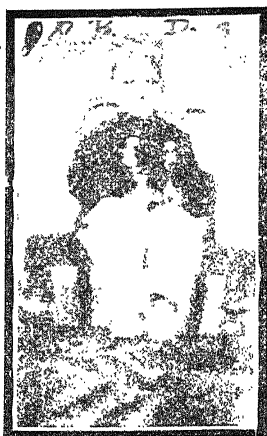
काशीप्रकाश मिश्र ।

जन्म	लखनऊ	मृत्यु
८ अगस्त १८६६	*	१६ मार्च १६०७

"हा ! काशी प्रकाश !!"

पाँचवाँ पुष्प ।

हा काशीप्रकाश ! (सं० १९६३) ।

हाय पुत्र काशीप्रकाश क्यों हमको छोड़ सिधारे ? ।
हुये अस्त इस अधम दिवस से पुण्य प्रताप हमारे ॥
मंगल बार सदाही अबतक मंगल मय था हमको ॥
वही आज होगया काल बिकराल पुत्र ! तव दमको ॥ १ ॥
स्वयं हमारा १ जन्म हुआ था इसी दिवस सुन प्यारे ! ॥
तुम भी पैदा हुए इसी दिन मम आँखों के तारे ॥
त्यों आदित्य-प्रकाश अनुज तव जन्म इसी दिन लीन्हा ।
सभी भाँति मंगल को हमने यों मंगल मय चीन्हा ॥ २ ॥
हाय वही मंगल अब हमको हुवा अमंगल-कारी ।
गए कहां प्रिय पुत्र ! हमैं तज बिलपत दीन-दुखारी ॥
चार पुश्त के भीतर ऐसा मेरे कुलमें प्यारे ॥
पड़ा नहीं था बज्र किसी पर, हे नैनों के तारे ! ॥ ३ ॥
नहीं पाँच या सात मास का हमने पुत्र गँवाया ।
खोकर दो या तीन वर्ष कर तनै नहीं दुख पाया ॥
सात साल औ सात मास ग्यारह दिन घर उजियाला ।
कर, कैसे प्रिय पुत्र ! किया तुमने मेरा मुँह काला ॥ ४ ॥

---

१ श्यामविहारी मिश्र का जन्म मंगल ता० १२ अगस्त १८७३ को हुआ था ।

एक वर्ष कम उन्निस सौ ईसवी साल जब आया ।
आठ अगस्त बार मंगल को तूने सुख सरसाया ॥
तुम उत्पन्न तीन बहिनों के बाद हुये थे प्यारे !
हुये इसी से हम लोगों के सबही भाँति दुलारे ॥ ५ ॥

दशाश्वमेध घाट पर काशी बीच गंग-जल भीतर ।
पट पसार कर तव माता ने मांगा था तेरा वर ॥
सात मास ग्यारह दिन भीतर शुभ अवसर पर आ कर ।
जन्मलिया तुमने सुखही सुख चारों ओर बढ़ा कर ॥ ६ ॥

कौन जानता था उस सुख का अंत महा दुख-दायी ?
अपने हाथों हाय ! पड़ेगा करना तोहि महि शायी ॥
उचित कपाल-क्रिया मेरी थी तव हाथों से प्यारे ।
हाय ! हृदय सौ टूक हुवा नहिं गति विपरीत निहारे ॥ ७ ॥

आज़मगढ़ में नौ अगस्त को डाक-अर्दली लाया ।
पत्र बाँच शुकदेव बिहारी का सुख हिय न समाया ॥
उछल पड़े हम गद्गद मन हो सब तन-दशा भुलाया ॥
"पुत्र हमारे हुआ अंत को" बार बार यों गाया ॥ ८ ॥

निज मुख बार हजार मुकर में देख देख सुख पाया ।
बिहँस बिहँस लाखों बिचार निज चित्त बीच दौड़ाया ॥
जाना हमने आज हुआ "वारिस" उत्पन्न हमारे ।
हाय ! हृदै सौ टूक हुआ नहिँ गति बिपरीत निहारे ॥ ९ ॥

" वारिस उसके हुए हमी अब" पड़ा हमें यह कहना ।
पोस्टाफ़िस सेविंग बैंक से लेना उसका लहना ॥

बैरी को भी परमेश्वर मत ऐसा दिवस दिखावै।
बार बार यह बर बिचार फिर फिर मेरे मन आवै॥ १०॥

गर्भाधान हुआ काशी में काशी-दत्त विचारी।
सोच भले "काशी प्रकाश" तव नाम रखा सुख-कारी॥
होगा पुत्र चिरंजीवी यह समझ गहा मुद भारी।
हाय! हृदै सौ टूक हुवा नहिँ गति बिपरीत निहारी॥ ११॥

आजमगढ़ में एक रात आकाश घोर घन छाए।
गरज गरज दामिनि दमकावत हिम पत्थर बरसाए॥
भय-वश तेरे हित तव माता हियसे तुझे लगाए।
रही निरन्तर ईश मनाती समझी नहिँ समझाए॥ १२॥

नहीं जानती थी वह ऐसा एक दिवस आना था।
जन्म जन्म को जिसे तुझै हम सबसे बिछड़ाना था॥
"घोर घाम हिम बारि बयारी" का भय भुलवाना था।
शून्य मसान बीच भूगर्भित तुझ को करवाना था॥ १३॥

नीले मख़मलकी अचकन पर टोपी कामदार काली।
क्याही फबती पुत्र! तुझे थी परम विशद शोभा शाली॥
देख देख छबि जैसे उस दम उठतीं हिये अनन्द-हिलोर।
लाख गुने उससे दुख-सागर में डूबे अब मिलै न छोर॥ १४॥

सवा सालही से नित्य प्रति प्रात खाट मेरी आना।
कागों दिशि "कौवा कौवा" कह तेरा बार बार धाना॥
त्यों अनेक क्रीड़ाएँ तेरी भूल नहीं सकतीं मुझको।
नहीं निठुरता आती जीमें हुई पसन्द जौन तुझको॥ १५॥

पर हम तुझे वृथा दोषैं क्यों ? तूने कौन कसूर किया ?
अपना ही सब भाँति भाग्य था फूट गया जो तू न जिया ॥
पातक घोर अवश्य किये होंगे जिनका यह है परिणाम।
औरों के मत्थे दूषण मढ़ने का तब बोलो क्या काम ? ॥ १६ ॥
अधिक बोल जब तू न सकै था तब भी कैसे चाव समेत।
मुझे कचहरी से आते लखते ही मम ढिग आने हेत ॥
उछल तेवारी१ की गोदी से तू पड़ता था कह "दादा"।
गदगद चित्त तभी हो उठता, चाहे होय कष्ट लादा ॥१७॥
"दाऊ" व्यर्थ कहाया सबने जो दादा प्रिय तुझको था।
बिना किसी के कहे सुनेही "दादा" तुझे हिये भाया ॥
"दाऊ" कहते चाहे "दादा" पर ऐसा क्यों घाव दिया ?
तुम्हीं बताओ प्यारे ! हमने क्या तेरा अपराध किया ? ॥ १८ ॥
घर से मेरे कमरे में धीरे धीरे तुम आते थे।
जूता, स्लिपर, खड़ाऊँ जो कुछ मिला उठा ले जाते थे ॥
भली भाँति चल सकते थे नहिं औ श्रम खूब उठाते थे।
मुझे ढूँढ़ते इन चीज़ों को देख बहुरि मुसकाते थे ॥ १९ ॥
कुरसी के पीछे छिप छिप कर "झाँ" कह होते ख़ूब प्रसन्न।
मुझसे भी "झाँ" कहला कर हो जाते महा मोद सम्पन्न ॥
सपने की सी यह बातें जब स्मरण हमैं हो आती हैं।
थर थर गात कँपाय हृदै बिचलाय नैन जल छाती हैं ॥ २० ॥
जब जब तुम बीमार पड़े तब तब चिंता जी में छाई।
हाय अगर चल बसा कहीं यह तो क्या होगा रे भाई ? ॥

---

१ जहाँगीराबाद के तेवारी यमुना प्रसाद जी।

सोच यही फिर फिर बेचैनी मन में बार बार आई ।
कुछ न कर सके आ पहुँचा जब वही काल अति दुखदाई ॥ २१ ॥
एक बार तब कड़ी रुग्नता की चिट्ठी पहुँची घर से ।
छोड़ बनारस हम धाये लखनऊ राम शिव शिव करते ॥
दद्दा १ औ शुकदेव मिले इस्टेशन पर हमको आगे ।
बन्दि चरण भय-भीत निरखने हम दद्दा की दिशि लागे ॥ २२ ॥
मन में आवे ईश ! कहीं यह दें न सूचना यही सुनाय ।
"रहा न प्रिय काशी प्रकाश" जो गिरैं भूमि हम कर हा हाय ॥
देख हमारी दशा गये दद्दा कारण उसका पहिँचान ।
दिया इशारे से सूचित कर कुशल प्रश्न तेरा सविधान ॥ २३ ॥
ढाई या शिव नेत्र सालही की जब आयु हुई तेरी ।
मम स्वागत हित इस्टेशन जाने में की न कभी देरी ॥
गोरखपुर से बाहर जब जब हुवा कभी मेरा जाना ।
सदा लौटते इस्टेशन पर तुझे देख हिय हरखाना ॥ २४ ॥
एक बार मम साथ गये लखनऊ तीन दिन रहे वहाँ ।
चलते समय कहा भाई २ से "बाबू ! मम खूराक कहाँ"? ॥
"दो खुराक बँधवाय राह को" यह सुन भाई हँसे ठठाय ।
पूड़ी औ पक्वान्न मिठाई दिया तुरंत तुम्हें मँगवाय ॥ २५ ॥

---

१ हमारे द्वितीय अग्रज श्री मिश्र गणेशविहारीजी ।

२ श्री मिश्र शिवविहारीलालजी, हमारे बड़े भ्राता, जिनको हम शेष तीनों बंधुगण "भाई" कहते हैं । लड़के इन्हीं को बाबू पुकारते हैं । भाई ने काशी-प्रकाश से पहिले दिन हँसते हँसते कहा था कि "मुनुवाँ घर में खायगा या ख़ुराक लेगा ?" इसी बात पर चलते समय उसने भी केवल ४ साल की उमर में मज़ाक़ किया ।

बस्ती को तबदील हुये हम वहाँ अल्प तेरी आई ।
हाथी झपट पड़ा तुझ पर तब भी विधि ने की कुशलाई ॥
घोड़ी ने फिर लात जमाई ऊपरका तव होंठ फटा ।
तर होगए रुधिर से कपड़े वारपार था घाव कटा ॥ २६ ॥

प्यारेलाल १ कचहरी धाए हाल कहा हमसे जा कर ।
विह्वल तन, सन्नाटा छाया, कँपा शरीर सकल थर थर ॥
घर जा कर तेरी गति देखो दंग हो गये लख तव धीर ।
घबराहट का नाम न पाया जरा फटकते तेरे तीर ॥ २७ ॥

पाँच वर्ष तक कई बार बोमार हुवा तू प्यारे !
तत्पश्चात् स्वास्थ्य तव सुधरी आशा बढ़ा हमारे ॥
जाना हमने ईश्वर ने अब तेरे विघ्न निवारे ।
हाय ! हृदै सौ टूक हुवा नहिं गति विपरीत निहारे ॥ २८ ॥

प्लेग लखनऊ में था जिससे गये इटौंजे २ भागे ।
गिरा चौतरे से नीचे तू दुख आया मम आगे ॥
कर्नल प्रेट सिविल सर्जन ने बाँह ठीक बैठाया ।
कष्ट विशेष न हुवा तुझे नहिं रही ऐब की छाया ॥ २९ ॥

चार सितम्बर सन उन्निससै पाँच चन्द्र शुभ बासर ।
षट सम्बत की आयु होत ही श्रीगणेश तू ने कर ॥
किया अरम्भ पठन पाठन का चमत्कार दिखलाया ।
जैसा बहुत देखने या सुनने में भी नहिँ आया ॥ ३० ॥

---

१ गँधौली ज़िला सीतापुर निवासी मिश्र सदाविहारी का पुत्र ।

२ यहाँ हम लोग प्रायः ४० साल रहे हैं और चारों भाई यहीं पैदा हुए ।

यों तो "कानी लड़की को भी उसका बाप सराहै" ।
"मरे पूत की आँख बड़ी" यह मसल प्रसिद्ध महा है ॥
पर हम सत्य सत्य कहते हैं पढ़ने में पटु ऐसा ।
कोई कभी कदाचित ही सुन पड़ता, यह था जैसा ॥ ३१ ॥

काशी विद्या पीठ विदित है तेरा हुआ प्रकाश वहीं ।
दीप मालिका की उजियाली अब तक भूली मुझे नहीं ॥
तब भी बुद्धि "प्रकाशमान" क्यों पढ़ने में न होय तेरी ?
होनी औशि चाहिये थी विद्या सुबुद्धि को तव चेरी ॥ ३२ ॥
पन्द्रह मास मात्र में तूने करली थी उन्नति इतनी ।
पाँच वर्ष में लोग पाठशालाओं में करते जितनी ॥
उस पर पाठ समझते थे तुम औरों से बढ़ सभी कहीं ।
फिर भी तीन चार घंटे से अधिक किसी दिन पढ़ा नहीं ॥ ३३ ॥

भारी भारी डिगरी लेता बड़ो सुगमता से प्यारे !
औवल होता सदा विश्व विद्यालय में यश विस्तारे ॥
"शिक्षावलि" का भाग पांचवाँ त्यों भूगोल, खगोल, हिसाब ।
नक़शे देश विदेशों के, थीं ज्ञात अनेकानेक किताब ॥ ३४ ॥

"सरस्वती" औ "भूषण ग्रन्थावली" तुझे मन भातीथी ।
"पूषण[1] नाम सूर्य्य का" कह कर ख़ूब हँसी आजाती थी ॥
पढ़ने में आश्चर्य्य जनक थी उन्नति सभी भाँति तेरी ।
ऐसा पुत्र गँवाय हाय ! उड़ जाय क्यों न धीरज ढेरी ? ॥ ३५ ॥

---

१ देखिए "भूषन भूषन सों तरुनी नलिनी नव पूषन देव प्रभासों" ।
—शिवराजभूषण छंद नं० १३० ।

निज शारीरिक दशा ओर भी .खूब दिया था तूने ध्यान ।
एक साँस में तू दौड़े था प्रायः दो फ़र्लाङ्ग प्रमान ॥
दौरे में लिख लिख कर मुझको पत्र भेजते थे प्यारे !
हाय ! कौन इस साल करैं यह ? कैसे कटैं दुःख भारे ? ॥ ३६ ॥

मेरा पत्र जाय दौरे से ले कर घर उसको धाते ।
"आई दाऊ की चिट्ठी" कह पढ़ पढ़ सब को समझाते ।
निज माता या बहनों को नहिँ कभी पत्र पढ़ने देते ।
"सबसे अच्छा हमीं पढ़ैंगे" यों कह हिये मोद लेते ॥ ३७ ॥

अपने चाचा को पहला जब पत्र लिखा तूने परसाल ।
उत्तर लिख शुकदेव विहारी तुझ पर हुये विशेष निहाल ॥
लिख भेजा "काशी प्रकाश को दो इनाम मेरा भाया" ।
हम ने शीघ्र किया वैसाही जैसा उन ने बतलाया ॥ ३८ ॥

होता तव यज्ञोपवीत अब कुछ ही दिवस बीतने पर ।
इतने में फट पड़ा कहाँ यह वज्र हमारे सिर आ कर ! ॥
कई बार हमने सोचा था हम हैं बड़े भाग्य शाली ।
हाय ! उतर अब गई बहुत दिन को मेरे मुँह की लाली ॥ ३९ ॥

एक बार जापान भेजना तुझे चित्त मेरे आया ।
अथवा तेरा गमन विलायत सो—एस हेतु हिये भाया ॥
सुन विह्वल होगई मातु तव रोरो व्याकुल किया मुझे ।
विवश मौन अब धारण करना पड़ा सदा को खोय तुझे ॥ ४० ॥

जन्म लखनऊ ही में बेटा ! यद्यपि हाय हुवा तेरा ।
आब हवा पर कभी वहाँ की तुझे पड़ी नहिँ यक बेरा ॥

रहना तेरा वहाँ अधिक जब हुवा तभी कुछ बीमारी।
औरशि हुई, जिससे डर लगता तुझे भेजते उत भारी ॥ ४१ ॥

उनतिस जैनुअरी को अंतिम बार वहाँ तुझको भेजा।
हरि प्रेरित छुट्टी लेने की कुमति हिये उपजी बेजा ॥
दोही चार दिनों में हूपिँगकफ़ ने तुझको आ घेरा।
"खोखो" करते लाल होय मुँह कँपने लगे गात तेरा ॥ ४२ ॥

लाख दवा होने पर भी आराम न खाँसी हुई कभी।
कुटिल काल ने और कुटिलता इतनेही में धारण की ॥
डेढ़ मास भी बीत न पाया आई ग्यारह मार्च कराल।
चढ़ा बुख़ार बेगसे तुम हो गए निपट बेहोश बिहाल ॥ ४३ ॥

देखा तुझे डाक्टरने संदेह प्लेग का बतलाया।
सबसे तुझको अलग किया सन्नाटा कठिन हिये छाया ॥
तव माता औ बड़ी बहिन त्यों घरके नर-नारी दो एक।
रहे साथ सेवा-सुश्रूषा करने को तेरी सबिवेक ॥ ४४ ॥

खुद हम या शुकदेवविहारी तुझको दवा पिलाते थे।
घरसे बाहर बाहर से घर फिर फिर आते जाते थे ॥
रहा रात भर चौकी पहरा हुआ प्रभात घटी शंका।
हम सोचे हम नहिँ पापी क्यों बाल होय तेरा बंका ॥ ४५ ॥

नहीं जानते कौन जन्म का पाप उदय फिर हो आया।
बाद शाम के कठिन ताप ने फिर अपना बल दिखलाया ॥
यद्यपि प्रथम दिवस से इसका बेग औरशि था कुछ कुछ कम।
पर इसने पल भरको तेरा कभी न छोड़ा जीते दम ॥ ४६ ॥

देते औषधि रहे डाकृर कई बार दिन में आते ।
किन्तु लाभ कुछ भी देखा नहिँ, दशा बिगड़ती ही पाते ॥
तेरी माँ फिर फिर कहती दूसरा डाकृर बुलवाना ।
दवा बदलने के दूषण गुन हाय ! न मन मेरा माना ॥ ४७ ॥
इतने में बादल घिर आये भादौं कैसे भयकारी ।
तड़पै तड़ित सघन घन गरजैं हुई हिमोपल झरि भारी ॥
बाम फेफड़े में निमोनिया का हो गया असर तेरे ।
हाय ! प्रकृतिने भी किस समय किया कुटिलत्व साथ मेरे ? ॥ ४८ ॥
मार्च्च अठारह को तुझको सर्जन कर्नल ऐंडर्सनने ।
कहा दोपहर समै देख "मरने का डर न ज़रा इसके" ॥
तोभी तेरी दशा रातको ऐसी बिगड़ गई प्यारे !
जिससे छूटा मम धीरज, तर हुये बस्त्र आँसुन सारे ॥ ४९ ॥
"हम न यहाँ अच्छे होंगे" यह वाक्य कहा था जो तूने ।
अब प्रभाव अपना दिखला कर उसने किया निरास मुझे ॥
फटा कलेजा प्रात दवा देते जब तूने कहा यही ।
"एकौ बात हमारी दाऊ ! आप मानते कभी नहीं"१ ॥ ५० ॥
"हमतो बेटा ! सदा सभी बातैं तेरी मानैं जीसे" ।
"पर कैसे नहिँ दवा पिलावें ? जिससे तुम होवो अच्छे" ॥
यों उत्तर दे दवा पिला कर भागे हम झट पट बाहर ।
फूट फूट कर लगे बिलपने, झरैं नैन आँसू तर तर ॥ ५१ ॥
कभी बड़ों के सम्मुख हम थे तेरे बिषय नहीं बोले ।
पर उस दिन दद्दाके आगे रोते इधर उधर डोले ॥

---

१ उसके ठीक ये शब्द थे "दाऊ ! आप तौ हमारि एकौ बात नाई मानति हौ" ।

नहीं सम्हाल सके रोना, दौड़े दद्दा सुन तेरा हाल।
तुझे देख लौटे बाहर, समझाने लगे मुझे तत काल॥ ५२॥
"पढ़े लिखे मूरख को दद्दा! बड़ा कठिन है समझाना"।
यों कह हम कलपते रहे पर दद्दा ने न एक माना॥
युक्ति युक्त बातें अनेक कर कुछ धीरज मम उर आना।
पर सपने की सी सम्पति वह नैक न थिर हो ठहराना॥ ५३॥
पंत और टंडन ने पुलटिस की सलाह फिर ठहराया।
न्यूमोनियाँ रोग था अब दोनों फेफड़ों तलक छाया॥
भाई औ शुकदेव पूँछने पुलटिस का सब हाल लगे।
कहा "कभी दो मूठ दवाई आई नहीं पसन्द हमें"॥ ५४॥
कहा डाक्टर ने "पुलटिस दो मूठ दवाई कभी नहीं।
"इसको सभी दशाओं में गुणदायक समझो सभी कहीं"॥
हाय! परन्तु इसी पुलटिस ने मेरा सत्यानाश किया।
अमिट, अचूक, भयानक इसने मेरे उरमें घाव दिया॥ ५५॥
साढ़े दस पर पहिली पुलटिस पुत्र! चढ़ाई तुझे गई।
घंटा एक मात्र में उसने करी दशा तव बिकल मई॥
तड़प तड़प कर तू रह जाता, पकड़े हाथ पैर थे लोग।
हुवा घड़ी की जुग सुइयों का किसी भाँति बारह पर योग॥ ५६॥
तभी प्रथम पुलटिस के हटते बांधी गई द्वितीय तुरन्त।
घोर निराशा तव मुख छाई तू ने जान लिया निज अन्त॥
देख बिकलता तेरी हम ने तुझे बहुत कुछ समझाया।
अब पुलटिस तीसरी न बाधैंगे कदापि मम मन आया॥ ५७॥

पर इस अधम मार्च उन्निस के बारह पर बत्तीस मिनट ।
ज्यों आए तव प्रान पखेरू उड़े, किया हमको चैापट ॥
हाहाकार पड़ा घर भर में रोवैं सब नर औ नारी ।
तव माता बिलपै सिर धुन धुन पड़ा वज्र दारुण भारी ॥ ५८ ॥
हाय ! बाँध इस पुलटिस को क्यों तुझ को निज हाथों मारा ?
शान्ति पूर्वक तुझे न मरने दिया कष्ट दीन्हा सारा ॥
मुझे और निज-माता को किस छोभभरी चितवन से देख ।
पुत्र ! प्राण तूने त्यागे, सो लिखते बनै न बात बिशेख ॥ ५९ ॥
हाय बात कर्नल ऐन्डर्सन की कैसे मिट गई नितान्त !
इतना भी जाना नहिं होगा चैाबिस घंटे में यह शान्त ? ॥
श्यामलाल को हाय ! इटावा से क्यों नहीं बुला भेजा ?
पुत्र ! प्राण तेरे नहिँ जाते वे तौहिँ लेते औशि बचा ॥ ६० ॥
जब जब भीर पड़ी हम पर तब श्यामलाल ही हुये सहाय ।
मरते मरते दो अवसर पर उन भैय्या १ को लिया जियाय ।
जैसी कड़ी पड़ीं बीमारी भैया को उन दोनों बार ।
उसकी आधो में काशी-प्रकाश का हाय ! हुवा संहार ॥ ६१ ॥
बड़े बड़े एल-एम-एस, एम-बी, एम-डी, सभी रहे सिरनाय ।
सब के आछत आठ वर्ष का पुत्र हमारा गया बिलाय !
पहुँच कहीं ऐसे अवसर पर जाते श्यामलाल जो हाय ।
तो एच-ए होने पर भी वे लेते मेरा तनै बचाय ॥ ६२ ॥
श्यामलाल को बुला भेजना सबही के मन में आया ।
पर भावी बश प्रगट रूप से नहीं किसी ने बात कहा ॥

---

१ काशीप्रकाश का छोटा भाई चिरंजीव आदित्यप्रकाश ।

अब पछिताए से क्या होता ? जब चुन गईं चिरैयाँ खेत ।
रोवो सिर धुन धुन पछिताओ क्यों न किया अवसर पर चेत ? ॥६३॥

शिक्षक बाँदा के गुलज़ारी-लाल अवस्थी का ऐसा ।
नहीं डाकटर देख पड़े त्यों हमको श्यामलाल कैसा ॥
बाँदा में किस उत्तमता से शिक्षा दिया अवस्थी ने ? ।
श्यमलाल त्यों स्वास्थ्य-निरीक्षण करते रहे इटावा में ॥ ६४ ॥

हाय ! न हम छुट्टी लेते, जाते न लखनऊ तो यह बात ।
क्यों होती ! क्यों जीवन भर को होता मुझ पर वज्राघात ? ॥
लड़के वाले लिये साथ में करतेथे अनन्द दिन-रैन ।
अब मिट्टी हो गया सभी सुख पड़ती नहीं घड़ी भर चैन ॥ ६५ ॥

लाल रमेशसिंह की कविता" पुत्र शोक" आई पर साल ।
उसे बाँच सन्तप्त शोक वश हुवा मुझे था दुख विकराल ॥
निम्न लिखित उत्तर मैंने उनको लिख भेजा था तत्काल ।
उसी ढंग पर जिस में उनने गाया था रो रो निज हाल ॥ ६६ ॥

"श्रीयुत लाल रमेशसिंह जू ! "पुत्रशोक" यह तेरो ।
"उर उपजाय महान ताप करि दियो बिकल चित मेरो ॥
"औरशि आपु पर आनि अचानक दुसह बज्र यह टूट्यो ।
"जासों तो सम धैर्य्यवान व्यक्तिहु कर धीरज छूट्यो ॥ ६७ ॥

"खोय पौत्र घनश्याम औरशिह्वै है बिलपति तव माता ।
"धीरज हाय ! कौन बिधि धरिहै तव पतनी सुख दाता ॥
"केहि बिधि धीर हिये तुव ऐहै पुत्र-रत्न इमि खोई ? ॥
"कुटिल काल की हाय कुटिलता समुझि सकै नहिँ कोई ॥६८॥

"पै हरि-इच्छा जानि आपु सम बुद्धिमान जे प्रानी ।
"धरत धीर सबही औसर पर अटल कर्म गति जानी ॥
"ईश करै चिरजीव रावरो दुतिय पुत्र सुखदाई ।
"जोड़ी तासु शीघ्र ही पठवै सब बिधि सुख सरसाई" ॥ ६९ ॥
नहीं जानता था मैं उस दम होगी मेरी यही दशा ।
व्यर्थ लालजी को मैंने धीरज का था उपदेश दिया ॥
जब निज सिर पर वही बिपति आ साल बीच घहराय पड़ी ।
तब धीरज का नाम नहीं आता मेरे ढिग एक घड़ी ॥ ७० ॥
प्रायः आठ मास बीते अब उसको परम धाम पाए ।
अब भी धीरज पास न आता जो उसकी सुधि बिसराए ॥
ऐसा एक दिवस बीता नहिँ याद न उसकी जब आई ।
बड़वानल सम जलै कलेजा चिंता रहै चित्त छाई ॥ ७१ ॥
नहीं हमैँ भैया की "जोड़ी" की बिशेष [१] इच्छा आवै ।
किन्तु ईश उसको चिरजीवी करै यही कहते भावे ॥
त्यों सपुत्र मम तीनों भाई करैं उजेला मेरा घर ।
औ काशीप्रकाश की आत्मा लहै शान्ति दीजै शिव ! बर ॥ ७२ ॥
जगदीश्वर ! माता ! पिता ! सुनिए विनती एक ।
उपर्युक्त मम प्रार्थना सिद्ध करो सबिबेक ॥ ७३ ॥

कैम्प बैठौली
जिला इटावा ।
११-११-१९०७ ।

---

१ ईश्वर-इच्छा से अब भैया की जोड़ी भी २४ । १० । १३ को आगई ! उसका भाई चि० आबाल प्रकाश भी अब वर्तमान है ।

छठा पुष्प ।

रघुसम्भव (स्वच्छन्द अनुवाद) (सं० १९६१)

(रघुवंश प्रथम सर्ग):।

(१) बानिहू अरथ क समान जे मिलेई रहैं
न्यारे न रहत कबो कौनहू दसान मैं ।
बानिहू अरथ की सफलता लहन काज
बन्दत सदाही गौरि सिव सबिधान मैं ।।
जगत के मातु पितु ह्वै करि दया सों भरि
पालि कै जहान जिन सुख सरसायो है ।
डमरू बजाय फिरि मोद को बढ़ाय गीत
व्याकरन दोउन प्रकटि दरसायो है ॥ १ ॥

(२) कहां दिनकर कुल जगत बिदित कहां
प्रतिभा अलप वारी मति मम रंक है ?
केवट बिहीन चहै केवल उडुप १ चढ़ि
तरन अपार मनु जलधि निसंक है ॥

(३) मन्द मति ऐसो तऊ कबि जस लेन चहौं
औसि जग हँसि है बिलोकि मो ढिठाई को ।
ऊँचे फल हेत जिमि बावन उठाय कर
केवल प्रकासत महान मूढ़ताई को ॥ २ ॥

---

१ छोटी फूस की नाव ।

(४) अथवा सुकबि गन पूरब मुदित मन
बरनन करि हरि कुल गुन आल महँ।
बागद्वार बिरचि दिये हैं प्रथमहिँ जग
उपकार हित करि स्रम सुबिसाल कहँ॥
चहत धसन तिन अनुपम द्वारन की
बाट धरि अब डर डारि हौंहू मन्द मति।
मनिन प्रथम जिमि बेधत कुलिस पुनि
सूत हू धसत तिन माहिँ निरदन्द सति॥ ३॥

(१०) हौं लघु बाग बली तबहू जे
सुने रघुबंसिन के गुन जालन।
चंचलता परिपूरन मोमन मैं
तनु धारि बसी तिन कारन॥
ते गुन मालन जाप किये बिनु
जात नहीं कितहू रहि मोसन।
ता हित हौं रघुबंसिन को बरनौं
अब डारि सबै डर लाजन॥ ४॥

(५) रहे जे पुनीत भरि जनम उदार मति
फल के उदै लौं स्रम करन में न थके।
सागर लौं पालि छिति घालि कै असुर जिन
दिविलौं बिसद पूरि राखे घोष रथके॥
(६) जाचक सकल सनमानि सविधान दिये
आहुति अमित मेध करि बेद पथ के।

जागि कै उचित खिन दोष के सरिस किये
दंडन बिधान नास कारी अनरथ के ॥ ५ ॥

(७) दान ही को नित जिन संचित कियो है बित
भाषन कियो है मित१ सांचु हित लागि कै।
दारन बर्‌यो है जिन वंश चालबे ही काज
जीत्यो है समर जस ही सों अनुरागि कै॥

(८) बालपने विद्यन को पढ़ि सबिधान जिन
यौबन में कीन्हों है बिलास मुद पागि कै।
धारि बिरधापन मैं मुनि गन रीति तजि
दीन्हो तन जोग की जुगुति महँ जागि कै ॥ ६ ॥

(९) गुनौ दोष जानैं भली भांति सों जे।
सुनैं मोद सों सन्त याको सदा ते॥
यथा कालिमा लालिमा हेम केरी।
सिखी ताप ही सों परै नैन हेरी ॥ ७ ॥

(११) वैवस्वत मनु माननीय पंडित गन महँ अति।
बेदन महँ ओंकार सरिस भो पहिलो नरपति॥

(१२) छीर सिन्धु सों चन्द सरिस ताके कुलावर मैं।
प्रगट्यो भूप दिलीप चारु जेहिँ धार्‌यो धरमै॥

(१३) उन्नत सम साल बिसाल२ भुज वृषभ कन्ध आयतहु उर।
निज करम योग बपु रूप धर छात्र धरम मानहु मधुर ॥ ८ ॥

(१४) सबके तेजहि छीनि३ सबन सों बढ़ि बल पायो।
धरि सरबोन्नत गात मेरु सम पुहुमि दबायो॥

---

१ थोड़ा। २ बृहत्, बड़े। ३ क्षीण करके।

(१५) आकारहि सम ज्ञान ज्ञान सम आगम[१] बाना ।
आगम सम आरम्भ[२] उदै[३] उद्योग समाना ॥

(१६) धरि भीम तथा मृदु राज गुन जाद[४] रतन मय सिन्धु सम ।
किय दूरि बुलायो आसरित अनुचित उचितहु गुनि मरम ॥ ९ ॥

(१७) मनु लैां थापित लीक छाँड़ि परजा नृप-बर की ।
सिच्छा बस तिल एकु नेकु बाहेर नहिँ टरकी ॥

(१८) तिनही के हित लागि प्रजन सों कर नृप लेई ।
ज्यों लै रबि जल सहस गुनो दै महि भरि देई ॥

(१९) करि केवल आभूखन कटक द्वै गुन नित उद्दित कियो ।
निज प्रखर मनीषा धनुष ज्या सों सबकारज साधियो ॥ १० ॥

(२०) मन्त्रहु इंगित ५ गोपि काज फल सों दिखरावत ।
ज्यों पूरब के करम फलहि सों भेद जनावत ॥

(२१) बिनु डर पालि सरीर अनातुर[६] धरम धरयो सत ।
बिनु लोलुपता अरथ बिना आसक्ति भोग रत ॥

(२२) मधि ज्ञान मैान बल मैं छिमा दान सुजस ईहा बिनहि ।
ये सतगुन सेवहिँ भूपतिहिँ सदा सहोदर सरिस रहि ॥ ११ ॥

(२३) बिषयन सों रहि अजित पार गामी बिघनन को ।
जरा बिनुहि नृप धरयो बुढ़ापे के गुन-गन को ॥

(२४) सिच्छन रच्छन भरन हेत सो भूप प्रजन को ।
भयहु पिता पितु मातु रहे केवल जनमन को ॥

---

१ शास्त्र—परिश्रम । २ कर्म, उद्योग । ३ फलसिद्धि । ४ जल-जन्तु । ५ चेष्टित हृदयगत विकार । ६ बिना रोगी भये ।

(२५) हो मरजादा लगि दंड अरु परिनय केवल सुतन[1] हित।
नृप प्रज्ञावान दिलीप के काम अरथ हे धरम नित ॥ १२ ॥

(२६) गो दुहि नृप मख लागि सस्य[2] हित हरि[3] आकासहिँ।
दुवौ दुहुन उपकारि दुवौ दुहुँ लोकन शासहिँ ॥

(२७) नृप गन छाँहहु छुई न तेहि रच्छक के जस की।
नामहिँ केवल छाँड़ि चोरता जग सों खसकी ॥

(२८) हो बैरिहु सज्जन ताहि प्रिय रोगिहि ओषधि ज्यों गनौ।
अरु प्रियहु अधम हो त्याज्य तेहि नाग दशित अंगुलि मनौ ॥ १३ ॥

प्रजा न पीड़ित लखी राज भृत्यन सों नेकहु।
ईति भीति को नाम सुन्यों परजा नहिँ एकहु ॥
इतही निरमित होहिँ बस्तु सिगरी सब बिधि की।
ही स्वतन्त्र सब भाँति प्रजा परि पूरन ऋधि की ॥
सब देस देस के प्रजन कहँ तुल्य भाग सब भाँति दिय।
सब कहँ परिपूरन ज्ञान दै आनन्दित नृप सबन किय ॥ १४ ॥

(२९) बिरच्यो धुव[4] तेहिँ पंच भूतके मूलन सों बिधि।
तासों ताके गुननि होत जग के कारज सिधि ॥

(३०) बेला[5] करि प्राकार[6] सिन्धु केवल करि खाईं।
पाली सिगरी भूमि एक नगरी की नाईं ॥
नहिँ आन भूप को राज कहुँ महि-मंडल मैं देखिये।
सम्राट सुशासक जगत को इक दिलीप कहँ लेखिये ॥ १५ ॥

---

१ सन्तान। २ खेती। ३ इन्द्र। ४ ध्रुव, निश्चय करके। ५ समुद्र की ऊँची लहर। ६ शहर पनाह।

(३१) दाच्छिन्य१ रूढ़ सुदच्छिना बर मगध बंसज की सुता ।
सो दच्छिना सम यज्ञ की ही भूप तिय सत गुन जुता ॥
(३२) सिगरे बृहत संसार मैं तेहिँ रानि अरु श्री सों सदा ।
आपुहि महीप दिलीप चारु कलत्रवन्त गुन्यो मुदा ॥ १६ ॥
(३३) तेहिँ आपु सरिस सुदच्छिना महुँ सुवन सम्भव चाह मो ।
बहु काल बितयो मनोवांछित लाभ हित नरनाहु सो ॥
प्रति मास गरभाधानकी कछु आस भूपति मन रहै ।
पै कामना लखि विफल प्रति दिन आस कछु लघुता लहै ॥ १७ ॥
आकास कुसुम कुरंग तृष्णहि सरिस झूठी जानि कै ।
निज आस, आखिर औधपति कछु विकलता उर आनि कै ॥
(३४) सन्तान हेतुक अनुष्ठान बिचारि भारी भुजन को ।
गुरु भूमि भार उतारि डारयो सचिव गन पै भूप सो ॥ १८ ॥
(३५) बिधिवत बिधातहि पूजि धरि हिय सुवन ईहा मुद रले ।
गुरु वर बसिष्ठ सु आस्रमहिँ ते चारु दम्पति तुर चले ॥
(३६) गम्भीर मधुर सुघोष कारक एक रथ पै यों लसैं ।
अति चारु पावस मेघ पै ज्यों तड़ित ऐरावत बसैं ॥ १९ ॥
(३७) आश्रमहिँ पीड़ा होय जनि यहि हेतु परिमित जन लिये ।
पै लसत सेना-सहित से इमि तेज तन पूरित किये ॥
(३८) सुख परस कर बर शालि धूपऽरु पुहुप रेनुन सों मिली ।
कछु करत कम्पित बिपिन पादप बायु रथ सेवन चली ॥२०॥

---

१ दाक्षिण्य- रुढ़, सरल, उदार और पराया कहा मानने वाले गुण से प्रसिद्ध ।

(३९) रथ-चक्र-रव सों बदन चारु उठाय सिखि प्रिय धुनि करैं।
सो द्विधा भिन्न सुषड्ज[1] सुनि नृप नारि सह आनँद भरैं॥
(४०) अति निकट रथ चलि जात तब मृग मिथुन[2] जे मारग तजैं।
हे डीठि रथ मैं दिये तिनकी सतिय चख समता लखैं॥ २१॥

(४१) बहु उड़त पंगति बाँधि सारस ब्योम मैं कलरव करैं।
बिनु खम्भ तोरन[3] रचे तिन के लखत दम्पति मुद भरैं॥
(४२) अनुकूल मारुत करत सूचित बासना की सफलता।
नहिँ पाग केसनि मैं तुरँग उदभूत रज किय मलिनता॥ २२॥

(४३) कछु बीचि बिच्छोभित सुसीतल गन्धि सरसिज माल की।
लहि सरन सों निज स्वास सम किय घ्रान मोद बिसाल की॥
(४४) बहु यूप[4] चिन्हित दान दीन्हे ग्राम गन मैं मोद सों।
अनु अरघ लहत अमोघ आसिष द्विजन सों चहुँ कोद सों॥२३॥

(४५) जे खरे बूढ़े गोप गो घृत लिए तिन सों मुद मये।
बन माहिँ चारु तरून के मग नाम पूछत जात ते॥
(४६) इमि सुघर दम्पति की बिराजति जात पथ परमा महा।
जनु जोग बस निरमुक्त हिम सों चारु चित्रा चन्द्रमा॥ २४॥

(४७) बुध सम सुन्दर महीप सो सकल निज
रानिहि देखावत महान मुद पागि मन।
भूलि से गये ते गैल चलिबे की दसा
इमि आनँद सों मग स्रम नेकहू भयो न तन॥

---

१ छः स्थानों से निकलने वाला खड्ज राग। नासा कण्ठ मुरस्तालु जिह्वा दन्तांश्च संस्पृशन्। २ जोड़ा। ३ फाटक आदि की डाट। ४ यज्ञ-स्तम्भ।

(४८) दुरलभ जसी निज महिषी को सखा नर-
पालक दिलीप साँझ समै नियरानो जब ।
बाहन थकित चित पूरित उछाह तऊ
पहुँच्यो है संजमी ऋषीस आसरम तब ॥ २५ ॥

(४९) गुपित अनल सन सेवित मुनीस गन
लसत अनेकन पुनीत आस्रम माहिँ ।
कर मैं बिराजैं फल कुस औ समिध इमि
पलटत कानन सों दुज बर दरसाहिँ ॥

(५०) परन कुटीन के दुवार अवरोधि कै
लहत हैं निवार माहिँ भाग भरि मोद गात ।
आसरम बीच ऐसे ऋषि तिय सन्तति से
पूरित कुरंग-गन चहुँघा सुखी लखात ॥ २६ ॥

(५१) लघु तरु गन मुनि बालिकन सिंचित
बिराजैं आसरम मैं चहूँघा सुखदाई हैं ।
जिनपै निडर बहु बिलसैं बिहंग आल-
बाल जल सीतल पियत जे सदाई हैं ॥

(५२) आँगन मैं परन कुटीन के अनूप जहँ
संचित निवारन की रासि दरसाती है ।
बैठि तहँ साँझ मृग जूहन की पाँति डर
डारि नित पागुरि करत मदमाती है ॥ २७ ॥

(५३) ज्वलित अनळ सन सौरभित धूम सुचि
आहुति सुगंध मिलि सुखमा भरत है ।

आवत अतिथि जौन आसरम बीच ताहि
उठि कै समीर सँग पावन करत है ॥

(५४) लहि सो सुगंध पाप दहि नरपाळ मनि
सारथिहि तुरँग बिराम देन कहि कै ।
रानिहिँ सुरथ सों उतारि प्रथमहि पुनि
आपु उतर्‌यो है मन माहिँ मोद लहि कै ॥ २८ ॥

(५५) नीति चख पालक महीपहि सदार गुनि
पूजन के जोग सुचि गोगन के जैतवार ।
मुनि गन पूजित कियो है सनमानि ताहि
बहु बिधि तासु करि आदर महा उदार ॥

(५६) संध्या बिधि अन्त महँ देख्यो मुनिनाह कहँ
चारु नरनाह धरि मन मैं महा उछाह ।
राजत अरुन्धती समेत जोतिमान मनु
स्वाहा सह लसत प्रतापवान हुतबाह ॥ २९ ॥

(५७) मागधी सहित नरनाहर सहित चित
चाव गहि गहे पद सतिय मुनीस के ।
दियो है असीस जुत पतिनी ऋषीस हित
कार देनहार फल चार बिसे बीस के ॥

(५८) अतिथि सुलभ सतकार सों नसो है जासु
मारग को रथ स्रम सकल बिधान सों ।
राज को कुसल ऋषिराज भयो बूझत अनंद
भरि तेहि राजऋषि सुखदान सों ॥ ३० ॥

(५९) तेहि अथरब ज्ञातार सों रिपु नगरी जेतार ।
कह्यो प्रयोजन निज बिसद बक्ता भूँभरतार ॥ ३१ ॥

(६०) राज अंग सातहू कुसल जुत होहिँ क्यों न
ये हो भगवान तप सागर उदार मति ।
दैवी अरु मानुषी हनत आपदन आप
जासु परकास करि करुना सदैव सति ॥

(६१) राजत इतो है तव मंत्रन को बल नहिँ
खलदल बैरिन को दूरि हू सों बचि जात ।
देखेहि पै बेधि जे सकत हैं निसानो मानो
मेरे ते नराच बिनु काज से भये लखात ॥ ३२ ॥

(६२) देत हुतभुक माहिँ आहुति सबिधि आप
तासों सब ताप तिहु काल मैं जरत हैं ।
ताके फल प्रकटि अकाल हू मैं सालि हित
नित थित कारि जल बरसा करत हैं ॥

(६३) बैस लहि पूरन सकल ईति भीति गत
सब बिधि सुखी मम परजा लखात जो ।
जग सुखदान दिनकर लौं प्रकासमान
ताको हेत एक तप तेज ऋषिराज तो ॥ ३३ ॥

(६४) आपु बिधि सुवन इबिधि जाहि चिन्तत हौ
ताके दुख दारिद की माल बिनसै न क्यों ? ।
आपद बिहीन छत जालन सों छीन तासु
पीन थिर सम्पति सदाही बिलसै न क्यों ? ॥

(६५) किन्तु यहिबधू तव माहिँ ऋषिराज निज
सरिस सुवन बिन लहे सुखदानियै।
दीपन समेत रतनन की अगार मोहिँ
भूमि हू रुचै न भगवान फुर मानियै ॥ ३४ ॥

(६६) बादि मम जानि पिंड छेदन पितर गन
संचित स्वधान करिबे मैं मन लाय कै।
जैान भाग लहत सराध मैं सविधि ताहि
भोजन सकत करि नेक न अघाय कै ॥

(६७) तैसेही मिलन जलदान दुरलभ मानि
गरम उसास नित लेतही रहत हैं।
बारि मम दियो करि ताही सों तपित नित
पान करि पीतर कलेसन सहत हैं ॥ ३५ ॥

(६८) सेत हिय राजत हैां मख करिबे सों तिमि
स्याम अति सन्तति बिहीन दरसात हैां।
सहित रहित परकास ऋषिराज आज
लोकालोक अचल समानही लखात हैां ॥

(६९) तप अरु दान को महान फल सुख दान
पावत जहान जन जाय परलोकही।
सुकृती सुवन तप दान सों सरस नित
पूरत सुजस एक रस दिव औ मही ॥ ३६ ॥

(७०) देखि तैहि सन्तति सों मो कहँ बिहीन खीन
दीन के दयाल कत गहत न खेद आप।

आसरम तरुवर सिंचित स्वकर जिमि
होय कै बिफल उपजावत महान ताप ॥

(७१) नाथ यह पीतर के रिन की दरद मोहिँ
दिन प्रति दुसह लखाति दुख दानि इमि ।
मरम बिदारक अलान करि देत महा
मत्त गजराज कहँ महत अधीर जिमि ॥ ३७ ॥

(७२) जौन बिधि छूटौं अब तौन रिन बंधन सों
कीजिये दयानिधान सोई उपचार नाथ ।
कठिन कुऔसर कराल के परे पै सदा
सिद्धि मनु बंसिन की रहति तिहारे हाथ ॥

(७३) कियो है निवेदन महीप यहि भाँति तब
नैनन को मूंदि मन रोध करि धरि ध्यान ।
थिर ह्वै रह्यो है मुनिनायक तरंग बिन
सुप्त मीनगन सह अचल तड़ाग मान ॥ ३८ ॥

(७४) ध्यान माहिँ मुनिबर लख्यो सुत अभाव कर हेतु ।
इमि सोइ भूप दिलीप सों बरन्यो ज्ञान-निकेतु ॥ ३९ ॥

(७५) "पूरब सेवन कै मघवा कर आपु जबै छिति ओर सिधारे ।
बैठो हुती तब मारग मैं सुरभी सुरपादप ही के सहारे ॥

(७६) मासिक न्हान किये गुनि रानिहिँ पातक त्रास हिये तुम धारे ।
पै परदच्छिन त्यों अरचा तेहिँ पूजन जोग कि नाहिँ बिचारे ॥४०॥

(७७) कीन्ह अनादर मेरो जुपै तेहि को तुम स्वाद भली बिधि पावहु ।
बालक को मुख देखौ तबै जब मो तनुजा पदपंकज ध्यावहु ॥

(७८) सो सुरभी को सराप नहीं सह सारथि आप सुन्यो यहि कारन ।

दिग्गज घोर कुलाहल पूरि नहातहुते नभ गंग कि धारन ॥ ४१ ॥

(७९) बालक भो तुम्हरे न अजौं यह तासु निरादर को फल जानहु।
पूजन जोगहि पूजे बिना नहिँ मंगल होत इतो अनुमानहु ॥

(८०) तौनि जलाधिप के मख हेतु पतालपुरी यहि काल बिराजति।
रच्छन के हित जासु दुवार भुजंगन की अवली छबि छाजति
॥ ४२ ॥

(८१) ता सुरभी तनया पद भूपति बाम समेत अराधन कीजै।
तासु प्रसन्न भयेही सबै बिधि कारज सिद्धि भयो गुनि लीजै" ॥

(८२) यों मुनि के कहतैहि अनिन्दित नन्दिनि धेनु अनन्दहि छाई।
आहुति साधनि हारि मुनीस कि ता थर कानन सों चलि आई
॥ ४३ ॥

(८३) कोमल कोपल सो तनु लाल ललाटहि बंक लसै सित टीको।
साँझ समै नभमंडल मैं मनु राजत है नव बिम्ब ससी को ॥

(८४) कुंड सो ऐन सुमेधहु के पय[1] सों पय[2] की अति पावनताई।
बच्छ लखे उतरे कछु ऊसम[3] छीरहि सों छिति सींचत आई
॥ ४४ ॥

(८५) नन्दिनि के पद-पंकज सों उठि धूरि पराग परी नृप के तन।
तीरथ न्हान को पुन्य महान दिलीप को लीपि दियो अघ ता
छन ॥

(८६) पावनि धेनु मनोरथ दायिनि देखि तपी मुनिनायक मोदित।
कारज सिद्धि बिचारि कह्यो अरथी यजमान सों बैन बिनोदित
॥ ४५ ॥

---

१ पानी। २ दूध। ३ उष्ण, गरम।

(८७) "मंजु मनोरथ भो तव भूपति यामहँ भूलिहु कै भ्रम नाहीं।
नामहि लेत सुकामना सिद्धि सी नन्दिनि आय गई तव पाहीँ॥
(८८) कन्द औ मूल फलादिक खाय निरन्तर गाय के ह्वै अनुगामी।
सन्तत पाठ सों विद्यन लौं अब याहि प्रसन्न करौ महि स्वामी
॥ ४६ ॥

(८९) याके चले तै चलौ, ठहरे ठहरौ, अरु बैठतही नृप बैठौ।
पानी पियेतै पिऔ तुमहूँ बन पैठतही तुरतै बन पैठौ॥
(९०) भोरहि रानि तपोवन छोर लौं प्रेम सों पूजि पठावन जावै।
साँझ समै मन लाय निरन्तर नेह कै गाय लिवाय लै आवै
॥ ४७ ॥

(९१) सेवहु भूप निरन्तर या बिधि जौ लगि धेनु प्रसन्न न होई।
आनँद सों बिचरौ सुतवान तिहारे समान लखाय न कोई"॥
(९२) प्रीति औ सील त्यों देसहु काल को ज्ञान महीप दिलीप दिखायो।
"ऐसोइ होउ" इहै कहि दम्पति मोदि गुरू सिष मैं मन लायो
॥ ४८ ॥

(९३) साँचु प्रिय मुनि प्रिय बानि को कथनहार
परम प्रवीन मन माहिँ मुद पायो है।
निसि गुनि आयसु नरेसहि सदार सैन
हेत दैकै उटज मनोहर बतायो है॥
(९४) बिरचि सकत सीस महल महीस लगि
मुनि तबहु न ब्रत नियम नसायो है।
सामा तपसीन ही की नरपति लागि दैकै
सैन हेत केवल उटज दरसायो है॥ ४९॥

(९५) कुलपति दरसित उटज मैं सोय कुसासन पाह ।
शिष्य पठन सों प्रात गुनि सतिय जग्यो नरनाह ॥ ५० ॥

(द्वितीय सर्ग) ।

(१) तबहि भोर जसोधन भूप सो
पय पियाय बछा बर बाँधि कै ।
लहेहु मालहु गन्ध प्रियाहि सों
सुरभि तैान तजी बन ओोर को ॥ १ ॥

(२) सुरभि धूरि परे मग पाक मैं
पतिब्रता गन मैं सब सों भली ।
नृप तिया अनु नन्दिनि के चली
स्मृति चलै अनु बेदन के यथा ॥ २ ॥

(३) भूप जसी तप कानन छोर सों
रानि बिदा करि कै करुनाकर ।
नन्दिनि कामदुहा तनुजा-युत
चारिहु सिन्धु से चारि पयोधर ॥
मेदिनि सी जो लसै अति पावन
रच्छन तासु कियो सबही बिधि ।
राजस नीति बिचारि मनो
ब्रतहू महँ भूप न तासु तजी सिधि ॥ ३ ॥

(४) सेवक सेस रहे सँग मैं तिनहूँ
कहँ भूप दिलीप दियो तजि ।

नन्दिनि पालन हेत व्रती नृप
जोगिनही सम भेख लियो सजि ॥
गो अनुगामि दिलीप कोऊ अँग
रच्छकहू न लियो अपने सँग।
केवल आपनेही बल सों मनु
बंसज पालि रह्यो अपनो अँग ॥ ४ ॥

(५) स्वादिल घास के कौर खवाय कै
दंसनिवारन कै खुजलावत।
रोक औ टोक करै मग मैं
नहिँ जात गऊ जितही मन भावत ॥
भूलिहु कै सपनेहु नहीं मन
इच्छित तासु कबौं बिसरावत।
राजन को महराज भयो इमि
धेनु अराधन मैं चित लावत ॥ ५ ॥

(६) धेनु करै बिसराम जबै
तबहीं नरपाल करै बिसरामैं।
त्यों चलिबे मैं चलै तिमि बैठत
बैठत धीर धरे बसुधा मैं ॥
पान करै जबहीं जल नन्दिनि
भूपहु वारि पियै अभिरामैं।
संग तजै नहिँ एकहु जाम
रहै परछाहीँ समान मुदामैं ॥ ६ ॥

(७) चीन्ह तजे सब राज सिरी के
तऊ नृप सो निज तैजहि के बस।
जानि नरेस परै अरु गोपित
श्री प्रगटै अनुमानहि सों अस॥
अन्तरही मद मत्त करी महँ
ज्यों मद धार स्रवै नहिँ बाहर।
पै झलकै गज गंड थली जिमि
कंज कली मैं पराग मनोहर॥ ७॥

(८) बंक लतानि गुथे बर केसनि
यों धनु बान धरे बन डोलत।
ज्यों सुरभी[1] सह नन्दन मैं रति
नाह भरो चित चाह कलोलत॥
रच्छन के मिसि होम गऊ बन
के खल जन्तुन को सिखदायक।
रूप किरात धरे हर सो तेहि
कानन मैं दरसो नरनायक॥ ८॥

(९) सो बरुनोपम भूप दियो सब
सेवक छाँड़ि मनो यहि कारन।
पच्छिन के मधुरे स्वर सों
दुहुँ ओर भये सब पादप चारन॥

---

१ बसन्त।

तै मदमत्त विहंग लगैं जनु
भूप चले जय बाद उचारन ।
✓ औध समान अनन्द महीपति
मंगल मूल करैं इमि धारन ॥ ९ ॥

(१०) पावक सो तनु तेजमयो नर-
पाल समीप जबै पगु धारत ।
पैान झकोरनि बाल लता तब
तापर फूल खिले इमि डारत ॥
आदर को जिमि पैार सुता
उपचार कि लाजन सों नरपालहि ।
पूरहिँ औध प्रबेस समै बर
बैठि झरोखनि मैं सुखमा लहि ॥ १० ॥

(११) चाप निषंग धरे तबहूँ इमि
दीह दया परकास लखाती ।
देखत मंजु मनोहर गात न
पाँति मृगान कि नेकु सकाती ॥
अंगनि अंगनि कोटि अनंगनि
की सुषमा सब भाँति लजाती ।
पाय बड़े चख को फलहू न
मृगी तेहिँ देखन माहिँ अघाती ॥ ११ ॥

(१२) पैान भरै बर बाँसन में तिन
सों मुरली सम तान सोहाई ।

पूरित होत दसौ दिसि मैं
बन मैं अतिही श्रुति आनँद दाई ॥
मानहु कुंजन मैं बन देव
भरे मुद मंजुल बीन बजाई ।
गावत कीरति भूपति की
पय-फेनसी जौन दिगंतर छाई ॥ १२ ॥

(१३) पावन भूपहिँ आतप आकुल
छत्र बिहीन बिलोकि तहाँई ।
सेवक सो तेहिँ सेवन के हित
मन्द समीर मिल्यो सुखदाई ॥
संग लिये झरना जल सीकर
त्यों हिम सों लहि सीतलताई ।
कम्पित कै तरु डारन को तिमि
फूल पराग सुगन्धि बसाई ॥ १३ ॥

(१४) ता बन पालक के फिरतै बन
मैं बिनहीं बरषा सुखदाई ।
गो बुझि घोर दवानल त्यों
फल फूल भये अतिही अधिकाई ॥
जीव हुते बलहीन जिते तिनको
बलवान सके न सताई ।
कानन हू मैं दिलीप महीपति
राज समाज सुनीति चलाई ॥ १४ ॥

(१५) सूर प्रभा मुनि धेनु दुवौ नव
कोपल सो रँग लाल धरे अँग।
संचरिबे सों दिगंत कै पावन
साँझ समै गृह गौन किये संग॥

(१६) देव श्रौ पीतर त्यों अतिथीन
को कारज साधिनि नन्दिनि के अनु।
मान्य महीप लस्यो सरधा सँग
राजत है बिधि[1] रूप धरे मनु॥ १५॥

(१७) झुंड बराहन के लघु तालन
सों उठि कै बन बीच लसैं बहु।
रूख बसेरन के ढिग आवन
राजि रहे बरही[2] छबि आलहु॥
बैठक स्याम कुरंगनि की जहँ
घास हरी छबि खानि बिराजत।
आवत भूप चले यह श्यामल
कानन श्री निरखे मुद साजत॥ १६॥

(१८) एकहि बार कि ब्याई गऊ निज
ऐन को भार सँभारत आवत।
त्यों तन की गुरुता सों नरेस
गनेस समान महा छबि छावत॥

---

१ अनुष्ठान आदि की रीति। २ मोर।

दोउन चाल मनोहर सों तप
कानन गैल कियो अति सोभित।
कामदुहा सँग ज्यों सुरपालक
नन्दन माहिँ करै मन लोभित ॥ १७ ॥

(१९) आवत भूपहि देखि चलो मग
मैं बन सों गुरु धेनु के पाछे।
रूप के प्यासे उपासे दुवौ तिय
के अनिमेष भये चख आछे ॥

(२०) गैल में भूप लसै सुरभी अनु
स्वागत मैं तिय सोहति आगे।
बीच दुहून के नन्दिनि सो दिन
औ रछपा बिच साँझ सि लागे ॥ १८ ॥

(२१) कै परदच्छिन त्यों परनाम
सुदच्छिना अच्छत भाजन लीन्हे।
इच्छित सिद्धि दुवार बिसाल
सुधेनु ललाटहि पूजित कीन्हे ॥

(२२) बच्छहि लागि हुती उतकंठित
धेनु तऊ नहिँ पूजन त्यागो।
दम्पति भे परसन्न महा फल
सिद्धि बिचारि तबै दुख भागो ॥ १९ ॥

(२३) दार समेत गुरू पद पंकज
सो विजयी नृप बन्दन कीन्हो।

साँझ को पूजन[1] कै सबिधान
गऊ दुहित्रे मैं तबै मन दीन्हो ॥
दोहन के अनु बैरि बिदारक
धेनुहि फेरि महीप अराध्यो ।
पूज्य प्रसन्न भये जग मैं केहि
नाहिन आपन कारज साध्यो ? ॥ २० ॥

(२४) पूजन दीपक सम्मुख राखि कै
धेनु सोवाय तिया सह सोयो ।
नन्दिनि प्रात जगै जब लैां
तेहि के पहिले उठि ता कहँ जोयो ॥

(२५) दीन उधारक कीरतिवान
सदार महीप महा व्रतधारी ।
या विधि रोज इकीस प्रमान
सहे सुत कारन संकट भारी ॥ २१ ॥

(२६) बाइसयें दिन सेवक भावहिँ
जानन की धरि कै मन इच्छा ।
होम गऊ मुनि की मन मोदित
भूपति की गुनि लेन परिच्छा ॥
गंग प्रपातहिँ सों तिन जालन
को बढ़ि कुंज लसै जहँ भारी ।

---

१ संध्यावंदन ।

गौरि गुरू[1] की गुहा गहिरी
मैं गई घुसि सो गुरु गाय सुखारी॥ २२॥

(२७) हिंसक जन्तु सकैं नहिँ या कहँ
भूलिहु कै मनहू सन पाई।
सोचि यहै गिरि की सुषमा
अवलोकन मैं नृप डीठि लगाई॥
देखि अपूरब भूधर श्री नर
पालहि तोष भयो न बनाई।
तौ लगि आय कहूँ सों अचानक
धेनुहि धाय धरयो मृगराई॥ २३॥

(२८) नन्दिनि आरतनाद महा हकि
घोर गुहा मैं प्रतिध्वनि छायो।
साधु महीपति सो सुनतै
गिरि की सुषमा सन डीठि हटायो॥

(२९) यों तेहि लाल गऊ पहँ केहरि
देख्यो महीप महा धनुधारी।
गैरिक मेरु समुन्नत[2] भू पर
ज्यों तरु लोध्र प्रफुल्लित भारी॥ २४॥

(३०) सिंहहि लागि तबै नरसिंह
सरन्य महीप निषंगहि सों सर।
कै अभिषंगहि[3] बध्य बधातुर
बैरि बिदारक लेन लग्यो कर॥

---

१ बड़ा, यहाँ पिता। २ अधित्यका। ३ क्रोध।

(३१) दच्छिन हाथ प्रहारक के नख
भूषत कंक पखा सर फोंकहि।
लागि रहीं अँगुरी सिगरी
मनु चित्र पटै लिखि लीन्ह उद्योगहि ॥ २५ ॥

(३२) हो मृगराज खरो समुहें
नृप ता अपराधिहि मारि सक्यो ना।
मारन कौन कहै तेहि को
तन छ्वै सकिबे मैं समर्थ भयो ना ॥
बाहु रुके ते बढ़ी रिस मों
निज तेजहि सों हिय तासु जरो है।
कीलित मन्त्र महौषध सों
बलवान मनौ अहिराज अरो है ॥ २६ ॥

(३३) आरज जाति सखा मनु नायक
सिंह समान बली नरपालहि।
बिस्मित हो बर बाहु रुके तेहि
औार अचम्भित कै ततकालहि ॥
धेनु धरे; नर बानिहि सों
मृगराज तहाँ अतिही सुषमा लहि।
संक बिहीन बली अपने
यहि भाँति कह्यो बिरतन्त बिसालहि ॥ २७ ॥

(३४) "अरे भूप श्रम छाँड़ु इतै बल के। नहिँ कारज।
तव प्रच्छेपित प्रबल अस्त्रहू मानत मैं रज ॥

फेंकत जौन प्रचंड पौन तरु जाल उपारी।
गिरि सिलानि पर सकत न रञ्चहु बल बिस्तारी ॥ २८ ॥

(३५) चढ़त जौन कैलास सरिस बर स्वेत बरद पहँ।
किय पावन मम पीठि धारि निज चरन कमल कहँ ॥
अष्टमूर्ति तेहि सम्भु केर किंकर जिय जानहु।
कुम्भोदर मम नाम निकुम्भहि मीत प्रमानहु ॥ २९ ॥

(३६) यह जो सम्मुख देवदारु बर बिटप लखाई।
सुत करि पालत सदा कृपा धरि तेहि गिरि राई ॥
गुह जननी कुच हेम कुम्भ पय परम सोहावन।
तासु अपूरब स्वाद जान यह तरु मन भावन ॥ ३० ॥

(३७) निज कपोल खुजलाय कदाचित बन गयन्दही।
त्वचा मथित करि दई अरच्छित यहि तरु बर की ॥
देखि तौन गिरिराज-सुता इमि सोच कियो मन।
बेधि कुमारहि दियो मनहु अस्त्रन दानव गन ॥ ३१ ॥

(३८) ताही दिन सों बन गयन्द गन कहँ त्रासन हित।
यहि गिरि गुहा मँझार नियोजित कियो सूलभृत ॥
मो कहँ दै सिंहत्व वृत्ति अंकागत[1] पसु महँ।
और न दूजी रीति उदर की ज्वाल समन कहँ ॥ ३२ ॥

(३९) छुधित व्रती मो छुधा सान्ति हित गुनि परमेस्वर।
यथा काल यह रुधिर पारना पठई रुचि कर ॥
करि अब सोनित पान तोष लहिहौं मुद भरि कै।
राहु करत जिमि पान सुधा ससि की पन धरि कै ॥ ३३ ॥

---

१ अंक में आये हुये।

(४०) सिस्य भगति तुम भूप बहुत गुरु मैं दरसाई ।
लाज धरहु मति नेकु भवन गवनहु नर राई ॥
जौन पाल्य नहिँ सकत होय अस्त्रन सों गोपित[1] ॥
अस्त्र धरन को सुजस होत तासों नहिँ लोपित ॥३४॥"

(४१) यों सुनि बैन गुमान भरे
मृगनायक के नरनायक ता छन ।
जानि लियो मन माहिँ गिरीस
प्रभावहि रुद्ध भुजा कर कारन ॥
हो धिरकारत बारहि बार
स्वबाहु बलै नरपाल मनै मन ।
कै वह न्यून अनादर आपन
भूपति धीर कियो कछु धारन ॥३५॥

(४२) बान चलाय सक्यो प्रथमै नहिँ
भो भुजदंड पराक्रम हीनो ।
ज्यों पवि बाहत बाहु पुरन्दर
त्र्यम्बक देखतही जड़ कीनो ॥
भीर परे बिचलैं न कबौं
नहिँ धीर तजैं बुध दीन दसाहू ।
कारज साधन काज यहै गुनि
भाषत भो हरि[2] सों नरनाहू ॥ ३६ ॥

---

१ रक्षित । २ सिंह ।

(४३) "थम्भित जासु क्रिया सिगरी
तेहि को कहिबो उपहासहि लायक ।
जानत अन्तर भाव सबै
तेहि कारन तोहिँ कहौं मृगनायक ॥

(४४) मान्य हमैं वह थावर जंगम
को निरमायक पालक घायक ।
आहुति साधक श्री गुरु को
धन नाशत देखत हू दुखदायक ॥ ३७ ॥

(४५) ह्वै तेहि तै परसन्न अरे हरि
मो तन सों निज दूरि छुधा करु ।
साँझहि बाल बछा उतकंठित
या मुनि धेनुहि छाँड़ि दया धरु "॥

(४६) सैल गुफा अँधियार घनो
तब खंडित कै गुरु दन्त मयूखन ।
किंचितही मुसुकाय सदा-
सिवदास कह्यो "सुनु हे नरभूषन ॥ ३८ ॥

(४७) जग प्रभुता अरु एक छत्र तव राज बिराजत ।
नव बय तन छबि चारु देखि रति-नायक लाजत ॥
यह सब अति लघु बात लागि तुम नासन ठानत ।
यातै तुमहिँ बिचार मूढ़ मैं मन अनुमानत ॥ ३९ ॥

(४८) प्रानिन पै यहि भाँति दया भूपति जो तेरी ।
तो मरिबे सों धेनु एक बाचति मुनि केरी ॥

जुपै कुहठ करि आजु भूप नहिँ तन परिहरिहैा ।
प्रजहि बिघन सों पितु समान नित रच्छित करिहैा ॥ ४० ॥

(४९) एक धेनु अपराध लागि कोपित गुरु केरी ।
मूरति ज्वलित कृसानु सरिस यदि सकत न हेरी ॥
तैा ताकी रिस घोर सकहु छिन मैं हरि भूपा ।
दै कोटिन तेहि धेनु घटोध्नी परम अनूपा ॥ ४१ ॥

(५०) तासों सब कल्यान पाँति की भोगन हारी ।
तेजवती बलवती राखु निज देह सुखारी ॥
राजस पद सुभ सरस सम्पदा सों परिपूरित ।
तजि केवल महि परस पुरन्दर पद समझहु चित ॥ ४२ ॥"

(५१) यों कहि कै चुप साधि लियो
मृगराज तबै गिरिराज गुफा सों ।
केहरि नाद समान प्रति ।
ध्वनि ता थर पूरि रही चहुँघा सों ॥
सिंह सलाह गिरीस मनो
अनुमोदित प्रेम पसारि कियो है ।
है प्रतिशब्द नहीं हिय को
तेहि मानहु भाव बताय दियो है (४३)

(५२) यों सुर-सेवक के सुनि बैन
महीसुर नन्दिनि ओर निहारी ।
नाहर चंगुल सों अति कातर
तासु तुवैा दृग दीन दुखारी ॥

देखतही पछितात नराधिप
व्याकुल दीह दया उर धारी।
ता मृग नायक सों यहि भाँति
बहोरि कह्यो बिनती कर मारी ॥ ४४ ॥

(५३) "त्रान करै निहिचै छत[1] सों
यहि कारन छत्रिय नाम परो है।
जाहिर या बसुधा-तल मैं
यह बैन महान प्रभाव भरो है॥
ता गुन सों विपरीत चले
नृपता महँ लाभ कछू न लखाई
प्रान मलीन धरे धिक है
अपकीरति जासु दसों दिशि छाई॥

(५४) या सुरभी कहँ कामदुहा
सन नेकहु न्यून हिये न विचारहु।
सम्भुहि के परताप सके
धरि या कहँ आप यहै निरधारहु॥
आन गऊ गन सों गुरु कोप
सिराय सकै कहु कौन उपायन
काँचहि लै बदलै न कोऊ मनि
कोटि प्रकार परौ किन पायन ॥ ४६ ॥

(५५) दै तन आपन या कहँ आजु
छोड़ावन मोहिं भलो सब भाँती।

---

१ घाव।

जीवन जाय तौ जाय चलो
सहि जाति नहीं अपकीरति पाँती ॥
या बिधि सों तव पारन में
नहिँ मोकहँ नेकहु हानि लखाई ।
त्यों मुनि की मख होम क्रिया
कर साधन ह्वै न नसै मृगराई ॥ ४७ ॥

(५६) हौ तुमहूँ परतन्त्र मृगाधिप
जानत हौ तेहि तें यह नीके ।
रक्ष्य पदारथ नास कराय
सुरच्छक आछत आपने जी के ॥
स्वामिहिँ क्यों दिखराय सकै
मुख लाज बिहाय कहौ नर कोई ।
पालत हौ यहिँ पादप को
यह सोचि बिचारि सबै सुख गोई ॥ ४८ ॥

(५७) जो मोहिँ मारन जोग न मानत
तौ इतनी बिनती सुनि लीजै ।
जासु विनास नहीं तेहिँ मो जस
के तन पै करुना अब कीजै ॥
नास सकै टरि जासु नहीं
जग कोटि उपाय करै किन कोई ।
ता तन भौतिक[1] पै मोहि से जग
जीवन की सरधा नहिँ होई ॥ ४९ ॥

---

[1] पंचभूतात्मक ।

(५८) सम्भाषन सम्बन्ध केर कारन पहिँचानौ ।
सो हम तुम बन मिले भयो पूरन सति मानौ ॥
हे हरगन ! यह कहत सबै जग पडित लोगू ।
सम्बन्धी को प्रथम बचन नहिँ टारन जोगू ॥
अब हम तुम सम्बन्धी भये तेहि सम्बन्धहि चित धरहु ।
मृगराज निहोरहुँ तुमहिँ मम प्रथम बिनै पूरन करहु" ॥ ५० ॥

(५९) "एवमस्तु" यह बचन कह्यो जब सिंह सुखारी ।
भूपति को छुटि गयो तुरत थम्भित भुज भारी ॥
डारि सबै हथियार तबै महि पर महि साईं ।
मास पिंड सम कियो देह अरपित तेहि ठाईं ॥

(६०) हो सिंह पात परखत दुसह नरपति नत आनन करे ।
तबलौं बिद्याधर कर मुकुत पुहुप माल तन पै परे ॥ ५१ ॥

(६१) "उठहु बच्छ" यह अमिय सरिस बानी सुखदायक ।
सुनि अचरज करि तुरत उठ्यो मुदभरि नरनायक ॥
उठि देख्यो नरनाह न तहँ नाहर दरसाई ।
स्रवत छीर थन खरी धेनु जननी की नाई ॥ ५२ ॥

(६२) तेहि बिसमित लखि कह्यो नन्दिनी मन मुदधारी ।
"माया रचि मैं साधु ! परिच्छा लीन्हि तिहारी ॥
मुनि प्रभाव सों सकत जमहु नहिँ मोहिँ प्रहारी ।
ए बपुरे करि सकत कहा हिंसक अबिचारी ॥ ५३ ॥

(६३) गुरु महँ अबिचल भक्ति दया निज मैं तव देखी ।
हौं प्रसन्न सब भाँति पुत्र बर माँगु बिसेखी ॥

मोहिँ केवल पय देन हारि मन मैं मति मानहु ।
मो प्रसाद सों मिलहिँ कामना सब यह जानहु" ॥ ५४ ॥

(६४) निज भुज-बल सों लहेहु बीर पदवी जेहिँ भारी ।
कर-कमलन तब जोरि भूप जाचक सतकारी ॥
बंस चलावन हार अमित जस कर बड़ भागा ।
तिय सुदच्छिना माहिँ जगत बिजयी सुत माँगा ॥ ५५ ॥

(६५) "एव मस्तु" कहि बचन भूप सुन कामिहिँ दैकै ।
पयस्विनी सो गाय बहुरि बोली मुद लै कै ॥
पात द्रोन लै पूत पियहु पय मम हरषाई ।
सुनि यह आयसु तासु भूप बोल्यो सिरनाई ॥ ५६ ॥

(६६) "मुनि आयसु लहि मातु चहहुँ तब छोर पियन वह ।
बच्छ प्याय जो उबरि रहै करि होम क्रियन कह ॥
ज्यों पुहुमी कहँ पालि भूप मन मोद बढ़ाई ।
छठो भाग नित लेत ईति की भीति बचाई" ॥ ५७ ॥

(६७) यहि बिधि सुनि नृप बिनै धेनु मुनि की तेहि काला ।
भई अधिक पसन्न देखि नृप नीति बिसाला ॥
तब नन्दिनि तेहि साथ तीनि गिरि राज गुहा सों ।
बिनु श्रम आश्रम ओर चली पूरित परमा सों ॥ ५८ ॥

(६८) भूपन को सिख दानि नराधिप
पूरन इन्दु लसै मुख जाको ।
मोद मये तन चीन्हन सों
मनु भाषि दियो बरदान महा को ॥

सो पुनरुक्ति समान बखान सों
फेरि कह्यो गुरु और प्रिया सों।
मोद अपार लह्यो सुनिकै
तिन सो कहि जात कहौ इत कासों ? ॥ ५९ ॥

(६९) सज्जन मीत अनिन्दित भूपति
बच्छ पियाय अनन्द भर्‍यो है।
नन्दिनि को बर छीर सुधा सम
होम क्रिया हित फेरि धर्‍यो है॥
आयसु लै मुनिनायक सों
पुनि दूध अनूपम जो उबर्‍यो है।
सो जस सेत समान तिया
सहकै सरधा तहँ पान कर्‍यो है॥ ६० ॥

(७०) आयसु ज्यों मुनिनाथ दियो
तेहिँ भाँति भयो नृप को ब्रत पूरन।
पारन कै पुनि भाँति भली अति
दम्पति मोद लह्यो अपने मन॥
भोरहिँ मंगल मारग हेत
अनेक प्रकारन देइ असीसन।
भूपहि औध सबाम पठायो
बसी मुनिनाथ समेत मुनीसन॥ ६१ ॥

(७१) होम हुतासन त्यों गुरु औ गुरु-
नारिहु को परदच्छिन कीन्हो।

नन्द समेत अनिन्दित नन्दिनि
के पद बन्दन कै मुद लीन्हो ॥
पावत मंगल भाँति अनेकन
भूपति भूरि प्रताप बढ़ाई ।
पावन कीरति पूरि दसौ दिसि
औध पयान कियो हरषाई ॥ ६२ ॥

(७२) स्रौन सुखद गम्भीर जासु निरघोष सुहावन ।
अव्याहत[1] गति चलत सपदि आनँद उमगावन ॥
सहनसील नृप सतिय चल्यो तेहि रथ चढ़ि तूरन ।
मुनि बर बिसद प्रभाव मनोरथ निज करि पूरन ॥ ६३ ॥

(०) आयो जेहि मग भूप चल्यो सोई मग लागो ।
सोई बन छबि नैन सुखद पेखत मुद पागो ॥
पै अब वह बन लग्यो अतिहि रमनीय दिलीपहि ।
भयो न अस आनन्द कबहु मनु के कुल दीपहि ॥ ६४ ॥

(७३) अति उतकंठित प्रजा नृपहि बहु दिन बिनु देखे ।
प्रजा[2] लागि ब्रत अन्त ताहि कृश तन अवरेखे ॥
तबहुँ ताहि कृतकत्य जानि पायो मुद भारी ।
ईद चन्द नव निरखि जमन जिमि होत सुखारी ॥ ६५ ॥

(७४) नृप निज पुर मैं जौन पताकनि ध्वजनि सँवारो ।
अभिनन्दित ह्वै प्रजनि पुरन्दर सम पगु धारो ॥
भुज भुजगेस समान सार[3] धर सों मुद धारी ।
बहुरि महीप दिलीप धरयो धरनी धुरभारी ॥ ६६ ॥

---

१ बिना रुके । २ सन्तान । ३ बल ।

(७५) अत्रि ऋषिराज जूके नैन सों कढ़ा है जौन
तौन तेजपुंज चन्द धारयो जिमि आसमान ।
पावक तज्यो है जौन हर को ज्वलित तेज
तौन जिमि जन्हुजा धरयो है अति भासमान ॥
पुर में प्रवेस कै सुदच्छिना मुदित मन
ताही विधि मनुकुल करन प्रकासमान ।
गुरु के प्रभाव लोकपाल अनुभाव नर-
राव सों गरभ धरयो परम उजासमान ॥ ६७ ॥

नोट—जिन पदों के प्रथम ✓ का चिह्न लगा है, वे कालिदास के नहीं हैं, बरन उस छन्द में अपनी ओर से लगाये गये हैं। शायद एकाध शब्द कालिदास का भी किसी किसी पद में हो ।

(तृतीय सर्ग) ।

(१) देखति हैं रुचि आनन की
सजनी जन रोज अनन्द बढ़ाई ।
त्यों मनु बंसहि राखन हारि
सबै बिधि सों सुषमा उपजाई ॥
भूप दिलीपहि आनँद दानि
महा मुद मंगल मोद निसानी ।
प्रापति काल सु दोहद चीन्हन
धारन कीन्ह तबै महरानी ॥ १ ॥

(२) छीन सरीर भयो तेहि लागि
अपूरन भूषन धारन कीने ।
आनन मैं पियाराई परी
मनु राजत चम्पक फूल नवीने ॥
भूप दिलीप तिया इमि सोहति
मानहु रैनि प्रभा भिनुसारे ॥
नेक प्रकास धरे ससि संयुत
थोरेहि जा मैं बिराजहिँ तारे ॥ २ ॥

(३) दोहद के बस रानि मनोहर
काबिस को रुचि सों कहुँ खायो ।
ताकी सुबास मयो मुख कन्त
इकन्तहि सूँघत तोष न पायो ॥
ज्यों सरसीन मैं ग्रीषम अन्त
परे नव बारिद बुन्द सोहाये ।
सूंघत मन्द सुगंध गयंद
अघात न नेकु अनन्द बढ़ाये ॥ ३ ॥

(४) त्यागि सबै रस की अभिलाष
दिलीप तिया अति आनँद पागी ।
सोचि बिचारि मनो यहि कारन
केवल काबिस मैं अनुरागी ॥
भोगत ज्यों दिवि को सुरराज
तथा मम बालक ह्वै धनुधारी ।

पूरित कै रथ घोष दिगन्तन
भोग करै बसुधा यह सारी ॥ ४ ॥

(५) लाज के कारन मोसों प्रिया
कछु भोजन की नहिँ चाह जनावै ।
कौन पदारथ या जग मैं
अस रानिहि जौन हिये अति भावै ? ॥
सादर कोसलराज यहै दिन मैं
बहु बार सखीन सों भाषै ।
जासों सदा तन सों मन सों
धन सों सब पूरी करौं अभिलाषै ॥ ५ ॥

(६) दोहद चाहन सों दुख सील
पदारथ जोई कह्यो तिय लावन ।
मानो धरो पहिले सों रह्यो
इमि सामुहे सोई लख्यो मनभावन ॥
भूपति चाहत जौन पदारथ
नाकहु सों धनुबान प्रभावन ।
सो न अलभ्य लख्यो तितहू
महि की तहँ का चरचाहि चलावन ॥ ६ ॥

(७) या बिधि के उपचारन सों
क्रम सों जब दोहद पीर सिरानी ।
खोय गई पियराई सबै
अँग अंगनि पीवरता दरसानी ॥

योँ परिपूरन चन्द छटा सम
आनँद सों बिलसी महरानी।
बेलिन में पतिभार भये जिमि
कोपल की अवली हरियानी ॥ ७ ॥

(८) योँ कछु द्यौस बितीत भये पै
धर्यो कुच पीवरता अधिकाई।
त्यों तिनके मुख पै सुखदानि
अनूपम श्यामलता दरसाई ॥
गोल सचिक्कन उन्नत चारु
बिसाल उरोजन की छबि छाई।
भौंरन सों लपटी जुग कंज
कली जिनको लखि जाहिँ लजाई ॥ ८ ॥

(९) ज्यों निधि धारन हारि धरा कहँ
आदर देत धराधिप नीके।
पावक अन्तर राखन हार
यथा मुनि सींचत रूख समी के ॥
ज्यों जल सीतल पूरित ही तल
पूजत लोग महीतल बानी।
तैसेहि सत्ववती मन में गुनि मानत
भूप सदा महरानी ॥ ९ ॥

(१०) प्रान प्रिया अनुराग तथा मन
उन्नति के अनुसार महीपति।

त्यों भुज दंडन के बल संचित
जौन दिगन्तन की गुरु सम्पति ॥
त्यों निज धीरज के अनुसार
दिलीप भुवाल महा मुद छावत ।
पुंसवनादि क्रिया सविधान किये
अतिही परमो उमगावत ॥ १० ॥

(११) धरे गरभ बसु लोक
पाल गन अंसन ही को ।
तासु भार बस बिबिध
जतन करि तजति मही को ॥
चख तरल थकित जुग कर
कमल आदर हित अंजलि भरत ।
इमि रानी घर आगत नृपहि करि
स्वागत पुलकित करत ॥ ११ ॥

(१२) बाल-चिकित्सा निपुन
यथारथ यतन वैद्य करि ।
पालत रहत सदैव गरभ
क्रम विविध भांति धरि ॥
गुनि प्रसव समो सन्तान को
भूपति मुद मंगल भयो ।
ऋतु पावस में सह मेघ नभ
सम रानिहि देखत भयो ॥ १२ ॥

(१३) उचित काल तब सची-
सरिस रानी सुत जायो ।
जिमि त्रिसाधना अखै
अरथ जग मैं उपजायो ॥
बिनुसूर चारु पाँचौ सुग्रह
उच्च स्थल मैं परि सुखद ।
तैहि सुवन मनोहर को प्रगट
कियो भाग पूरन बिसद ॥ १३ ॥

(१४) पौन चल्यो सुखदानि महा त्यों
भईं परसन्न दिसा सब ता छन ।
दच्छिन ही सों घुमाय सिखा निज
आहुति लीन्ह समोद हुतासन ॥
भो चख गोचर मंगल ही
सिगरे जग मैं तैहि काल सबै बिधि ।
या बिधि के नरसिंहन को
अवतार सदैव करै जग की सिधि ॥ १४ ॥

(१५) सुन्दर बालक सो निज तेज
सुभाविक पूरि दसौ दिसि माहीं ।
मन्द किये सब दीपक जे
अधराति प्रसूति-घरै दरसाहीं ॥
बाल लसै दिननायक लों
दिन दीपक से निसि दीप लखाहीं ।

चारु प्रदीप चितेरन सों
मनु चित्रित चित्रपटीन सोहाहीं ॥ १५ ॥

(१६) ही जिनकी रनिवासहु मैं
गति ते सिगरे चित चाव बढ़ाई ।
पुत्र भयो यह बानि सुधा सम
मोदि कह्यो नरपालहि जाई ॥
नाहिँ अदेय रही तिनके हित
सम्पति जो छिति मंडल छाई ।
केवल छत्र सुधाधर सो
तिमि दोय सु चामर चारु बिहाई ॥ १६ ॥

(१७) पैान बिहीन सरोजहि से थिर
ईछन सों सुत सुंदर को मुख ।
देखन में तेहि काल अलौकिक
जौन महीप दिलीप लह्यो सुख ॥
सो न समाय सक्यो तन में
बरु बाहेर सीमहि लाँघि भयो इमि ।
पूरन चन्द बिलोकि गुनागर
सागर को जल ओघ बढ़ै जिमि ॥ १७ ॥

(१८) पावन औधहि आय तबै
तप कानन सों तप खानि पुरोहित ।
तौन अलौकिक बालक के सब
जातक कर्म किये मन मोदित ॥

भो तिन सों वह भूप दिलीप
तनै गुन खानि अतीव सुसोभित ।
आकर सों कढ़ि कै मनिमाल
खराद चढ़े जिमि होहिँ यथोचित ॥ १८ ॥

(१९) मंगल बाजन की धुनि मंजुल
पूरि रही श्रुति आनँद दानी ।
नाचहिँ बारबधू गन त्यों
नहिँ केवल भूपति की रजधानी ॥
पै नभहू महँ चारिहु ओर
नचैं सुरनारि बजैं बर बाजे ।
पीतर लोकन सों कढ़ि कै
मनु आय अकासहि मंगल साजे ॥ १९ ॥

(२०) सिच्छक पाय दिलीप महीप
न भूलि करै अपराधहि कोई ।
तातै लहै नहिँ दंड कोई नहिँ
नेकु कबौ बँधुवा नर होई ॥
बन्धन सों जब छोरन को
सुत उच्छव मैं नर एक न पायो ।
पीतर के ऋन बन्धन सों
तब आपुहि मोदि महीप छुटायो ॥ २० ॥

(२१) बेदन के सह अङ्ग पारगामी यह बालक ।
होय तथा रन रंग माहिँ सब रिपु-कुल-घालक ॥

यह बिचारि लघि धातु अरथ गुनि गमन महीपा ।
राख्यो रघु अस नाम सुवन को मनु कुल दीपा ॥ २१ ॥

(२२) पूरन सम्पतिवान पिता के बिबिध जतन के ।
फल सरूप सुभ अंग दिनहि दिन सुवन रतन के ॥
बढ़े जथा लहि किरन माल रवि की सुखदाई ।
बाल निसाकर लहत कला निसि प्रति अधिकाई ॥ २२ ॥

(२३) ज्यों जयन्त सों भये सची सुरनाथ सुखारी ।
भे कुमार सों जथा प्रमोदित उमा पुरारी ॥
त्यों तिनही सम तेजवान ते दम्पति आरज ।
लहि तिनही सम सुवन भये सब बिधि कृत कारज ॥ २३ ॥

(२४) चक्र चक्रवानि समान प्रेम मन बाँधन वारो ।
तिन दम्पति मैं हुतो जौन पूरन उजियारो ॥
एक सुवन सों तौन बिभाजित भयेहु मनोहर ।
बढ़्यो परसपर तौन अनिरबचनीय निरन्तर ॥ २४ ॥

(२५) धाय सों सिच्छित बाल मनोहर
बैन कहे पहिले तुतुराई ।
त्यों अँगुरी धरि तासु चल्यो
पग द्वैक महा सुखमा उपजाई ॥
फेरि प्रनामहि लागि झुक्यो
पितु सम्मुख तासु कई सुखदाई ।
या बिधि बाल-बिनोद बिलोकत
भूप अनन्द लह्यो अधिकाई ॥ २५ ॥

(२६) बाल मनोहर गोद धरे
तन जोगज आनँद भूपति पायो ।
मानहु ईस कृपा करि कै
त्वच ऊपर आनि सुधा बरसायो ॥
तैान अनूपम पाय अनन्द
निमीलित नैन किये नरपाला ।
बार बड़ी मैं लह्यो सुन के
परसे कर सुन्दर स्वाद बिसाला ॥ २६ ॥

(२७) पालनहार सवै मरजाद
महीपति बाल मनोहर पाई ।
बूड़त हो निज बंस बड़ो
थितमन्त गुन्यो तेहि आनँद पाई ॥
ज्यों जग में अवतार भये
हरि को जलजासन मोद बढ़ाई ।
तीनिहु लोकन के परजागन
मानत भे थिर ही हरषाई ॥ २७ ॥

(२८) चूड़ा करण तृतीय बरस बर भूपति कीन्हो ।
काकपच्छ सिर उड़त बाल सुखमा अति लीन्हो ॥
सचिव सुवन सह वैस किये तिन साथ मिताई ।
केलि करत बहु भाँति बाल-लीला सुखदाई ॥
पुनि प्रनव पुनीतहि पढ़ि सुमति शब्द-सास्त्र मैं पगु धरयो ।
मनु सरिता मारग धरि बिमल सागर सों संगम करयो ॥२८॥

(२९) बहुरि भयं उपनैन सबिधि तेहि पितु प्रिय बालहि।
गुन-गन मंडित सुगुरु पढ़ावन लगे बिसालहि॥
भो तिन को स्रम सफल तैान बालक मैं भारी।
होत सुपात्रहि माहि सीख पूरन फलकारी॥ २९॥

(३०) तौन मतिमान मति बल सों महान
चारि सागर समान चहुँ विद्यन के क्रम सन।
पार यों भयो है जिमि पैान गैान निन्दक
तुरंगन सों नाँघि जात सूरज चहूं दिसन॥

(३१) धारि करसायल को पावन अजिन पितु-
ही सों धनुवेद सह मंत्र सिख्यो बालवर।
केवल न चक्कवै महीप हो दिलीप हुतो
एकही विदित बसुधातल पै धनुधर॥ ३०॥

(३२) बछरा लहत बैलपन ज्यों गयन्दपन
पावत कलभ तिमि बालपन क्रम सों।
छाँड़ि रघु यौवन मैं ह्वै करि गँभीर निज
चारु तन पालित कियो है सुधरम सों॥

(३३) गऊदान संसकार[1] अनु मन मोद भरि
कियो है बिवाह तासु पितु हरषाय कै।
भूपन की सुता सो सुपति लहि सोहैं
मनु दच्छ-सुता राजैं निसिनाथ वर पाय कै॥३१॥

(३४) धारि भुज दंड गुरु जूप के समान उर
आयत बिसाल कंठ तरुन बपुष वर।

---

1 प्रथम दाढ़ी मुंडन।

जीति निज पितु तनु गुरुता मैं लियो रघु
जानि मृदुता सों लघु पर्‌यो तऊ जस धर ॥
(३५) प्रजा गुरु भार चिरकाल सों धरे हो तब
ताहि लघु करन बिचार मन माहिँ धरि।
जानि कै सुभाव संसकार सो बिनीत
जुवराज पद रघुहि दियो है नृप चाव भरि ॥ ३२ ॥

सातवाँ पुष्प ।

रघुवंश के कुछ छन्द (स्वच्छन्द अनुवाद) (सं १९६१)।

(प्रथम सर्ग)

(१) वाक्यारथ के सम मिले हित वाक्यारथ सिद्धि ।
जगत मातु पितु गौरि सिव बन्दौं सुनप समृद्धि ॥ १ ॥

(२) कहाँ दिवाकर बंस कहँ मो मति अति स्वलपज्ञ ।
दुस्तर सागर उडुप सों तरन चहत सम अज्ञ ॥ २ ॥

(३) कवि जस चाहत मन्द ह्वै रहिहि हँसी मम छाय ।
प्रांसुलभ्य फल हेत मनु बामन हाथ उठाय ॥ ३ ॥

(४) अथवा पूरब काल के कवि.बर बुद्धि अगार ।
करि बरनन यहि बंस मैं बिरचे बानी द्वार ॥ ४ ॥
तिन द्वारनि ह्वै करि धसत हौं हूं ह्वै मति मन्द ।
बज्र छेदि मनि देत जिमि सूत घुसत निरदन्द ॥ ५ ॥

(९) अति लघु बाग बली तदपि चंचलता बस आज ।
राघव गन गुन सुनि कहौं तिन्हैं छोड़ि सब लाज ॥ ६ ॥

(५) सुद्ध रहे भरि जनम उदै फल लौं स्रम कीन्हो ।
सागर लौं छितिपालि सरग लौं रथ मग लीन्हो ।

(६) दै आहुति सविधान जाचकन को सनमान्यो ।
जागि उचित खिन दोष सरिस दंडन विधि ठान्यो ॥ ७ ॥

(७) जिन दानहि लगि धन संग्रह्यो मित भाखन किय साँचु हित ।
सन्तानहि लगि दारन बर्यो जसहि हेत किय बिजय नित ॥ ७ ॥

(८) जिन बिद्यहि बालपने पढ़ि कै पुनि जौबन महिँ बिलास किये ।
मुनि वृत्ति धरी बिरधापन मैं करि जोग सरीरहि छाँड़ि दिये ॥

(१०) गुन दूषन जाननहार सुनैं तिनके गुन सज्जन हेरि हिये ।
जिमि हेमअसीलति स्यामलता प्रकटै इक पावक योग लिये ॥८॥

(४७) बुध सरिस सुन्दर भूप रानिहिँ तौन दरसावत सबै ।
नहिँ भयो मग श्रम नहीं लाँघित गैल आन्यो नेकु वै ॥

(४८) नृप तौन दुरलभ जसो महिषी सखा सन्ध्या के समो ।
गो थकित बाहन संयमी ऋषिराज आश्रम मुद मयो ॥ ९ ॥

(४९)　　गुपित अनल सों पूजित द्विज वर ।
लसत अनेकन तेहि आश्रम पर ॥
फल कुस समिध लिए कर माहीं ।
लैाटत कानन सों दरसाहीं ॥ १० ॥

(५०) रोकत परन कुटिन के द्वारा ।
लहत भाग नीवार मझारा ॥
ऋषि पतिनी सन्तान समाना ।
पूरित आश्रम मैं मृग नाना ॥ ११ ॥

(५१) मुनि-कन्यन सिंचित लघु तरु गन ।
सोभित आश्रम मैं चहुँ कोदन ॥
बिलसैं निडर बिहँग जिन पाहीं ।
आलबाल जल पियत सदाहीं ॥ १२ ॥

(५२) परन कुटिन के आँगन ही मैं ।
संचित जहँ नीवार लखी मैं ॥
बैठि तहाँ मृग साँझहि जाई ।
करहिँ जुगालि महा मुद छाई ॥ १३ ॥

(५३) ज्वलित अनल सों धूम सोहावन !
आहुति गन्ध मिलित मनभावन ॥
उठि समीर सँग पावन करई ।
आवत अतिथिन आनँद भरई ॥ १४ ॥

(५४) सारथि सन तब कहेउ भुवाला ।
हयन देहु बिसराम बिसाला ॥
रानिहि रथ सों बहुरि उतारी ।
उतरेउ आपु महा-व्रतधारी ॥ १५ ॥

(५५) तिय सह रच्छक नीति चख पूज्य नरेसहि जानि ।
सभ्य जितेन्द्रिय मुनि-बरन पूज्यो अति सनमानि ॥ १६ ॥

(५६) सन्ध्या-विधि के अन्त मैं लख्यो भूप मुनिनाह ।
अरुन्धती युत लसत मनु सह स्वाहा हुतवाह ॥ १७ ॥

(५७) सहित मागधी नृप गये सतिय सुमुनि के पाय ।
पतिनी युत गुरु बर दियो आशिष मोद बढ़ाय ॥ १८ ॥

(५८) जाको मग रथ स्रम नस्यो पाय अतिथि सतकार ।
राज कुसल राजर्षि सों बूझी सुमुनि उदार ॥ १९ ॥

(५९) तेहि अथरब-ज्ञातार सों रिपु नगरी जेतार ।
कह्यो प्रयोजन नित बिसद बकता भूभरतार ॥ २० ॥

(६०) क्यों न सातहु राज अंगनि कुसल होय अमापु।
जासु दैवी मानुषी आपदन नासन आपु।
(६१) मन्त्र बल तव इतो दूरिहु बैरि बाचत नाहिँ।
लखे बेधत लक्ष्यतें मम व्यर्थ बान लखाहिँ॥ २१॥
(६२) सविधि आहुति अनल मैं तुम देत सो मुनिराज।
सस्य हेतु अकालहू मैं करत बरषा साज॥
(६३) सतंजीवी ईति भय बिनु प्रजा मोरि लखाय।
तासु कारन ब्रह्मबरचस रावरो मुनिराय॥ २२॥
(६४) ब्रह्म भव मुनि इमिधि चिन्तन तासु सब दुख खोय।
अविच्छिन्न निरापदा कत सम्पदा नहिँ होय॥
(६५) किन्तु यहिँ तव बधू महँ निज सरिस सुत बिनु जोहि।
सहित द्वीपन रतन प्रसवा महिहु रुचति न मोहि॥२३॥
(६६) औसिमो अनु पिंड नास बिचारि पितृ-समाज।
तृप्ति लहत सराध मैं नहिँ स्वधा[१] संग्रह काज॥
(६७) औसि मो अनु पितर गन जल दान दुरलभ मानि!
तपित कछु करि स्वास सों मो दियो पीवत पानि॥ २४
(६८) मेध[२] सों हैां सेत हिय अरु स्याम बिनु सन्तान।
सहित रहित प्रकाश लोकालोक अचल[३] समान॥
(६९) होत है परलोक ही तप दान फल सुखदान।
सुद्ध सन्तति करति है दुहुँ लोक मैं कल्यान॥ २५॥
(७०) हीन तासों देखि मोहिँ किमि दुखित होत न नाथ।
विफल आश्रम बिटप ज्यों जेहिँ सींचियो निज हाथ।

---

१ पितरों का अन्न। २ यज्ञ। ३ पहाड़।

(७१) नाथ दुसह महान मोहिँ इमि पितर ऋन की पीर ।

मत्त नागहि जिमि अरुन्तुद[1] करु अलान[2] अधीर ॥ २६ ॥

(७२) छुटहुँ तासों जौन बिधि अब करिय सोई नाथ ।

कठिन औसर सिद्धि मनु बंसीन की तव हाथ ॥

(७३) यों निवेदित भूप सों चख मूँदि मुनि धरि ध्यान ।

सुप्त मीनन सहित सर सम रह्यो थिर छिन मान ॥ २७ ॥

(९३) प्रिय भाषो अरु सत्य प्रिय बिधि सुत परम प्रवीन ।

सयन हेतु तब भूप कहँ निसि गुनि आयसु दीन ॥ २८ ॥

(९४) सिद्ध मुनीस महीस हित विरचन महल समर्थ ।

नियम जानि ब्रत के दियो उटज भूमि-पति अर्थ ॥२९॥

सिगरी सामा राजसी कछु न दियो मुनिराय ।

सब सामग्री ऋषिन की प्रमुदित दई बताय ॥३०॥

(९५) कुल पति दरसित उटज मैं सोय कुसानन माँह ।

सिष्य पठनसों प्रात गुनि सतिय जग्यो नरनाह ॥ ३१ ॥

---

१ मर्म-बेधक । २ बन्धन ।

आठवाँ पुष्प।

बूँदी बारीश (सं० १९६८)।

(प्रथम तरंग)

सुबुधि करन संसै हरन, श्री पितु चरन-ललाम।
जिन के सुमिरन ते बसै, सदा सुमति उरधाम ॥ १ ॥
भगति भाव सों करि तिन्हैं, पहिले सविधि प्रनाम।
करौं लेखनी पुनि चपल, ग्रन्थ लिखन के काम ॥ २ ॥

पोथिहु बीन लसैं कर मैं तिमि माल मृनाल बिसाल बिराजैं।
वाहन हंस बनो सुखमाकर ध्यान धरे भ्रम संकट भाजैं ॥
सारद मातु कबीसन पारद मोह नदारद कै सुख छावै।
पूरित कै किरनैं जस की जग सों जड़ता अँधियार नसावै ॥ ३ ॥

सकति अनूप कविता की कमलासन सों
जनम के पूरब कछुक नहिँ पायों मैं।
भगति बिसाल कवि गन की सुधारि नहिँ
रीति के पठन मैं बिसेष मन लायों मैं ॥
लोक-पटुता की चाल ढालन की ओरहू न
ज्ञान गरिमा को चित चंचल चलायों मैं।
राखु मातु सारदा कृपा की कोर फेरु तऊ
साहस कै अब तो सरन तकि आयों मैं ॥ ४ ॥

लौकिक पदारथनि ही मैं मन लाय नित
बार बार तोहि धरि ध्यान भरमायों मैं।
मानि तुलसी को मत राम को चरित सर
बिरचि न अम्ब एक बार अन्हवायों मैं॥
छन्द रचि बिसद बखान मन भावन कै
भूलिहु न तो जस कदापि सरसायों मैं।
राखु मातु सारदा कृपा की कोर फेरु तऊ
साहस कै अब तो सरन तकि आयों मैं॥ ५॥

बालमीकि, ब्यास, कालिदास, भवभूति आदि
लाड़िले सुतन को न तेरे बिसरायों मैं।
पंगु सम तऊ गिरि लंघन को धाय मातु
तो सुत बनन हेतु लालसा बढ़ायों मैं॥
भ्रातन के धवल सुजस मैं कपूत बनि
केवल कराल कालिमा को चपकायों मैं।
राखु मातु सारदा कृपा की कोर फेरु तऊ
साहस कै अब तो सरन ताकि आयों मैं॥ ६॥

समरथ सुतन पै राखत पिता है प्रेम
मातु पै कपूतन बिसेखि अपनावती।
देखि प्रौढ़ सुत को सुजस मन मोद भरै
कादर को तबहूँ छिनौ न बिसरावती॥
मातु भारती को हौं तो कादर कपूत मति
याते अम्ब चरन सरन तकि धावती।

अरबिन्द नन्द सों न सकति अमन्द पाई
मातु नख चन्द की छटाही चित भावती ॥ ७ ॥

पिंगल सों छाँटि सब सुन्दर सरस छन्द
करुना कै देवि यहि रचना मैं धारा करु।
रंकता बिदारि त्यों प्रगाढ़ अधिकार दै कै
सबद समूह मम सम्मुख पसारा करु॥
परम बिसाल ध्वनि व्यंग्यन को आल करि
दोषन के जालनि दया सों बेगि जारा करु।
भूषननि, भावनि, रसनि परिपूरित कै
बाल कविता को मातु सारद सहारा करु ॥ ८ ॥

सालत संकट को दल दारुन पालत साधुन को सब लायक।
टालत है बिघनानि को वृन्द त्यों घालत पाप मनो बच कायक॥
घायक है दुख दारिद को अरु है सुख को सब भाँति सहायक।
दायक है मन बांछित को यह पारवती सुत श्रीगननायक ॥ ९ ॥

बरद सवार गरे मुण्डन को हार मार
नास करतार छार अंगन मैं धारे हैं।
सीस पै अपार जटा जूटन को भार
तापै गंग धार परमा अनूपम पसारे हैं॥
सुनत पुकार कछू लावत न बार
दुख करत सँहार चार वेद यों पुकारे हैं।
परम उदार सुखकार यार दीनन के
तेई ससिमौलि कविता के रखवारे हैं ॥ १० ॥

ईस भाँति भाँतिन सों जीवन के जूह रचे
देखत मैं जौन चढ़ै अचरज भारी है।
कोऊ नभ डोलत, धरा पै कोऊ बोलत,
कलोलत है कोऊ जलबीच सुखकारी है॥
थावर है कोऊ, कोऊ रेंगत, चलत कोऊ
पगन सों, कोऊ उड़ै नभ को बिहारी है।
खात एक एकनि, सोहात एक ओरनि,
महान डर प्रेम को बजार इत जारी है॥ ११॥

कोटि कोटि राजैं ब्रहमंड रोम रोम जाके
ऐसो ईस अचरज मन मैं भरत है।
एक ब्रहमंड को न पावत है पार नर
यदपि महान चित चंचल करत है॥
तऊ सब जीवन के दुख सुख ओर ईस
चिन्तवन मातु सो छिनौ न बिसरत है।
या बिधि बिसम्भर की पावन उपाधि धरि
तौन सब ठौर सब जाम बिचरत है॥ १२॥

पोषन भरन है करत सबही को जब
क्यों न तब ईस कविता को प्रतिपालै गो?
बल को बिचार जब करत न पोषन मैं
सिथिल कबिन तब कैसे वह घालै गो?॥
सोचि कै बिसम्भर को भाव यह आसप्रद
कौन कविता सों मतिमन्द कबि हालै गो?

अनुभव छीन, रीति पथहू मैं दीन, तैसे
सकति विहीन कबि ग्रन्थ रचि डालै गो ॥ १३ ॥

दुज कनौजिया बंस जगत जाहिर जस धारी।
भयो साँवले कृष्ण प्रगट तेहि मैं सुबिचारी॥
रह्यो सदा भगवन्त नगर मैं जो सुखरासी।
निरधनता मैं दान दया का सुजस प्रकासी॥
तेहि पाय बालगोबिन्द सुत पुन्य महीतल थापियो।
जेहि उदाहरन आचरन का निज पावन जीवन कियो॥ १४॥

सागर सों ज्यों चन्द कमल सों भो चतुरानन।
भयो शिवाशिव पुन्य रूप ज्यों सुवन षड़ानन॥
तिमि पायो तेहि बालदत्त सुत गुरु गुनवाना।
परम धीर गम्भीर सुकबि सुजसी मतिमाना॥
तैहि नरबर के लघु सुत भये सिरमैारहु ससिभाल कबि।
जे दीप दान सों मनु चहत करन परम परसन्न रबि॥ १५॥

धन्य बसुधा तल पै ग्राम है इटौंजा चारु
सब गुनधाम जामें सज्जन बसत हैं।
राज करै भूप इन्द्र विक्रम पँवार जहाँ
रेल तार डाकघर सुन्दर लसत हैं॥
डाकृर बैद त्यों बिराजैं पाठ घर जहाँ
पंडित समूह बेद पथ सों रसत हैं।
गुन का, गुनी जन का, धरम का मान होत
पातक समूह जाहि देखत खसत हैं॥ १६॥

बिरची कपिल मुनि कम्पिला बिसाल अति
जा मैं कविराज सुखदेव अवतार भो।
गंगातट वासी तौन कम्पिला के पाँड़ेन को
बिसद इटौंजा माहिँ बास सुख सार भो॥
तिन मैं अयोध्या द्विज भयो हो प्रसिद्ध अति
जौन धन मान जुत सुजसी अपार भो।
ताकी दुहिता के पति मिश्र मुखलाल जू को
तासु कछु सम्पति पै बेस अधिकार भो॥ १७॥

हुतो अयोध्या सुवन बिनु ताके बिनु ततकाल।
यत्र तत्र श्री ह्वै गई कछु पाई मुखलाल॥ १८॥
कमला क्यों थिर ह्वै सकै जासु चंचला नाम ?।
चंचलता बस ह्वै गई अगुणज्ञा यह बाम॥ १९॥
हो मुखलाल महा गुन आल बिसाल सदा जेहि पुन्य बगारो।
छोटेन को मन रंजन कै गुरु लोगन को नहिँ सासन टारो॥
बालगोविन्द सहोदर पै सु बिसेख अपूरब प्रेम पसारो।
पै तब हूँ बिधि की गति सों न लह्यो सुत बंस चलावन हारो॥२०॥

गुनि गुरु भ्राता भाव बालगोविन्द बिचारी।
एक मात्र निज सुवन बालदत्तहि पन धारी॥
पतिनी द्वारा दियो सौंपि भ्राता जाया को।
दृढ़ता सों सब छोरि प्रेम बन्धन माया को॥
तब लगे इटौंजा मैं रहन कका संग पितु सुजस घर।
जिन तहाँ सुकृत फल चारि सुत लहे चित्त आनन्द कर॥२१॥

श्यू बिहारीलाल जेठे पुत्र गुरु गुनवान ।
भे गनेस बिहारि त्यों बर काज दच्छ महान ॥
भयो स्याम बिहारि कबि सिरमौर तीजो भाय ।
तथा लघु शुकदेव जी ससिभाल कबि सुखदाय ॥ २२ ॥

हम कछु दिन बिद्या पढ़ी विसद इटौंजा ग्राम ।
फेरि लखनऊ में पढ़यो गुरु भ्राता के धाम ॥ २३ ॥

करत वकालत हैं तहाँ गुरु भ्राता मति मान ।
चख पीड़ा बस तहँ कियो ओषधि पितु सविधान ॥ २४ ॥

महि प्रबन्ध कछु दिन गये सौंपि सेवकन चारु ।
लगे लखनऊ में रहन पिता सहित परिवारु ॥ २५ ॥

डेपुटी कलेक्टर को पद सिरमौर पाय
हवै गयो पुलिस कपतान सुभ काल मैं ।
महाराज विश्वनाथ सिंह की कृपा सों फेरि
भयो है दिवान छत्रपूर गुन आल मैं ॥
ससिभाल करि कै वकालत विसाल पुनि
पायो है सुपद मुंसफी को कछु साल मैं ।
आपुस मैं प्रेम परिपूरन बढ़ाय हम
सदा ही लगायो मन कबिता रसाल मैं ॥ २६ ॥

जार्ज सु पंचम राज काल सुख प्रद जब आयो ।
सम्बत् बसु रस खंड चन्द सावन मन भायो ॥
सनि-बासर सित पच्छ चारु एकादसि पाई ।
बर बूँदी बारीस ग्रन्थ बिरचन मन लाई ॥

पितु पद उर धरि सारद सुमिरि गनपति सम्भु प्रसन्न करि।
ईसहि मनाय बिरचन लगे बिसद ग्रन्थ आनन्द भरि॥ २७॥

सुगीत।

चारु छत्रिय बंस है जग माँझ अति विख्यात।
भये तिन मैं बीर अति बल जातबेदस जात॥
महा बल चौहान पावक बंस मैं जस पूर।
रहे तिन हूँ बीच हाड़ा सदा अनुपम सूर॥ २८॥

मनहरन।

हाड़न जमायो राज हाड़ावती देस माँहि
बूँदी नरपाल जहाँ जग सुखदान भे।
सान मैं सखावत मैं दान मैं दया मैं बीर
पीर हर न्याव मैं प्रजा के प्रिय प्रान भे॥
आन तरवारि की सु बानि ठकुराइसि की
मुच्छन को मान राखिबे मैं उपमान भे।
अटल सदाही राज भगति बढ़ाय स्वामि
धरम निबाहन मैं परम प्रधान भे॥ २९॥

चतुष्पदी।

जो कछु मुख भाखो सो दृढ़ राखो हटे न कबहूँ पाछे।
नित स्वारथ छांड़ो धरमहि माँड़ो रहे सान जुत आछे॥
ऐसे नर पालन सब गुन आलन को जस कहिबो भावै।
जो बनै न नीको बरु अति फीको तउ पाठकहि रिझावै॥३०॥

रोला।

हे त्रेता जुग माहिँ परम छत्री बल धारी।
हैहैपति लहि स्वामि भये ते अति कुबिचारी॥

निरखि सुमुनि जमदग्नि बिभव लालच सों पागे ।
लाज धरम तजि धेनु नन्दिनी माँगन लागे ॥ ३१ ॥

धत्ता ।

जब दई न मुनिवर धेनु तब भये परम व्याकुल सकल ।
मदमत्त न्याव तजि नन्दिनी हरि लीन्ही धरि मोह बल ॥ ३२ ॥

प्रज्झटिका ।

यह छत्रिन को अभिमान देखि ।
मुनि मान हानि जमदग्नि तेखि ॥
इमि कह्यो परसुरामहि बोलाय ।
सुत जाय देहु इनको सजाय ॥ ३३ ॥
तब राम कोप करि परसु धारि ।
हैहैपति को पातक बिचारि ॥
रन मंडल मैं ता कहँ प्रचारि ।
सब काटि बाहु महि दईं डारि ॥ ३४ ॥

इमि हैहैपति को देखि नास ।
जुरि तासु तनै बँधि क्रोध पास ।
बल धाम राम कहँ अजित जानि ।
ताके पितु कहँ निरबल प्रमानि ॥ ३५ ॥

धरि घात आश्रमहि शून्य पाय ।
तजि शूरपनो कीरति नसाय ।
निज मुखन लाय कारिख सत्रास ॥
कीन्हो बाननि जमदग्नि नास ॥ ३६ ॥

सिंहावलोकित ।

हे समिध लेन कहँ राम गये ।
जब आश्रम देखत आनि भये ॥
तब हाय हाय करि शोक पगे ।
पितु शव ढिग रोदन करन लगे ॥ ३७ ॥

षटपद ।

तात गात नवनीत सरिस लखि दया न धारयो ।
पावक सम हनि बान हाय केहि तो तन जारयो ? ॥
कहँ तपसिन को गात कहाँ ये तीछन बाना ।
कहँ जोगिन के करम कहाँ रन सोषक प्राना ॥
यहि कोमल तन मैं कठिन सर मोहिँ सठ के कारन लगे ।
चख जल त्यागत रोदन करत इबिधि राम करुना पगे ॥ ३८ ॥

हरिगीती ।

पुनि हैहयाधिप बंस को गुनि करम निन्दित क्रोध कै ।
करि बंक भृकुटी सहठ माहिष्मती को अवरोध कै ॥
करि तीन बंस बिध्वंस घोर प्रसंस संगर मैं महा ।
श्रीराम अपने क्रोध सागर को न पार तबौ लहा ॥ ३९ ॥
निज पिता के तन दुसह यकइस घाव लगिबो जानिकै ।
यकईस बेरा करन भूमि निछत्र मन मैं ठानि कै ॥
पन पालि छत्रिन घालि रन मैं कुँड सोनित के भरे ।
रिपु रुधिर सों करि तर्पनादिक शान्ति निज रिस की करे ॥ ४० ॥

मरहट्टा ।

तब छत्रिन के गन अति भय भरि मन बचत न देखे प्रान ।
हाहा करि भागे गेहनि त्यागे लागे सब थर्रान ॥

निज आयुध डारे दीन पुकारे बनिता बेष बनाय ।
खत्री बनि ग्वैगे कायथ ह्वैगे ठाकुरपन बिसराय ॥ ४१ ॥

हंस ।

राजपूत गन को यह हाल । देखि भये सब लोग बिहाल ॥
उठत शूरता जग सों जानि । भे व्याकुल शंका बड़ि आनि ॥ ४२ ॥

छप्पै ।

तब मुनि गन जुरि सकल हिमाचल को चलि आये ।
देवदारु बन माँह लखन कौसिक मुद छाये ॥
गाधि नन्द तहँ लख्यो चन्द सम प्रभा पसारे ।
जटा जूट गुरु सीस माहिँ संकर सम धारे ॥
सुभ स्वेत केस पूरित बदन दाढ़ी सघन बिसाल है ।
मुख ज्योति जगै पावक सरिस चारु समुन्नत भाल है ॥ ४३
कछु उमको तन लसै स्वेत रोमन सों छायो ।
तेज पुंज एकत्र करन मनु देह घटायो ॥
बीरासन धरि नैन मूँदि मुनि ध्यान लगाये ।
सोहत अनुपम बेस जगत जालन बिसराये ॥
लखि जोग नैन सों मुनि तऊ अतिथिन को आगमन बर ।
तजि ध्यान कियो तिन को सविधि बिसद समादर सुजस धर ॥४४॥

दोधक ।

गाधि तनै ढिग साधु सयाने । यों तब लोक बिथाहि बखाने ।
हे प्रभु तो भगिनी सुत नन्दन । कीन्ह सु छत्रिय बंस निकन्दन ॥४५॥

रूपमाला ।

होन हारो महाभारत युद्ध है पुनि चंड ।
होयगो तहँ शेष छत्री राजबल सब खंड ॥

छोड़ि लव कुश बंस कलि मैं नहीं कोऊ और ।
शूरता को रहै गो आधार मुनि शिरमौर ॥ ४६ ॥
राम को लहि दाप सिगरे भये छत्री मन्द ।
शूरता को करैंगे ये कौन भाँति बुलन्द ॥
दया सागर सुमुनि याको करहु कछु उपचार ।
भूमि पै हौ दूसरे बिधि आपु करुणागार ॥ ४७ ॥

पंकज बाटिका ।

बिस्वामित्र महामुनि नायक । शौनकरत ऋषिबच सुखदायक ।
धारि समाधि जोग बिधि ठानत । भूत भविष्य भये अनुमानत ॥४८॥

काव्य ।

वेद मन्त्र सब सोधि सु मुनि कौसिक पन धारी ।
गुरुतम आभूषन स्वदेस को सौर्य बिचारी ॥
अरबुद गिरि पै ऋषिन सहित सादर पगु धारो ।
तैंतिस देवन याग करन के हित सतकारो ॥ ९ ॥
सुभग मुहूरत में पुनीत महि सोधि सभागे ।
तिरकोनादिक जंत्र बिरचि बेदी रचि आगे ॥
अति ही सुन्दर सुचि बितान चारौं दिसि छाये ।
कदलि खम्भ आरोपि सकल थल सुघर बनाये ॥ ५० ॥
परम बिसाल रसाल पात के बन्दनवारे ।
हरित बरन सब ओर मेघ थल माहिँ सँवारे ॥
मुकुत माल से सिन्धुवार के सुमन सुहाये ।
मख थल मैं चहुँ ओर परम रुचि सों लटकाये ॥ ५१ ॥

पनस पूगफल आदि हरित इत उत आरोपे।
मनि मुकुता पूरित बितान गन के जस लोपे॥
दरसक मंडल हेत चारु बैठकैं बनाईं।
दुतिय कुंज करि तिन्हैं हरित पातन सों छाईं॥ ५२॥
राखि निरालस भाव सकल मख हित सामाना।
करि सम्पादित ह्वै इकत्र मुनि गन मतिमाना॥
परि पूरन सम्भार मेध हित देखि सयाने।
संसकार करि सबिधि अनल देवहि सनमाने॥ ५३॥

चंचरी।

मेध कुंड बिसाल सों तब धूम ऊपर को चलो।
दीठिहेत ऋषीन के मनु अग्नि अंजन है मलो॥
कै बोलावन देवतन को जात दूत अकास है।
याग भव परजन्य को यह पूर्व रूप प्रकास है॥ ५४॥
सूरता सों हीन कारो भूमि को जो हाल है।
तौन कैधौं रूप धरिकै जात व्योम उताल है॥
मेध मैं मनु देवतन को आयबो अनुमानि कै।
भूमि सों दिवि रची पावक राह सुख-प्रद जानिकै॥ ५५॥
स्वास्थ्य हारक मैल कैधौं कढ़ो जात लजाय कै।
याग पूरित भूमि पै नहिँ ठौर कितहूं पाय कै॥
सूर चन्द सुबंस मैं नहिँ सूर बहु महि मैं रहे।
बंस कारक तौन याते लाज हैं मन मैं गहे॥ ५६॥
ढाकिबे के हेत मुख तिन देवतन को चाव सों।
जात है मनु धूम दिवि दिसि आजु अनुपम भावसों॥

जात बेदस धारि सूरज रूप दिवि मंडल बसै।
चंचला के रूप मैं त्यों अन्तरिच्छहु मैं लसै ॥ ५७ ॥

भिन्न भिन्न बिलोकि तिन कहँ धूम आनँद सों पगो।
मेल के हित आजु मानहुँ व्योम मंडल मैं लगो ॥
दामिनी कहँ मेघ को धरि रूप धूम रिझावई।
धारि कै नभ रूप त्यों सहसांसु के चित भावई ॥ ५८ ॥

होत कान्ति बिहीन तिन के तेज के लहि दाप को।
मेल करिबो तजै तबहू ँ नहीं धरि संताप को ॥
होय गो परकास अब इत प्रबल पावक के जरे।
जात भागो अन्धकार बिचार यह मानौं अरे ॥ ५९ ॥

पाप के हित यज्ञ बल अब भूमि पै नहिँ ठौर है।
अन्तरिच्छहि जात पातक मनहुँ करि यह गौर है ॥
हैं कहां सब देव जे मख माहिँ पावक भाग को।
ढूंढ़िबे मनु तिन्हैं घूमत धूम भरि अनुराग को ॥ ६० ॥

एक ठौर न लहे ते मनु और ठौरनि जात है।
हेतु यहि अब धूम नभ मैं सकल दिसि मड़रात है ॥
एक दल सों मनों कारज सिद्धि होत न देखि कै।
धूम के दल और भेजत जात पावक तेखि कै ॥ ६१ ॥

काज सिगरो करैं गे हम एक बर बल धारि कै।
और सब की दीठि याते धूम व्यर्थ बिचारि कै ॥
घोर घन सो घुमड़ि सब के नैन कीन्हे बन्द है।
पूरि गो महि व्योम लौं अभिमान सों मति मन्द है ॥ ६२ ॥

मदन मोदक ।

इतने महँ पावक ज्वाल उठी तब धूम को जाल बिहाल ह्वै भागो ।
नहिँ खोज लग्यो कहुँ देवन को तेहि ते शठ औरहु लाज सों पागो ॥
पितु के समुहैं छिन हू ठहरै यह साहस ताहि परयौ नहिँ नेकौ ।
अभिमान को है मुँह कारो सदा अब सूझत ताहि उपाव न एकौ ॥ ६३ ॥

मनहरन ।

काली औ कराली मनोजवा आदि सातौबर
जोतिन जगाय निज रूपहि दिखायो है ।
मुनि गन पालक दुवन दल घालक जो
बालक बिसाल जुग मातन को जायो है ॥
भूमि अन्तरिच्छ दिवि लागि तीनि रूप धरि
पावक तड़ित जौन सूरज कहायो है ।
देवन को देखि सो पुरोहित प्रतच्छ गाधि-
नन्द नव छन्दन बिरचि जस गायो है ॥ ६४ ॥

सार ।

नमो देव होतार बसीठी पूरोहित सुत दाई ।
नमो तनूनपात देवन को लावन हार सदाई ॥
नमो धरम रच्छक सब ही को पावन करन महाना ।
नमो भविष्य विषय को ज्ञाता मानुष जन को प्राना ॥ ६५ ॥
जादूगर समेत प्रेतन को भस्म करै तू पल मैं ।
पूरोहित मनु तोहि बनायो भृगु लायो महि थल मैं ॥
पहिले पूजा होय तिहारी सब यज्ञन मैं देवा ।
वेदन मैं हम तो जस गायो कियो प्रेम सों सेवा ॥ ६६ ॥

इन्धन घृत अरु सोम तिहारे हैं थिति के बर हेतू ।
तो मैं सिगरे देव बिराजैं हे देवन के केतू ॥
गार्हपत्य अरु आह्वनीय त्यों सुभग दच्छिना जो हैं ।
हे बल नन्दन तीनि तिहारी ये जीभैं जग सोहैं ॥ ६७ ॥
पावक अरु पवमान तथा सुचि ये तव रूप बिराजैं ।
षट ऋतु सदा एक तोही सों सुन्दर सुखमा साजैं ॥
सुधा लसै तो मुख मैं सुन्दर तो चख घृत मय सोहै ।
ह्वै कै अजर अतिथि सब ही को पावक तू जग मोहै ॥६८॥
सुन्दर अनल तोहि जल भीतर देवन पहिले पायो ।
जनम काल ह्वै स्वेत बढ़े तुम लाल बरन दरसायो ॥
शत चख प्रकटि गहन बहु बन तुम भसम किये पल माहीं ।
आरज गन के बास हेत बहु थान दिये सक नाहीं ॥ ६९ ॥
करुना करि कै सोम पुरोहित मोहिँ बनायो जैसे ।
करहु आस पूरन हे पावक याहू छन अब तैसे ॥
मो भगिनी कुल भव भृगुनन्दन छत्रिय बंस नसायो ।
निरखि सूरता नास ऋषिन को मंडल मो ढिग आयो ॥७०॥
मेरे कुल सों भयो नास हे देव सूरता केरो ।
देख अमंगल देखि होत दुख मो कहँ नाथ घनेरो ॥
ताते देवन बोलि बेगि मख पूरन यहि थर कीजै ।
बालक चारि बिसाल महा बलप्रभु निज कुल भव दीजै ॥७१॥

तोटक ।

इमि पूजन पावक पाय भले । अति मोदित ह्वै बढ़ि फैलि चले ।
चहुँ ओर प्रकासहिँ छाय दियो । मन मैं मनु चारु बिचारु कियो ॥७२॥

दिवि को मम रूप लसै रबि जो । तेहि को कुल आजु रह्यौ दबि जो ।
यहि औसर तौ पुहुमी तल मैं । बलवान बड़े बिरचौं पल मैं ॥ ७३ ॥
तेहि ते परकास कियो अबहीं । परताप लखैं उनको सबहीं ।
अति ही सुख दानि प्रकास लसै । मनु पावक मोदित ह्वै बिहँसै ॥७४॥

सवैया ।

सूरज औ ससि के बर बंस प्रताप बिहीन भये यदि आजू ।
तौ निज बंसिन को करिहौं अब औसि अनूपम तेज दराजू ॥
हौं बल सों उतपन्न करौं किन मान बड़ो बल बीरज केरो ।
ह्वै जुग मातुन को सुत क्यों न रचौं बिन हू तिय बंस घनेरो ? ॥७५॥

दोहा ।

यह बिचारि पावक प्रबल ज्वाल माल फैलाय ।
छाय लियो मख कुंड को चहूँ ओर हरषाय ॥ ७६ ॥
तैंतिस जीभैं खोलि मनु तैंतिस देवन काज ।
कौसिक मख पूरन करन प्रगट्यो रूप दराज ॥ ७७ ॥

काव्य ।

लखि पावक परसन्न सु मुनि मन मैं हरषाने ।
स्वाहा सह पढ़ि मन्त्र सबिधि हुतभुक सनमाने ॥
सरपि सोम साकल्य समुद अरपन करि चावन ।
धरयो धनंजै ध्यान जौन जग मैं अति पावन ॥ ७८ ॥
देव पुरोहित इबिधि पूजि तेहि द्वारा चाहन ।
लगे करन पढ़ि मन्त्र देवतन को आवाहन ॥
सोम पान हित देव तुरी सम आतुर धाये ।
तिनको करि सनमान सु मुनि सादर बैठाये ॥ ७९ ॥

ह्वै ह्वै देव प्रसन्न कुसन पर बैठन लागे।
सोम पान करि करि महान आनँद सों पागे॥
वृषभ सरिस तिन पियो सोम बल बर्द्धन कारी।
ह्वै ह्वै अति सन्तुष्ट अमिय सम स्वाद बिचारी॥ ८०॥
स्रुवा च्यमस सों करैं सुमुनि आहुति मुद धारे।
स्वाहा अरु ओंकार सुधुनि चहुँ ओर बगारे॥
पावक मुख सों पियै सोम सुर मंगलदायक।
सफल याग लखि होहिँ परम पुलकित मुनिनायक॥८१॥
होम कुंड मैं परैं सरपि साकल्य सोहावन।
तिन सों फैलो तहँ सुगन्ध सब दिसि अति पावन॥
करि सो घ्रान महान पाप सब ही के भागे।
दरसक गन ह्वै अति प्रसन्न मख सों अनुरागे॥ ८२॥
लहि मारुत को दाप ज्वाल दस हू दिसि धावै।
मनौ लहन हित सोम हुतासन कर फैलावै॥
प्रति होता के पास किधौं पावक चलि जाई।
देत ज्वाल मिसि जीभ श्रुवा के ढिग फैलाई॥ ८३॥
चंचलता बस किधौं कुंड सों उठि अवरेखै।
अब कितनो सामान होम हित है यह देखै॥
भई छुधा की सान्ति अजैां नहिँ मनु यहि भावै।
बार बार उठि अनल विकलता को दरसावै॥ ८४॥
बहुत असन जो करत रहत धीरज तेहि नाहीं।
परसन हारे कहूं बिमन तै। भये न जाहीं॥
पावक याही हेत मनैां चंचलता धारै।
प्रति होता के पास जाय ता कहँ पुचकारै॥ ८५॥

होता गन श्रम करैं करै पावक ज्योंनारा ।
याही हित मनु देइ उन्हैं साबसी अपारा ॥
करत याग ऋषि सकल तऊ इनके मन माहीं ।
परिपूरन विस्वास मेध मैं है कै नाहीं ॥ ८६ ॥

यहै लखन को भाव मनौ पावक चित धारै ।
याही ते उठि बार बार तिन ओर निहारै ॥
कितने दरसक जुरे यज्ञ मंडल मैं आई ।
यहै लखन हित मनौ हुतासन उठत सदाई ॥ ८७ ॥

सिगरे दरसक मोहिँ सबिधि देखैं मुदधारी ।
फिरै हुतासन सकल ओर मनु यहै बिचारी ॥
बिरच्यौ मुनिन बितान बिसद श्रम धारि अथोरा ।
ताहि लखन हित मनौ अगिनि चितवै चहुँ ओरा ॥ ८८ ॥

परम भगति सों कियो मुनिन इमि याग सोहावन ।
देवन सह भे अति प्रसन्न पावक जग पावन ॥
बल-कारक लहि सोम देव गन अति हरषाई ।
मानुष गन मैं बढ़न हेत बल भये सहाई ॥ ८९ ॥

सुगीत—दरभ प्रतिमा-चारु तेहि छन बिरचि कै सुर नाँह ।
अमिय सों तेहि सींचि दीन्हो डारि पावक माँह ॥
मन्त्र संजीवन पढ़े मख कुंड सों तेहि काल ।
गदा दच्छिन हाथ धारे उठो रूप कराल ॥ ९० ॥

कहत मुख सों मार मार प्रमार ह्वै यहि काज ।
लह्यो आबू धार अरु उज्जैन को वहिँ राज ॥

तदनु विधि निज अंस सों रचि पुत्तली अभिराम।
डारि दिय मख कुंड मैं भो पुरुष तीन ललाम ॥ ९१ ॥
एक कर मैं खरग धारे दुतिय मैं बर वेद।
धरे ग्रीवा माहिँ चारु जनेव बीर अखेद ॥
धरि सोलंकी नाम ताको गाधिसुत मुद छाय।
दियो पाटन अन्हलपुर तेहिराज हेतु बताय ॥ ९२ ॥
गंग जलसों सींचि प्रतिमा तदनु सिव सुख दाय।
मंत्र संजीवन पढ़्यौ तब पुरुषभो बल काय ॥
स्याम गात बिसाल धनु धर नाम लहि परिहार।
भयो नव मरु थली को सो बीरवर सरदार ॥ ९३ ॥
रचो तब हरि पुत्तली निज सरिस करुना कन्द।
चारि भुज धर सहित आयुध कढ़ो बीर बुलन्द ॥
चतुर्भुज चौहान ताको नाम धरि मुनिराय।
देत भे गुर मंडला तेहि राज हित हरषाय ॥ ९४ ॥

कवित्त।

धनि धनि धुनि चहुँ ओर सों मची है जब,
कढ़ि मेध कुंडसों प्रबल बीर बलके।
आनँद मनावै लगे परम प्रसन्न मन
चहूँ ओर दौरि सरदारन के हलके ॥
कितने बिचारैं निज भाग की प्रबलताई
कितने भगतिसों सराहैं गाधिनन्द को।
कितने हुतासन की करहिँ बड़ाई किते
गुनैं मख फल बल परम अमन्द को ॥ ९५ ॥

मची है जयध्वनि बिसाल गिरिवर पर
पावक सुतन कियो जब ही निनाद है।
सूरता के देखतै अधार महि मंडल मैं
दूरि भयो छत्रिन को बिषम बिषाद है॥
कादरपने की दीनता की नीचता की मनो
उठि गई जगसों दुखद बुनियाद है।
चारि अवतारन सों चारिहु दिसामैं चारु
ब्यापि गई बलकी विसद मरजाद है॥ ९६॥

दोहा—पूरन याग बिलोकि मुनि कौसिक अति हरषाय।
पूरन आहुति दै कियो तेहि समाप्त गहिचाय॥ ९७॥

सब ही को बटवाय कै फिरि पावन परसाद।
मुनि मंडल सों कहत भे पूरित अति अहलाद॥ ९८॥

तोटक—तुम हौ मुनिनायक धन्य महा।
जिन लोक हितै जुत चाव गहा॥
सुख लोकनि के सब छोड़ि दिये।
दुरभावन सों मुख मोड़ि लिये॥ ९९॥
मनु ह्वै मृत भूतल हेत गये।
यक ईश्वर पै दृढ़ ध्यान दये॥
तब हू तुम लोक बिथा न सही।
करिबे तेहि दूरि सुगैल गही॥ १००॥
पर को हित को इमि चाहत है।
बसुधा तल को इमि पाहत है॥

तप को तुम छोड़ि अनन्द बड़ो।
मन ईस्वर के दिसि जौन गड़ो ॥१०१॥
हठ सों तेहि खैंचि प्रभाव भरे।
जग सूरपनो फिरि चारु करे॥
जमदग्नि महा मुनि को हतिकै।
गुन को तजि औगुन सों रतिकै॥ १०२॥
बहु छत्रिन घोर अनीति करी।
चित मैं मुनि सो तुम नाहिँ धरी॥
अपकार प्रचंड भुलाय दियो।
गहि कोमलता उपकार कियो॥ १०३॥
लखि दोष जऊ कछु दंड करैं।
मन मैं गुरु लोग न कोप धरैं॥
यह नीति महा मुनि जानि सही।
चित मैं हित सों तुम चिन्ति गही॥ १०४॥

कवित्त।

छोरि कैं जगत हित जगत पिता सों नित
जोरि कै सुचित बित प्रेमहि बिचारो तुम।
बासनानि पूरन करन के उपाय तजि
बासना हननकी सुरीतिन प्रचारो तुम॥
लालच सों धावत जकन्दत फिरत जग
जो कछु लहन ताहि नीच निरधारो तुम।
जौन सोचि हाल जग बिकल बिलाप करै
सोई सति आनँद को हेतु गुनि धारो तुम॥ १०५॥

हरिगातिका ।

है सुमुनि ऐसे नर वरन कछु दान दीबो जो चहै ।
सो मनो अपनी मूढ़ता को प्रकट करि जग सों कहै ॥
पै मेघ संगी दच्छिना गुनि शास्त्र सम्मति जानि कै ।
नहिँ दच्छिना बिनु यज्ञ पूरन होति यह अनुमानिकै ॥ १०६ ॥
पुनि परम पावन दान पात्र बिलोकि अति हरषायकै ।
फिरि मिलन ऐसी मंडली को कठिन गुनि सुख पायकै ॥
सति करन को निज बचन तुम को दान दीबो हैां चहैां ।
बर लेहु मुनिबर माँगि तैा चित परम आनँद को गहैां ॥ १०७ ॥
ये बचन बिस्वामित्र के सुनि स्रौन सुख दायक भले ।
लहि सुधासिंचन सरिस मुनिगन परम आनँद सों रले ॥
पुनि कहे है ऋषिराज हैा तुम धन्य जग भूषन महा ।
तुम सदा सह व्यवहार पूरन वेद के पथ को गहा ॥ १०८ ॥
तो बिसद आयसु टारिबो हम गुनत भारी पाप हैं ।
बरदान याते माँगिबे मैं लहत नेकु न ताप हैं ॥
मुनिनाथ हमको चारु नवधा भक्ति को बर दीजिये ।
करि ईस रति दृढ़तर हमारी भूमि तल जस लीजिये ॥ १०९ ॥

दोहा ।

एवमस्तु कहि मुनिन सों कौसिक मुनि मतिमान ।
चहे बिदा सब को करन करि मख सहित बिधान ॥ ११० ॥
छप्पै—तब पावक सुत चारि समुद कौसिक पहँ जाई ।
करन जोरि जुत प्रेम सुमुनि पद सीस नवाई ॥
कह्यो नाथ तुम कियो परम उपकार हमारो ।
सूर सुपद दै सकल दोष दुख दूरि निवारो ॥

हे मुनिनायक बिनु तो कृपा सकल भाँति हम दीन हैं ।
पर तो अनुकम्पासों भये सब जग मैं अति पीन हैं ॥ १११ ॥

तुम पावक सों नाथ हमैं छिन मैं उपजायो ।
कियो अजोनिज धवल सुजस जगतीतल छायो ॥
यह तुम्हरे हित नाहिँ भयो कछु काज महाना ।
लोकन को रचि सकैं आपु विधि से सुखदाना ॥
जब कियो त्रिशंकु महीप मख तब नव देवन के रचन ।
को लखि मुनिवर संकल्प तो भये देव डरसों मगन ॥ ११२ ॥

तुम त्रिसंकु हित रच्यौ चारु नव नाक बिचारी ।
बिधि रचना हूँ माहि करी बढ़ती अतिभारी ॥
गायत्री फिरि भई तुम्हैं भासित मुनिनायक ।
कह्यो बेद को तुम तृतीय मंडल सुखदायक ॥
तो दुहिता सुत के नाम पर भारतवर्ष विख्यात है ।
तो सरिस नहीं जग मैं जसी कोऊ पुरुष लखात है ॥ ११३ ॥

बिसद राज सुख और जौन तप सुख अति भारी ।
तुम दोउन को कियो भोग मुनि वर पनधारी ॥
पुनि कविता को स्वाद परम पूरन तुम जाना ।
षट दरशन को सार जोग बासिष्ठ बखाना ॥
तुम उपजाये सुत जिन कियो राज धरा मैं सह धरम ।
तिमि अन्य सुतन भासित भये बेद मन्त्र सुन्दर परम ॥ ११४ ॥

मुनि तो सुजस अपार गाय पावै को पारा ।
कह्यौ कछुक हम दया सिन्धु लघु मति अनुसारा ॥

बिसद बड़ाई नाथ बिरचि हम कहँ तुम दीन्ही ।
तिमि छत्रिन पर परम कृपा अनपावनि कीन्ही ॥
अब ताते आज्ञा देहु जो मुनिनायक मंगल करन ।
सो मिलि हम सब पालन करैं धरि उर तो पंकज चरन ॥ ११५ ॥

इमि सुनि तिन के बचन परम कौसिक मुद पायो ।
दै असीस बहु भाँति सुतन कहँ अंक लगायो ॥
हे सुत है जग माँझ बिनै सब ही कहँ प्यारी ।
बिधि बस तुम सब तौन सीस अबहीं सों धारी ॥
हौ गुन मंडित पंडित सुवन तुम्हैं सिखैबो है व्रथा ।
पर भाषत हौं नृप नीति कछु धारि लोक पूजित प्रथा ॥ ११६ ॥

चारु धरम को सदा प्रान सों अधिक बिचारौ ।
प्रान तजन सों अधिक डरहु जब धरम न धारौ ॥
करौ बचन प्रतिपाल जऊ निज सरबस हारौ ।
कौनिहु बिधि जनि झूठ बचन कहुँ भूलि उचारौ ॥
पुनि धेनु वेद अरु बिप्र को करहु मान सुत प्रान सम ।
इनके पाले सब लोक हित सधैं सहित पावन धरम ॥ ११७ ॥

करौ भरोसो सदा बाहु बल को पन धारी ।
एक तेग को गुनो जीविका साधन भारी ॥
जब लौ कर मैं रहै तेग हिम्मति जनि हारौ ।
सरबस हू चलि गये न आपुहि निबल बिचारौ ॥
नित भूमि बीर पतिनी रही यहै मरम समुझहु सुवन ।
जग राखि बीरता लाज तुम रन महि मैं मरदहु दुवन ॥ ११८ ॥

एक निबल जनि हनौ वार सबलन पर घालौ।
सरनागत को सदा प्रान के सम प्रतिपालौ॥
नहीं बीरता साथ क्रूरता रंचहु धारौ।
क्रोध छोड़ि गुन धरम समर मैं सस्त्र प्रहारौ॥
पुनि प्रबल सत्रु सों अभिरि कै नासहु जनि बहु मूल्यतन।
कहुँ टरि बचाय कहुँ जुगुति सों करौ कुसलता सहित रन॥११९॥

धधकत अनल बिलोकि सलभ सम जनि तनु जारौ।
यह मूरखता गुनौ बीरता नाहिँ बिचारौ॥
उचित समै जनि प्रान छोड़िबे सों मुख मोड़ो।
पै नाहक तजि प्रान जनम भूमिहि जनि छोड़ो॥
यहि जनम भूमि को मातु सम गुनौ प्रीति भाजन परम।
सुत याको हित साधन गुनौ एक परम पावन धरम॥ १२०॥

सब देसिन को सदा भ्रात गन सम सतकारौ।
सबही को सम गुनौ जाति अरु पाँति बिसारौ॥
जो बाँभन गुनधरै ताहि बांभन अनुमानौ।
ताही के हित किये देस मंगल थिर जानौ॥
करि मान एक गुन कौ सुवन अधम लोक चालन तजौ।
जनि औरन को कछु करत लखि अन्ध सरिस सोई भजौ॥१२१॥

उचित गुनौ जो चाल ताहि सन्तत सिर धारौ।
जनि समाज डर कहूँ रंच आचरन बिगारौ॥
दीन दुखी के सदा शूर बनि आड़े आवो।
दया करन मैं जाति पाँति को भाव भुलावो॥

गुरु विपदा हूँ मैं जनि बिचलि सिथिलित करौ बिचार बर ।
जो थिर बर सम्मति पै रहै वहै बड़ो है बीर नर ॥ १२२ ॥

राज न सम्पति गुनो राज गुरु भार बिचारौ ।
सुख साधन गुनि राज सुवन जनि धरम बिसारौ ॥
आपुहि सेवक मात्र प्रजा गन को अनुमानौ ।
परजा को हित परम धरम नृप को पहिँचानौ ॥
जो परजा सों कर लै खरच निज हित मैं अनुचित करै ।
बिस्वास घात को पाप लहि घोर नरक मैं सो परै ॥ १२३ ॥

सदा कान दै सुनौ प्रजा सम्मति गुनकारी ।
ताको पालन गुनौ धरम राजा को भारी ॥
हठ करि विद्या दान अबस परजा कहँदे हू ।
सब गुन गन मैं गुनहु सुवन गुरुतम गुन एहू ॥
पुनि करहु खरच सोई भरै जा सों दुखिया को उदर ।
कै धन उतपादक शक्ति बर होय प्रजा की प्रबलतर ॥१२४॥

करौ आलसी पुरुष राज मैं मान बिहीना ।
बिनु श्रम कोई कहूं होन पावै जनि पीना ॥
सदा स्रमी को देस रतन गुनि मान बढ़ावो ।
व्यापारहि उतसाह देइ सन्तत अपनावो ॥
पुनि सकल प्रजा गन को सदा करौ मान सब भांति सम ।
नहिँ भिन्न भिन्न परजान मैं प्रीति भाव छिन होय कम ॥१२५॥

नीच न काहुहि गुनौ करौ सब को सनमाना ।
प्रति मनुष्य के गुनौ तात अधिकार महाना ॥

जीव मात्र पै करौ दया सन्तत गुन कारी ।
आरज मत को चारु धरम समुझौ यह भारी ॥
सुत सम्पति और बिपत्ति मैं सदा एक रस ह्वै रहहु ।
है यह महानता को धरम याहि औसि चित सों गहहु ॥१२६॥

भारी बिपदा परेहु भूलि सुत जनि घबरावो ।
नहीं धरम सों तबहुँ रंच बिस्वास हटावो ॥
अन्यायी जनि गुनौ ईस कहँ न्यायी जानौ ।
बिपदा हू को कछू भलो कारन अनुमानौ ॥
जो एक जन्म मैं नहिँ लखौ न्याय होत नर सों कहीं ।
तौ और जनम को ध्यान करि करौ चित्त चंचल नहीं ॥१२७॥

सुख मैं फूलौ नहीं न दुख मैं बनौ दीन मन ।
रहि सब छिन गम्भीर करौ कारज सम्पादन ॥
दृढ़ता धारन करौ परम भूषन यहि जानी ।
बिनु दृढ़ता को पुरुष नीच पशु सो अनुमानी ॥
अति छोटेहु करमन पै सदा नर गन के राखहु नजरि ।
सच्चो सुभाव गुन अटल ये देत पुरुष को प्रकट करि ॥१२८॥

जो कछु करिबो होय जौन छिन मैं मन माहीं ।
ताही छिन सो करौ निमिष अन्तर भल नाहीं ॥
गुनौ समै को मूल्य बहुत बातन सों भारी ।
करौ समै अनुसार सकल कारज पन धारी ॥
यह सोचौ सदा दिनान्त मैं काल सफल कितनो भयो ।
केहि कारन बस कितनो समै आजु अकारथ ह्वै गयो ॥१२९॥

होत अकारथ लखौ काल जिन लोगन संगा।
भूलि न उनको करहु कबहुँ सतसंग अभंगा॥
जितनो श्रम सहि सकै देह उतनो ही कीजै।
काल सफलता लागि देह बल जनि हरि लीजै॥
नित नियम सहित व्यायाम करि सदा सबल तन राखिये।
जनि यह तन छन भंगुर समुझि भूलि पराक्रम नाखिये
॥१३०॥

गुनि यह लोक सराय मानि मिथ्या जग नीको।
माया मैं संसार समुझि मति मानौ फीको॥
राख सरिस जग बिरचि ईस नहिँ तुमहिँ भ्रमावत।
बाजीगर सम बैठि तमासे नहिँ दिखरावत॥
गुनि करम भूमि यहिँ सुत सदा करतव्यन पालन करौ।
जग दृढ़ता सों करि नाक सम धरम धारि आनँद भरौ
॥१३१॥

भारी दोषहु लखे क्रोध कबहु नहिँ कीजै।
धरि समता रहि शान्त दोष सम दंड करीजै॥
जो खुसामदी और मीत को अन्तर नीको।
निरखि जांचि अरु जानि ताहि राखौ प्रिय जी को॥
पुनि बालक पालन मैं रहौ सदा बिचच्छन सजग मति।
जो तुम्हरो दूषन वै लखैं होय तासु फल दुखद अति॥१३२॥

बालक भूषन जानि ताहि धारैं सिर सादर।
जीवन मैं ह्वै जाहिँ तौन बालक दूषित नर॥

सदा बढ़ावो मान तरुनि गन को सुखदाई।
सुत सम तनया गुनै देस मंगल अधिकाई॥
नितही संग्रह जस को करहु स्वारथ भाव भुलाय करि।
पर तिय रति लालच आदि सब विषय वासना दूरि धरि
॥१३३॥

सीलहि दै गुरु मान करौ ताको सुत धारन।
नेह न तोरौ कबौ पाय कैसोऊ कारन॥
जोरन मैं नव नेह नाहिँ चंचलता आनौ।
जुरे नेह पै ताहि निबाहन ही अनुमानौ॥
पुनि राज करम चारी चुनन मैं प्रवीनताई धरहु।
गुन सील देस कुल सोचि कै नियत कुशलता सों करहु
॥१३४॥

करौ शास्त्र अभ्यास कुसंगति सों सुत भागौ।
पंडित साधु उदार जसिन के सँग अनुरागौ॥
नहिँ प्रमाण करि श्रवण अन्ध सम ता कहँ मानै।
ताको कारन खोजि बुद्धि बल सों अनुमानौ॥
सिगरी बातन को ध्यान सों देखि सुमति बल जांचिये।
यहिँ कालचक्र की चाल को रहि अति सजग सवांचिये
॥१३५॥

उन्नति पथ पै जौन देस पुहुमी के राजैं।
जिनके प्रबल प्रताप निरखि बैरी डरि भाजैं॥
तिनकी उन्नति ओर ध्यान पूरन सुत देहू।
धरिकै विमल विचार तासु कारन गुनि लेहू॥

पुनि देखि पतित देसन सविधि अवनति कारन ज्ञात करि।
दुरगुन बराय निज देस को करौ समुन्नत गुननि भरि॥ १३६॥

मानुस गन की चाल ढाल पै ध्यान जमावो।
देसिन के सतिभाव निरालस रहि अजमावो॥
होनहार को ज्ञान यथा मति संचित कीजै।
ताके सब प्रतिकार खोजिबे मैं मन दीजै॥
इन अरु ऐसीही अन्य सब बातन पै नित ध्यान धरि।
सुत करौ राज अब जाय तुम परम सजगता सों बिचरि॥ १३७॥

मालती सवैया।

यों लहि सीख महा मुनि सों सब पावक नन्दन मोद बगारे।
कै परदच्छिन कौसिक के पद की रज पावनि सीसनि धारे॥
फेरि हुताशन त्यों मुनि मंडल को परदच्छिन कै सतकारे।
आपुस मैं मिलि भेंटि ससैन तबै निज देसनि ओर सिधारे॥ १३८॥

दोहा।

तिनहिँ बिदा करि कै सुमुनिगाधि नन्द हरषाय।
मुनि मंडल सों मिलि सबिधि बसे हिमाचल जाय॥ १३९॥

यहि तरंग मैं लखि परत ग्रन्थ भूमिका बेस।
यज्ञ जनम चहुवान को राजनीति उपदेस॥ १४०॥

(अन्य तरंग)

भूप छता हित सोक लखि गौर गरब गुरु चाहि।
लखो तयारी जंगहित यहि तरंग के माहि॥ १॥

कवित्त ।

सत्रुगन सालि छत्र साल महिपाल जब
धौल पुर माहिँ दिनकर लौं अथै गयो ।
नसिगो प्रकास पुहुमी सों चहुँ ओर पुनि
बूँदी में विशेष तम तोम दुख को छयो ॥
बोलन उलूक सो लगो है रिपु मंडल त्यों
मीतन को ओज कंज सम हत श्री भयो ।
निरखि निसासी लईं हाड़न उसासैं जुरि
काहू को न रह्यो चित चारु थिरता मयो ॥ २ ॥

रोला ।

कियो जेहिँ पन धारि बावन समर मैं रन घोर ।
सदा हाड़ा सूरता को राखि जस बर जोर ॥
एक तेग बिचारि साथी आपनो बल पूर ।
युद्ध मैं नित कियो साहस अरिन को जेहिँ चूर ॥ ३ ॥

नहीं संकट परेहु साहस दियो कबहूँ जान ।
कियो संगर एक आपुहि मानि सैन समान ॥
चले चरचा अरिन की, जो बोर धारि उछाह ।
मुच्छपै धरि हाथ निरखत रहो रन की राह ॥ ४ ॥

सान्ति मैं अरु युद्ध मैं गम्भीरता सम धारि ।
नहीं बिचलित भयो कबहुँ देखि दारुन रारि ॥
गयो जो सुरलोक उठि सो बीर बर छतसाल ।
कैान छत्री धरम धारन करैगो यहि काल ? ॥ ५ ॥

कौन सूरन देखि कै अब पुलक सों भरिगात।
धाय मिलि है ललक सों उठि मनु सहोदर भ्रात ? ॥
त्यागि रन मैं देह दै हर माल मैं निज सीस।
सूर मंडल बेधि तुम तैा गये सुर पुर ईस ॥ ६ ॥
छोड़ि हम को गये क्यों जम जातना हित नाथ ? ।
कियो क्यों न सनाथ सब को राम सम लै साथ ? ॥
चखन सों तजि बारिधारा सूर गन बिललात।
करत घोर बिलाप यहिँ बिधि महा व्याकुल गात ॥ ७ ॥

काव्य।

यहि बिधि करत बिलाप सूर गन कहँ लखि भारी।
इन्द्रसिंह छतसाल बन्धु धीरज मन धारी ॥
सूरमंडली मांझ कह्यो इमि बचन बिसाला।
अब तैा सुरपुर गयो जसी जाहिर छतसाला ॥ ८ ॥

रनमंडल में इबिधि मीचु सब सूर मनावैं।
मरे खाट पै कहूँ बीर पदवी नर पावैं ? ॥
जोग जुगुति सों बिचरि कामना मुनि गन जारैं।
जीवन भरि दुख झेलि अन्त में जो पद धारैं ॥ ९ ॥

सोई पद रन माहिँ बीर गति लहि नृप पायो।
कत यहिँ मंगल काल सोक तुम्हरे चित छायो ? ॥
दुख दारुन मैं कियो भूप नहिँ कबहुँ बिषादा।
तुम अब पालन करैा तैानि पावनि मरजादा ॥ १० ॥

सुत गन को अवतार पिता ही को अनुमानौ ।
नहीँ भिन्न छिन गुनौ शास्त्र सम्मति यह जानौ ॥
दानी धरमी बीर सुवन भाऊ जेहिँ पायो ।
सो कैसे मृत भयो भूप छतसाल सोहायो ? ॥११॥

जाके जस को देह भयो थापित जग माहीँ ।
अजर अमर ह्वै जौन सकै छिनहूं टरि नाहीं ॥
लहिहि सूरता सीख जगत जासों मन भायो ।
सो कैसे मृत भयो भूप छतसाल सोहायो ? ॥१२॥

बसुधा तल मैं रहे पूरि जाके बर गुन गन ।
निरखे जासु प्रकास होत रबि तेज मलिन तन ॥
जाको लहि संसरगु धवल बूँदी जस छायो ।
सो कैसे मृत भयो भूप छतसाल सोहायो ? ॥१३॥

बीर सबद मुख कढ़त ध्यान जाको झट आइहि ।
नर भूषन गुनि जाहि जगत सन्तत अपनाइहि ॥
जाके हित यहि राज केर जैहै जस गायो ।
सो कैसे मृत भयो भूप छतसाल सोहायो ? ॥१४॥

भयो सूरता सीम जौन बरबीर सयानो ।
राज भगति को अचल नमूनो भो जग जानो ॥
स्वामि धरम प्रतिपाल केर जेहि रूप दिखायो ।
सो कैसे मृत भयो भूप छतसाल सोहायो ? ॥१५॥

गुनौ न स्वामिहि बीर लोक वासी सब भाई ।
धरौ धोर जनि तजौ बीर बानो कदराई ॥

गुनि देखौ मन माहिँ सोक समयो यह नाहीं ।
भीर परन के चीन्ह राज पर बहुत लखाहीं ॥१६॥

करि दारा दल चूर भयो नवरंग भुवाला ।
हो ताको रिपु घोर जगत जाहिर छतसाला ॥
करिहै सो अब औसि कोप बूँदी पर भारी ।
तासों रन के हेत करौ सब सूर तयारी ॥१७॥

भावसिंह को करौ राज अभिषेक विचारी ।
होहु बहुरि सन्नद्ध समर के हित पन धारी ॥
सिर धारौ जो ईस देइ दुख सुख जेहि काला ।
निरदोसिन को गुनौ तौन कल्यान बिसाला ॥ १८ ॥

दोहा ।

सुनासीर गढ़पति बचन इमि सुनि सोक भुलाय ।
सिगरे हाड़ा धरम गुनि बबके ओज बढ़ाय ॥ १९ ॥

करि भाऊ अभिषेक शुभ सविधि शास्त्र अनुसार ।
भीम और भगवन्त हित लागे करन बिचार ॥ २० ॥

इन बन्धुन के हेत नृप भाऊ प्रीति बढ़ाय ।
देत भयो गोगोर अरु मऊ देस हरषाय ॥ २१ ॥

इतने मैं नृप नीति तजि औरँगजेब भुवाल ।
गौर आतमाराम हो शिवपुर को नरपाल ॥ २२ ॥

हुकुम ताहि इमि देत भो अब ससैन चढ़ि जाय ।
इन द्रोही हाड़ान को छिन में गरद मिलाय ॥ २३ ॥

करि बूँदी सामिल तुरत रणथम्भौरहि माह ।
करौ राज सेवा सबिधि हे गौरन के नाह ॥ २४ ॥

दच्छिन देसहि जान मैं हौं बूँदी ह्व जाय ।
तुमहिँ बधाई देहुँगो बिजै हेत हरषाय ॥ २५ ॥

चान्द्रायण ।

यहि बिधि सासन पाय चित्त हरषाय कै ।
करि सेना सन्नद्ध संख बजवाय कै ॥
लै दल बारह सहस बीर गन को भलो ।
तेहि छन गौर नरेस महा रन हित चलो ॥ २६ ॥

भारत बासिन लाज नहीं कबहूँ धरी ।
रारि बिदेसिन हेत बन्धु गन सों करी ॥
नहिँ स्वदेस को मातु सरिस पूजन कियो ।
देसिन सों नहिँ भ्रातृ भाव छिन थापियो ॥ २७ ॥

छोड़ि लाज को भाव गौर स्वारथ पगो ।
भावसिंह को देस भसम करिबे लगो ॥
अति चंचल तरवारि धारि कर क्रोध कै ।
बिसद खटोली ग्राम साबिधि अवरोध कै ॥ २८ ॥

निरदोसिन ह्व पै प्रहार करतै गयो ।
रुधिर प्रान सों बिकट रूप असि को भयो ॥
स्वेत बरन ही सान्ति काल तरवारि जो ।
लहि रनको उतसाह लाल रँग धारिसो ॥ २९ ॥

निरदोसिन को रुधिर पान जब कै गई ।
कारी नागिनि सरिस अजस मूरति भई ॥
सो कारी असि लसै गौर के हाथ मैं ।
ऊँचो अजस पताक चलै मनु साथ मैं ॥ ३० ॥

कवित्त ।

भाल मैं समान्यो है कलंक को न टीको मनु
धारि असि रूप सोई कर मैं बिराजो है ।
दूरि सों न परै लघु रूप सों लखाय चित
यहै गुनि परम बिसाल बनि गाजो है ॥
रहे इक ठौर देखि परै सब ही को नहिँ
मनो यह जानि घूमिबे को साज साजो है ।
धरम के भच्छन त्यों पापन के रच्छन मैं
परम बिचच्छन सदा ही जैान ताजो है ॥ ३१ ॥

इन्द्र गढ़ पति लखि बिपति जगीर पर
खबरि जनाई सति बूंदी महिपाल को ।
गई है तयारी तब जारी सब देस माहिँ
देखिकै गरब सिव पुर के भुवाल को ॥
सावन घटा से कारे उमड़े द्विरद गन
रद करिबे को मद अनल कराल को ।
सुंडन उठाय गरजत चहुँ ओर देखि
लरजत साहस प्रबल अरि-जाल को ॥ ३२ ॥
सुंडन सों पावैं सुधाधर के सुधा को स्वाद
मुंडन सों ठेलैं नगराजन बिसाल की ।

गंडन पै भौंरन के झुंड मड़रावैं बहु छोड़ैं
मद जल के फुहारे गुन आल को॥
सांकरि को लैकै उलझारैं तब गारि डारैं
सिगरो गरब मृगराजन के माल को।
गाजनि सों राजन के दल की बढ़ावैं प्रभा
चाल मैं लजावैं गजराज यै मराल को॥ ३३॥

भीम बल सीम यै मतंग मतवारे फिरैं
धावत मही पै मनो भूधर उमंग मैं।
चूर करिबे को रिपुगन को प्रबल दल
धवल बटोरन सुजस जुरि जंग मैं॥
बूँदी पै बिलोकि दिन मानों चहुँ कोदन सों
धाये गिरिवर आजु नूतन प्रसंग मैं।
राज मैं बसे हैं तब क्यों न राजभगति कै
गरद गनीमन मिलावैं रन रंग मैं? ॥ ३४॥

चंचल तुरंग बहु रंग के सुढंग महि
टापन सों खंडत जकन्दत चलत हैं।
मोतिन जटित चारु जीननि सँवारे मग
जात यै जमत अति सुखमा रलत हैं॥
जस लूटिबे को रन रंग मैं उमंग भरि
चोप सों झपटि नित हौंसत हलत हैं।
चंचला सरिस चमकत दल बादल मैं
हिम्मति जहाज मृगराजन मलत हैं॥ ३५॥

सवैया ।

थानन सों खुलि चारु तुरंगम देत अकासहि मैं चकती हैं ।
धावत यों जव सों जल पै कहुँ टाप न बूड़त एक रती हैं ॥
यों तिन पाहिँ सवार भले तन साधत मानहु जोगि जती हैं ।
तेउ सवारन की रुचि पै चित धारत यों मनु नारि सती हैं ॥३६॥
ओज धरे रन मंडल माहिँ मतंगन के सिर टाप जमावैं ।
चाय भरे विचलैं न छिनौ बरु तोपन के मुख पै हठि धावैं ॥
सेलनि सों तरवारिन सों तिमि गोलन सों सब त्रास भुलावैं ।
एक बिजै पर धारि मनै गुरु पौरुष बैरिन को दरसावैं ॥ ३७ ॥

देस पै भीर बिलोकि परी इमि चंचलताई तुरंगन धारी ।
राज कुसंकट की घटना तिन सों मनु जाति छिनौ न निहारी ॥
बैरिन को मद झारि पछारि हरौ तुर देसिन को दुख भारी ।
सूरन को करि चंचलता मनु देहिँ तुरंगन सीख बिचारी ॥३८॥

कैरन वावन बीर छता नित ही रन चंडिहिँ तोष दयो है ।
ताहि गये सुर लोक लखे यह देविहि भाव नयो उनयो है ॥
आसन पै सुजसी पितु के मृग नायक भाव भुवाल भयो है ।
सूरपनो अपनो पितु के सम ताहि लखावन को समयो है ॥३९॥

भूप छता सुतभो नहिँ कादर है बरु बीर पिता सम भारी ।
ह्वै नहिँ कुंठित नेकु गई पुनि हाड़न की असि धार करारी ॥
बीरन को मन है अजहूं रन मंडल को बलवान बिहारी ।
जानन को यह देबि कियो मनु बूँदिहिँ मैं रन कौतुक जारी ॥४०॥

सूर छता सुर लोक गयो गुरु सोक पर्यो जगतीतल तासों ।
हाड़न के मन कें जलजात गयो कुँभिलाय वियोग महा सों ॥
दासन की यह देखि दसा सुखदायनि मातु भरी करुना सों ।
दूरि दुरावन को दुख सो मनु संगर आनि रच्यो सुखमा सों
॥ ४१ ॥

कवित्त ।

फहरे पताके नभ घहरे नगारे सब
छहरे चहूँ धा बीर बलकत बलवान ।
नेजन फिरावैं केते असि चमकावैं केते
सबिधि नचावैं दरसावैं गुरु धन बान ॥
परम भयंकर भुसुंडिन सजावैं केते
लोपन को बैरि कुल तोपन करैं समान ।
नासन को गैार दल त्रासन मलिच्छ बल
हाड़न को सुजस प्रकासत सहित सान ॥ ४२ ॥

हाड़न को परी तलबेली है समर हित
देखिकै प्रबल यह गैारन को अभिमान ।
राज मैं बिलोकि पद अरपन बैरिन को
भये ते सरोख पद परसित नाग मान ॥
कहैं जुरि वीर यदि आयो गैार संगर को
दबि कै रहैंगे नहिँ जैालैां तनमाहिँ प्रान ।
काटि समसेरन सकल दल बैरिन को
चलैा रन चंडिहि चढ़ावैं आजु बलिदान ॥ ४३ ॥

रचि रनभूमि को विसद मख कुंड आजु
रोस को अनल सरसावैं बर ओज कै।
सुवाहु च्यमस करि सेल तरवारिन को
बैरिन के मेदको बनावैं घृत मौजकै॥
करि जजमान भावसिंह नरपाल गुनि
तासु यह प्रथम समर चित चोज कै।
करै रनचंडिहि प्रसन्न मखपूरन कै
करि बलि पसु गौर भूपतिहि खोज कै॥ ४४॥

कियो रन चंडिहि निहाल छतसाल नित
परम कराल करबाल कर धरि कै।
ताही सों परकि बिनु लहे बलिदान देबि
लाई है बटोरि बलि पसु आस भरि कै॥
तासों रजपूती को सम्हारि बेस बानो आजु
सेल तरवारिन को धक पेल करि कै।
बूँदी दिसि धावन सतावन अदोसिनि को
गौरन चरवावैं स्वाद रन मैं बिचरि कै॥ ४५॥

सवैया।

इमि सूरन के सुनि बोल भले सबके चित चाव चढ़ो रन को।
फरके भुज लाल भये मुख चारु उछाह मनो प्रगटो मन को॥
करिबे कहँ राज निरापद भो रन मत्त महा मन बीरन को।
लहि संगर को अनुराग बड़ो बिसरो सब ध्यान तिन्हैं तनको॥४६॥

दुपई।

लखि बूँदी पर भार भयानक भावसिंह महिपाला।
करि दरबार सूर मंडल को बोल्यो बचन बिसाला॥
छोड़ि नीति की चाल सनातन दिल्लीपति बिरझायो।
ह्वै मतिहीन तीनि पीढ़ी को सब उपकार भुलायो॥ ४७॥
पिता पितामह प्रपितामह सों आपुहि पृथक बिचारयो।
स्वामि धरमपालन के गुनको परम नीच निरधारयो॥
तजि कुलराज भगति पितु नृप जेहि दिय बंदी घर डारी।
ताको राज भगति की गरिमा कैसे परै निहारी ?॥ ४८॥
स्वामी सासन पालि पूज्य पितु रन सागर अवगाह्यो।
सहित सुवन तन त्यागि अंत लों पावन धरम निबाह्यो॥
सो अलभ्य गुन दोस मानि यदि बादसाह बौरान्यौ।
तौ गंजन गुरु गरब तासु हौं पूरन धरम प्रमान्यो॥ ४९॥
सोवत सिंहहि लखि सियार गन जो मद भरि उमदाने।
बल दरसावन चले लवागन सेन सिथिल अनुमाने॥
मिलि अनेक मूषक बिडाल को जो बल सों दबकावैं।
जो भुजंग जुरि कै खगराजहिँ निज पौरुष दरसावैं॥ ५०॥
सुनौ सूर सामन्त सपूतो है तौ अचरज नाहीँ।
मरन काल बहुधा प्रानिन की मति उलटी ह्वै जाहीँ॥
आँसुन को सहवास पाय असि हाड़न की मुरचानी।
ताहि प्रखर करिबे को फिरि कै बांध्यो ब्योंत भवानी॥ ५१॥
चंद धरन कहँ जो बालक सम रिपुगन बाहँ बढ़ाये।
मोछ मिरोरन हेत सिंह की जो मूरख बनि धाये॥

हाड़न को इन चंड पराक्रम निदरि जुपै बिसरायो ।
जननी जनम भूमि के उरपै जो इन पावँ जमायो ॥ ५२ ॥
तौ येकहि करि झपट सिंह सम इनको करौ सँहारा ।
जननी जनमभूमि अन्हवावो रिपु सोनित की धारा ॥
जननि गात इन असुचि बनायो अधम चरन धरि उर मैं ।
कीजै सुचि अन्हवाय ताहि रिपु रुधिर धार सों तुर मैं ॥ ५३ ॥
असि बांधे की जिन्हैं लाज है ते स्वदेस को भारी ।
कैसे रिपु धरषन सहि सकि हैं मुच्छ बदन पर धारी ? ॥
परदेसन मैं लड़ि नित हाड़न सूरपनो दरसायो ।
सदा निबाही आनि तेग की रिपु को मुँह मुरकायो ॥ ५४ ॥
ऐसी हिम्मति नहीं आजुलौं काहुहि चित मैं धारी ।
जो बूँदी पर चढ़ि धैबेकी करतौ सफल तयारी ॥
ताते हे सामंत सपूतौ बरबल आजु सम्हारौ ।
रजपूती की बानि राखि कै गौर गरब रन गारौ ॥५५॥

जब सों रावदेव बूंदी को बिरचि सुजस अवगाह्यो ।
तब सों आसपूरनी माता सदा लाज निरबाह्यो ॥
केवल साथ पंच सत हाड़ा लै हामो बलवाना ।
मथि डार्‌यो राना दल सागर मंदर सैल समाना ॥ ५६ ॥

नृप नारायन दास साथ लै सुभट पचीसक हाड़ा ।
काट्यो सीस समरकंदी को बाहि बेग सों खाड़ा ॥
लै सँग बहुरि पाँच सत बीरन सूरपनो दरसायो ।
काटि पठान हजारन रन मैं चलि चित्तौर बचायो ॥ ५७ ॥

जब जब भीर परी रन महि मैं तब तब साहस धारी।
हाड़न काटि कटक बैरिन के लियो धवल जसभारी ॥
यह बूंदी को राज हमारो साहस ध्वज सम राजै।
तब लौं मुच्छ वदन पर जानौ जबलों यह रन गाजै ॥ ५८ ॥

जो कहुँ बिधि बस अमिट आपदा यहि बूँदी पर आवै।
तौ ताही दिनसों हाड़न की जाति मृतक बनि जावै ॥
गुनौ जाति को देह सरिस तौ राज प्रान निरधारौ।
होय राज कहुँ भंग जाति वह तौ शव तुल्य बिचारौ ॥५९॥

है धिक जीवन तासु जाति है जासु मृतक जग माहीं।
सो केवल दिन काटत जग मैं जियत गुनौ तेहि नाहीं ॥
जनम भूमि के दिये देह के पंचभूत सब जानौ।
तातै देह देस को गुनिकै जनि अपनो अनुमानौ ॥ ६० ॥

जनम धारि माता सों यह तन कछु दिन इत उत जोवै।
बहुरि अंत मैं मिलि माता सों तासु गोद मैं सोवै ॥
जौलों जियै नहीं तबहूँ लौं है छिन तासों न्यारो।
खात पियत सब दियो मातु को नित रहि तासु दुलारो ॥ ६१ ॥

कहाँ गये श्रीराम युधिष्ठिर परसुराम सरजाती।
भीषम अर्जुन करन कान्ह बलि गौतम जन्हु जजाती ॥
यह संसार नाट्यसाला को केवल दृश्य बिचारो।
जो जैसो इत खेल दिखावै तैसोइ तौन पियारो ॥ ६२ ॥

धरमाधरम धरे यहि जग मैं जस अपजस रहिजावै ।
लालच किये छनिक सुख के हित हाथ नहीं कछु आवै ॥
जो पावन संतोष होत मन धरम धरे सुखदाई ।
नहीं राज सुखहू मैं ताको एकहु अंस लखाई ॥ ६३ ॥
निरखहु राव देव की करनी जेहि जुगराज कमायो ।
रन मंडल मैं भुजदंडन को अतुलित बल दरसायो ॥
ताके ह्वै संतान सकैं हम राज न एक बचाई ।
तौको पाइहि पार गान करि हम सबकी कदराई ॥ ६४ ॥
तातै रजपूती को बानो धारि सूर समुदाई ।
करौ धवलतर जस हाड़न को पुरुसारथ दरसाई ॥
लहि पुरिखान जथा कीरति सित हमैं दियो पद भारी ।
सदासूर संतान कहावैं हम जासों जस धारी ॥ ६५ ॥
तिमि है उचित आजु हमहूँ मिलि उन कहँ बड़े बनावैं ।
जासों बीर बंश उपजावन को बर पद वै पावैं ॥
हे मम सूरबीर हाड़ागन अब जनि देर लगावो ।
भुजबल मरदि गरद करि गौरन बंस विरद बगरावो ॥ ६६ ॥

छप्पै ।

सुनि स्वामी के बचन सकल हाड़ा उमदाने ।
जंग जुरन के हेत चाव भरिकै ललचाने ॥
उतकंठित हे जौन समर के हित पहिले ही ।
सुनत बचन ते भये जङ्ग के अधिक सनेही ॥
ज्यों ज्वलित अनल मैं घृत परे तेज परम दारुन बढ़त ।
त्योंहीं हाड़न के मुखन पर निरखि परो साहस चढ़त ॥६७॥

एक एकसों मिले होत ग्यारह जेहि भांती।
त्यों साहस उतसाह मिले हाड़ा मुख कांती॥
जग मगाय तहँ उठी भानु सम तेज सरासी।
छिन छिन परमा जासु परम रमनीय प्रकासी॥
हे सकुच भरे चाहत जऊ मौन स्वामि सनमुख रहन।
तबहूँ उमंग बस ह्वै लगे यहि प्रकार हाड़ा कहन॥ ६८॥

तव प्रताप सों नाथ आजु चंडी बल पाई।
धरि कर मैं करबाल काल सम ओज बढ़ाई॥
कीट सरिस रिपु सैन सकल संगर मैं काटैं।
खाईं रनमहि माँह गैार लोथिन सों पाटैं॥
जबलौं सोनित को बिन्दु यक तन मैं संचालन करिहि।
नहिँ तबलौं हाड़ा को चरन रन महिसों छिनहूँ टरिहि॥ ६९॥

अंग अंग कटि परैं तऊ उतसाह न छंडैं।
मरत मरत दुइ चारि शत्रु हनिकै जस मंडैं॥
जनमभूमि के सुत सपूत ह्वैबो अभिलाखैं।
स्वामिलोन की लाज प्रान रहिबे लौं राखैं॥
थिर अंगदसम हाड़ा चरन को डिगाय रन सों सकै।
जबलैा जीवत नर एकहूँ को बूँदी की दिसि तकै॥ ७०॥

है हाड़न की एक मातु बूँदी सुखदाई।
हम याही की गोद सदा खेलैं सब भाई॥
अधम जैान यहि चहै बनावन बलसों दासी।
ताके सोनित हेत रहै हाड़ा असि प्यासी॥

लै ताही को सोनित करैं माता को अभिषेक हम ।
जासों जननी कीरति लसै धवल कौमुदी चंदसम ॥ ७१ ॥

दोहा ।

यहि बिधि सूरन के बचन सुनत पुलक भरि गात ।
कहत भयो दीवान इमि समयोचित बर बात ॥ ७२ ॥

छप्पै ।

धन्य धन्य है विसद बीर हाड़ा बलसाली ।
तो भुज बल सों चढ़ी सदा बूँदी मुख लाली ॥
जबलौं ये भुज दंड चंड फरकैं अतिघोरा ।
चपलासी करबाल लाल चमकैं चहुँ ओरा ॥
तबलौं हम काढ़ैं तासु चख आँखि जौन सनमुख करै ।
को भूप भृकुटि लखि भंग नहिँ थरथराय भूतल परै ॥ ७३ ॥

रिपुगन को लखि ढीठ मान मरदन हित भारी ।
करि संगरहित सरंजाम सह आजु तयारी ॥
जौलौं रबि कर करैं काल्हि उदयाचल चुम्बन ।
तासु प्रथम सब चलो सुजस लूटन हाड़ा गन ॥
करि पूरित काल्हि दिगंत लौं गुरु धुकार धौंसान की ।
हिरदौ हलाय रिपु की करौ सिथिल बानि अभिमान की ॥७४ ॥

इमि सासन लहि सकल सूर सामंत सयाने ।
करि करि नृपहि जोहार गये गेहनि मुद साने ॥
उत सुनि रिपु आगमन समर की जानि तयारी ।
आये सब जागीरदार सेना सजि भारी ॥

तिनके समेत भाऊ नृपति निज दीवानहिँ संग लहि।
रण मंत्र हेत बैठत भयो सभा जोरि नृप नीति गहि ॥७५॥

रण कौशल हित एक पहर तहँ भयो बिचारा।
दावँ कुदावँन ओर ध्यान सबहिन मिलि धारा॥
रिपु दल की थिति ओर भूमि बेषहि अनुमान्यो।
अरिमरदन रक्षन स्वसेन के दावँ प्रमान्यो॥
करि बिबिधि सुमत सबहिन प्रगट गुन दोषन पर ध्यान धरि।
बहुबिधि सवाँचि सब पेच गुनि लियो मंत्र बर सुदृढ़ करि ॥७६॥

रिपु चालन कहँ लखन दूतहे गये सयाने।
तिनसों खबरिन पाय तिन्है सादर सनमाने॥
चतुर चार गन सकल ओर पुनि गये पठाये।
दलसंचालन मरम लेन रिपु दिसिते धाये॥
यहि भांति सुदृढ़ नृप अंग लखि थिर करि व्यूह बिधान सों।
करि दलबिभाग सेनापतिन किय उतसाहित मान सों॥ ७७॥

सब दलको नृप भार प्रथम अपने सिर लीन्हो।
बहुरि निरीच्छक सैन केर दीवानहि कीन्हो॥
मोहोकमसिंहहि सेन सहित बूँदी महँ राखो।
इन्द्र सिंह कहँ अग्र भाग दीबो अभिलाखो॥
थपि बैरी सालहि पीठि दिसि भीमहि दच्छिन दिसि कियो।
भगवंतसिंह कहँ बाम दिसि प्रबल सैन सह थापियो॥ ७८॥

मध्यभाग महँ आपु मुख्य सेना सह सोह्यो।
महासिंह कहँ बहुरि देखि संगर हित कोह्यो॥

भाष्यो तुम सह सैन सकल दलसों बिलगाई।
रन महि दिसि ढिग बाम रहौ छिपि घात लगाई॥
रिपु दच्छिन सों लहि मम हला बाम ओर सिमिटैं जबहि।
तुम प्रबल बेगसों कढ़ि सदल मथन करौ अरि बल तबहि॥ ७९॥

जु पै दैवबस लखौ अरिन को बढ़त दुखद बल।
तबहू बोलो हला निकसि झट सहित प्रबल दल॥
काज बांटि यहि बिधि बढ़ाय सबको उतसाहू।
कहत भयो ये बचन बहुरि बूँदी नरनाहू॥
जोपै कदापिकेहु भांति सों होय समर सों बिमुखदल।
तौ जुरै इन्द्र गढ़ मंत्र हित बचो खुचो सेना सकल॥८०॥

दोहा।

भाष्यो तब सेनापतिन बूँदी पै यह रोज।
कबहुँ ईस लावै नहीं हनै रिपुन करि खोज॥ ८१॥

इमि कहि नृप सों ह्वै बिदा पूरित रन उतसाह।
निज निज डेरन जातभे दलपति दीरघ बाह॥ ८२॥

करि अहार आदिक इतै भाव सिंह नरपाल।
बहु बिधि करत बिचार गुनि दिल्ली बल बिकराल॥ ८३॥

चतुष्पदी।

रिपु को दल भारी बर बलधारी चढ़ि संगरहित आयो।
थोरो दल मेरा सदा घनेरो पै जेहिसुजस कमायो॥

हाड़ा के आगे गौर न भागे ऐसो नहिँ मन आवै।
पै जानि न जाई भये लड़ाई कौन बड़ाई पावै॥ ८४॥

कवित्त।

होनहार जानिबो बिचारि जन भाँति भाँति
कारन समूहन सों काजन मिलावहीं।
पाई है अलप मति तासों गुरु काजन के
बहुधा न कारन सकल जानि पावहीं॥
होहिँ ततकाल बहु कारन प्रगट लघु
काज पै प्रभाव गुरु जौन उपजावहीं।
रचै मन माहिँ नर कारन की माल जौन
तासु फल पल मैं उलटि इमि जावहीं॥ ८५॥

चान्द्रायण।

चारु ज्ञान यह ईस हाथि निज राखियो।
याको नहिँ संक्षेप मनुज सों भाखियो॥
तासों है अब उचित धरम निज पालिबो।
यथा सकति चढ़ि कालिह दुवन दल घालिबो॥ ८६॥

हरिगीत।

पै कालिह जीतैं तऊ नहिँ कल्यान की दृढ़ आस है।
भो साह बैरी देसहित तौ धरी बिपदा खास है॥
दल हनैं बारह सहस हम तौ एक लक्ष पठाइहै।
हे ईस फिरि अब कौन बिधि यह देस मंगल पाइहै॥ ८७॥
किय धरम को प्रतिपाल नित पुरिखान आनँद धारिकै।
नहिँ तज्यो कहुँ करतब्य स्वारथ हेत हिम्मति हारिकै॥

पुनि पूज्य पितुहू अंतलौ बर धरम दृढ़ता सों धर्यो ।
मम राज होतहि देसपै यह कुदिन केहिँ कारन पर्यो ? ॥८८॥

दोहा ।

यहि बिधि दुखद बिचार लहि भूप धीर पुनि धारि ।
गुनत भयो मनमोह तजि निज मति को धिक्कारि ॥ ८९॥

मनहरन ।

पालन करन मैं सुराज पुरिखान यह
बरबल धारि सब कुदिन बराये हैं ।
प्रगटो प्रताप नित देस को दुगुन जब
प्रबल प्रचंड रिपु दल चढ़ि धाये हैं ॥
सिमिटि गयो न यहि बेर जो बिसाल राज
काहे तब संकट समूह चित छाये हैं ।
अरि बल गारन को सुजस बगारन को
मेरे भट आजुहू फिरत उमदाये हैं ॥ ९० ॥

धारन करत जो धरम धुर धीर नर
आस तजि ईसपै धरत बिसवास है ।
आलस बराय नित रहिकै सजग जग
छेम हित करत जतन परकास है ॥
तासु लाज राखन मैं अरि बल नाखन मैं
नाखन रहत ईस कबहूँ उदास है ।
सूरता धरेहु रहै बिफल सुबीर यदि
कोटि जीति सरिस तदपि जस खास है ॥ ९१ ॥

दोहा।

बड़े बड़े राजान बिच राख्यो बूँदी राज।
जेहि निरबाही आजु लौं है ताही कर लाज ॥ ९२ ॥

होम करन मैं हाथ जरि कौनिहु भाँति सकै न।
धरम धरे ध्रुव राज यह सदा रहिहि जस ऐन ॥ ९३ ॥

यहि विधि चारु बिचारु धरि भावसिंह नरपाल।
कियो सैन ईसहि सुमिरि थिर करि मन ततकाल ॥ ९४ ॥

सुगीत।

लख्यो स्वप्न रसाल भूपति सैन करि कछु काल।
देवि सनमुख एक ठाढ़ी मूर्तिमान बिसाल ॥
धरे सहज सुगंध अतिही तेजवान सरीर।
पीत पहिरे बसन भूषन जटित मनिगन हीर ॥ ९५ ॥

परम दीपति मान सिरपै चारु मुकुट लखात।
कोटि रबि परताप जा कहँ लखेते छिपि जात ॥
डीठि जेहि अँग परै तहँ नहिँ एक छिन ठहराय।
चकाचौंध समान चख मैं तेज सों लगि जाय ॥ ९६ ॥

चले आवत हनन तेहि बहु वीर अस्त्र उठाय।
देखि तिन कहँ शान्त रहिसो देवि मृदु मुसुकाय ॥
आय ताके पास रिपुगन तेज सों हिय हारि।
पगन पर गिरि परैं आयुध सकल महि पर डारि ॥ ९७ ॥

देखि चारु प्रभाव यह लखि मुकुट को वह रूप।
भयो परम प्रसन्न मन मैं बीर बूँदी भूप ॥

मुकुट आभा लखी जेहि छन बहुरि ध्यान लगाय ।
श्याम थल कछु परे तामें तेज हीन लखाय ॥ ९८ ॥

स्यामता अरु तेज सों मिलि मुकुट तौन अनूप ।
परो लखि सब भाँति पूरन भानु को प्रतिरूप ॥
देखि इमि आचरज पूरित भूप देवि ललाम ।
चावसों भरि कियो ता कहँ पूज्य मानि प्रनाम ॥ ९९ ॥

बहुरि बूझन चह्यो ताको भेद जब हरषाय ।
कृपा जुत चख कोर नृप दिसि तबहि देवि चलाय ॥
भई अंतरध्यान सब सामान सह ततकाल ।
जागि भूपति लख्यो कंवल राज भौन बिसाल ॥ १०० ॥

तोमर ।

तब गुनत भो मन भूप । यह कौन देवि अनूप ॥
क्यों दियो दरसन आय । कत गई बहुरि दुराय ॥ १०१ ॥

यह रूप दैवी जौन । चख सुखद अति छबि भौन ॥
लखि परत नहिँ केहुँ ठौर । तीहुँ लोक को सिरमौर ॥ १०२ ॥

कबिसारदा कहँ ध्याय । मति भाँति बहु फैलाय ॥
श्रमधारि अगनित बर्ष । मन सदा राखि सहर्ष ॥ १०३ ॥

जो कहै रूप रसाल । सब भाँति गुन गन आल ॥
पुनि कहुँ घुनाक्षर न्याय । अति बिसद वह बनि जाय ॥ १०४ ॥

नहिँ तदपि ऐसो रूप । कहि सकै सुकबि अनूप ॥
यहिकेर बरु यक अंस । नहिँ सकै बाँधि प्रसंस ॥ १०५ ॥

मधु ।

रूप लखे यह भक्ति सदाई । बाढ़ति है मनमैं सुखदाई ॥
भो कछु पूरब पुन्य सहाई । देबि परी तब मोहिँ दिखाई ॥ १०६ ॥

ही यह कौन सुदेबि सयानी । भूषन चारु धरे सुख दानी ॥
भूषन के बिनहूँ तन ताको । है बर धाम बिसाल प्रभा को ॥१०७॥

काव्य।

जातन मैं मणि जाल बिसद चमकैं चहुँ ओरा ।
बढ़ै अंग प्रतिबिम्ब पाय परकास अथोरा ॥
गुप्त होन मैं रहो सीस पच्छिम दिसि राजत ।
प्राचीदिसि पुनि रहे तासु जुग चरन बिराजत ॥ १०८ ॥

ये सब लच्छन गुने ध्यान पुहुमी को आवै ।
ताही को जगमाँझ रतनमै बपु कहवावै ॥
पंचभूत में भूमितत्व है पीत बिख्याता ।
है पच्छिम दिसि सीस पुहुमिको आनँद दाता ॥ १०९ ॥

पै सब छिति के सत्रु कौन यह जानि न जाई ॥
क्यों पुहुमी करि कृपा आजु मोढिग चलि आई ॥
जानि परत यहि राति मोहिँ चिन्तित गुनि भारी ।
आई बूँदी देबि परम करुना चित धारी ॥ ११० ॥

यह बिचार मन उठत भूप के चख जल छायो ।
धन्य धन्य नृप भाषि देबि पद सीस नवायो ॥

जो यहि छन करि कृपा इबिधि आश्वासित कीन्हो ।
जनम जनम मोहि देवि दास अपनो करि लीन्हो ॥ १११ ॥

यहि अवसर बिन तोहि मातु को धीर बँधावै ।
तो बिन को लखि दुचित बच्छ यहि विधि उठि धावै ॥
चूमि चाटि बहु भाँति मातु यह गात बढ़ायो ।
निज हाथन सों सदा पालने धरि हलरायो ॥ ११२ ॥

सब सौख्यन सों पालि सकल बिधि समरथ कीन्हो ।
सब इच्छन पन धारि सदा पूरन करि दीन्हो ॥
पै तो रच्छन काल मातु जेहि छन चलि आयो ।
तूल सरिस उड़ि चहूँ ओर चंचल चित धायो ॥ ११३ ॥

तबहूँ छिन भरि सकी मातु नहिँ बिलम लगाई ।
मन चंचलता हरन हेत आतुर ह्वै धाई ॥
निज प्रताप सों दिय दिखाय रिपु गात मलीनो ।
केवल जस के हेत मोहिँ उत्तेजित कीनो ॥ ११४ ॥

जंग हेत गुनि जात कालिह मन मैं मुद लीनो ।
बगलामुखी समान रूप धरि दरसन दीनो ॥
मंगल कारक सगुन सुजस बरधक दरसायो ।
मनु अबहीं जै मिली इबिधि आनंद बढ़ायो ॥ ११५ ॥

ऐसी माता ओर भगति राखैं जे नाहीं ।
धरैं नहीं सब काल तासु मंगल मन माहीं ॥
संकटहू लखि नहीं देह निवछावरि करहीं ।
ते स्वारथी पिसाच घोर नरकन महँ परहीं ॥ ११६ ॥

पै माता के मुकुट तेज के सँग दुखदाई।
परे स्याम थल हाय कौन कारन दरसाई॥
जानि परत बल हीन देस कहँ जो अनुमान्यों।
बहु संकल्प बिकल्प मातु मंगल हित आन्यों॥ ११७॥

तासों लहि मम पाप मातु मन भयो मलीनो।
यहि कारन ह्वै गयो मुकुट कछु तेजस हीनो॥
पै कादरता भाव नहीं मन मैं छिन धार्‍यों।
तुरत ईस कहँ ध्याय धरम की ओर निहार्‍यों॥ ११८॥

निरबल मातुहि भाषि छमा माग्यों पुनि नाहीं।
याही हित परि गई मुकुट मैं कछु परछाहीं॥
करौ मातु अपराध छमा निज बालक केरो।
मन मैं राखौ सदा एकरस नेह घनेरो॥ ११९॥

हे माता मम दोष कबौ चित मैं जनि धारौ।
मो अवगुन जनि लखो आपनी ओर निहारौ॥
यहि बिधि करि मन सांत भूप निसि सेस निहारी।
लगो करन रन हेत चावसों चारु तयारी॥ १२०॥

(पुनरपि तरंग)

दोहा।

ग्राम खटोली युद्ध मैं रिपु सेना बिचलाय।
यहि तरंग मैं भाव नृप दियो बिमल जस छाय॥ १॥

मरहट्टा।

तेहिछन अति भारे बजे नगारे नगर माँझ चहुँ ओर।
भट गन मुद पागे साजन लागे आयुध रनहित घोर॥

साजहु चढ़ि धावहु दुन्द मचावहु मारहु रिपु ललकारि ।
यहि बिधि बच नीके अति प्रिय जीके सुनियत सेन मँझारि ॥२॥
केते भट भारी जंग तयारी करि मातन ढिग जाय ।
निज सीस नवावैं आसिष पावैं जै कारक जस दाय ॥
बहु देवन ध्यावैं भक्ति बढ़ावैं मांगैं यह बरदान ।
पग परै न पाछे रनमहि आछे चाहै निकसै प्रान ॥ ३ ॥
केतैन लखि साजत रनहित गाजत पूछैं सिसु यह बात ।
हथियार सँवारे अति जव धारे कहाँ पिता तुम जात ? ॥
यहि बिधि सुनि बानी अति मुद आनी कहैं पिता मुख चूमि ।
हम अरि बिचलावन सुजस बढ़ावन जात बचावन भूमि ॥ ४ ॥

मालती सवैया ।

कामिनि सोंकहुँ कंत इकंत महा रन हेत बिदा चलि मांगैं ।
दंपति पूरन प्रेमपगे बिछुरै महँ आजु नहीं दुख पागैं ॥
देस अमंगल नासन को ललनागनहूँ रनसों अनुरागैं ।
देन बिदा निज प्रीतम को अति मोद भरीं हँसि कै गर लागैं ॥५॥
चाव भरे हथियार धरे निकसैं घरसों जब सूर घनेरे ।
साज सजे रनहेत लखैं तब औरनहूँ मग मैं निज नेरे ॥
मीतन को लखतै ललकैं बर बीर लखे मनु सोदर भाई ।
जंग उछाह बढ़ाय प्रमोदित धाय मिलैं तिनसों लपटाई ॥६॥
बीरन बीर बढ़ावत हैं रन को उतसाह भरे मुद भारी ।
चाहत हैं रन मंडल को उड़िजान मनो खग की गति धारी ॥
भाषत एक मलिच्छनको दल देखत हाड़न को भगिजैहै ।
सेन पताकन को लखतै बरु धीरज छांड़ि पछारन खैहै ॥ ७ ॥

मनहरन।

तोपन सों गोला अरिदेहनसों प्रान कहैं
एक रन मंडल मैं साथही निकरिहैं।
गोलन को नामहीं सुनेते वह संगर मैं
हहरि हहरि कै मलिच्छगन मरिहैं॥
युद्ध की थलीमैं आजु पीछेते प्रचंड तोप
घोर घन गरज समान रव भरिहैं॥
हाड़न के प्रबल प्रताप सों झरसि बहु
रोस के अनल पहिले ही अरि जरिहैं॥ ८॥
मीतनसों भाषत अपर वीर आजुतव
असिको प्रचंड रूप औरई लखात है।
देखिकै प्रताप जासु जगत उजास कर
खास कर भासकर हूलैा दबि जात है॥
तेगको किरन गन चलत गगन दिसि
बैरिन को माल जिन्हैं देखि बिललात है।
साथ तिनहीं के अरि प्रानन को जाल
अबहींसों सूर मंडल को बेधत लखात है॥ ९॥
खरग दुधारको दिवाकर प्रताप सब
अरिन के चख चकचौंध उपजाइ है।
म्यान उदयाचलसों निकसि मलिच्छन को
अंधकार बल पल माहिँ बिचलाइ है॥
कर मैं गगन मैं अखिल रिपुदल मैं
सकल थल माहिँ आजु उदित लखाइहै।

ह्वैकरि अनल अरिमंडल अखंड तासु
प्रबल घमंड यह देखतै जराइ है ॥ १० ॥
कोऊ कहै नागसो लखात करबाल बर
म्यानसों जबहिँ रन माहिँ निकसत है ।
कोऊ कहै सूर के समान है खरग जाहि
देखि सूर मुखज्यों कमल बिकसत है ॥
कोऊ कहै सोहै जमदंडसों प्रचंड यह
करषत रहै सदा प्रानिन के प्रान को ।
भाषत अपर असि चंचला अपर जाहि
लखे मुँदिजात चख कादर के मानको ॥ ११ ॥
एकन को एक लखि जोमको दुगुनकरि
बैरिन बिदारन समोद बलकत हैं ।
अपर बिलोकि बीरगन को उछाह चित
चाह धरिबेस रन मदसों छकत हैं ॥
पाये बड़ भागसों समरदिन आजु मनु
याबिधि उमंगसों सुभट ललकत हैं ।
अरि बिचलावनको छिन स्वाति बुंद सम
चातिक समान सूर सिगरे तकत हैं ॥ १२ ॥

दोहा ।

यहि बिधि रन मदसों भरे पूरित परम उछाह ।
भूप द्वार पर जातभे बर भट दीरघ बाह ॥ १३ ॥
उत भुवाल रन साज सजि पटरानी ढिग जाय ।
भयो बिदा माँगत समुद समर हेतु ललचाय ॥ १४ ॥

कलहंस।

लखिभूप रूप रन साजहि साजे।
जेहि देखि कोटि मन मन्मथ लाजे॥
पटरानि मोद अतिही मनपायो।
रस बीर रूप धरिकै मनु आयो॥ १५॥

चौपाई।

बिकसित पंकज सरिस बिराजै।
भूप बदन सुखमा अति साजै॥
तामहँ कछु लखि परत ललाई।
मनु सरोज महँ रबि कर छाई॥ १६॥

सुंडा दंड सरिस भुज दंडा।
करैं जौन अरिगन मद खंडा॥
तिन्हैं लखे रानी मुद छाई।
नैन एक टक रही लगाई॥ १७॥

पियहि समर हित जात बिचारी।
गुनि बिलंब महँ अनुचित भारी॥
सकुच सहित आनँद अति आनी।
बोली समै सरिस प्रिय बानी॥ १८॥

जाहु नाथ अरिदल बिचलावन।
राखि स्वदेसहि सुजस कमावन।
रिपुन जीति गुरुता बड़ि पावहु।
बहुरि चंद सम बदन दिखावहु॥ १९॥

अबसों बिजयी पति की रानी ।
कहवैहौ जग मैं जस खानी ॥
यह सुनि भूप महा मुद पायो ।
हँसि रानी कहँ कंठ लगायो ॥ २० ॥

दोहा ।

तुम ठकुरायनि हौ सही लियो सुजसु जग राखि ।
काहि चुंबन करि भो बिदा धन्य धन्य नृप भाषि ॥ २१ ॥

चामर ।

मातु के समीप फेरि चाव सों महा पगो ।
मांगिबे बिदा भुवाल जाय पायँ सों लगो ॥
देखि कै सपूत को हुलास जंग सों महा ।
जानिकै सुबीर ताहि मातु मोद को लहा ॥ २२ ॥

ब्रह्म रूपक ।

राज देइ पाट देइ मान देति है बिसाल ।
अन्न धन्न देइ त्यों करै सदा महा निहाल ॥
मोहुसों बिसेष तोन जन्म भूमिको बिचारु ।
ताहि रच्छिबे सपूत तू सदा हथ्यारु धारु ॥ २३ ॥

बसंततिलका ।

तो देखि साज रन हेत उछाह पूरो ।
भो आजु मोहिँ परिपूरन तोष रूरो ॥
नौ मास तोहिँ जब पेट मँझार धारयौं ।
तो बीर होनहित युक्ति सबै बिचारयौं ॥ २४ ॥

तेरो पिता प्रबल युद्धन को पधारो।
ताके चरित्र चित मैं तव हेत धारो॥
बाँचौं अनेक वर बीरन की कहानी।
पूजौं सदा सकल देवि प्रभाव सानी॥ २५॥

चंद्रमाला।

सो श्रम आसपूरनी माता कियो सफल यहि काला।
जो तुम्हरे चित जंग भूमि हित भयो उछाह बिसाला॥
यहि उर के पय पान किये की सदा लाज सुत राखौ।
तिन समान गुनि कै रिपु मंडल मर्दि गर्द करि नाखौ॥ २६॥

घावन पै सहि घाव नेकु नहिँ रन महिसों मुँह मोड़ौ।
मुँह मुरकाये बिना अरिन मैं एक न जीवत छोड़ौ॥
रिपु छत मानत फूल सरिस निज पूजित गात बिचारौ।
अरि बल बढ़तहु देखि समर मैं सिंह सरिस ललकारौ॥ १७॥

चौबोला।

सुतको मस्तक चूमि चावसों मातु बिदा यह भाषि दियो।
जाहु करौ संचित जस रनमैं जिमि अबलौं पुरिखान कियो॥
यहि प्रकार लहि बिदा मातु सों भावसिंह मन मोद भर्यो।
चल्यो समर हित इमि आनंदित मनौ पायँ रिपु आनि पर्यो॥२८॥

नवपदी।

तबलौं पाई खबरि भुवाल। आये द्वार बीर बिकराल॥
सकुन समान मानि यह बात। पहुँच्यो तहाँ भूप अवदात॥२९॥

प्रभ्भ्भटिका ।

लखि भूमिपाल कहँ सकल बीर ।
चित लहोमाद अतिही गँभीर ॥
तब स्रौन सुखद जैधुनि रसाल ।
तिन पूरि गगन लौं दिय बिसाल ॥ ३० ॥

सोरठा ।

तेहि अवसर बैताल समै जानि चित चाव धरि ।
पढ़े छंद अरि साल स्रौन सुखद उतसाह कर ॥ ३१ ॥

मनहरन ।

जीति अरि लेत नित पारथ समान तुम
भीषम समान पुरुषारथ करत हौ ।
करनको दान औ कृपान मैं लजाय देत
बिसद पिनाकी सम धनुष धरतहौ ॥
दीन प्रति पाल भावसिंह नरपाल मनि
स्वारथ के हेत नहिँ रनमैं लरतहौ ।
धारि भुज दंडन पै धरम दुवार आजु
हरि के समान भार भूमि को हरतहौ ॥ ३२ ॥

अलसा सवैया ।

जीतन संगर मैं अरि जालन आनन माहिँ बसी ललकार है ।
दीननके हित दच्छिन बाहु बनी सुखदा सुरपादप डार है ॥
भाव मृगाधिप आजु सही बसुधातलपै जस को अवतार है ।
है भुवपाल तुही जगमैं भुज दंडन पै तव भूतल भार है ॥ ३३ ॥

किरीटी सवैया ।

जीति लहौ नित सूरन सों भुज दंडनको जगमैं जस छावहु ।
तोपन सों करि तंग दिली दल दामिनि लौं असिको चमकावहु ॥
भाव मृगाधिप संगरमैं मृगसे रिपु जूहनको बिचलावहु ।
कीरति चन्द समान बढ़ाय प्रताप दिवाकर लौं दरसावहु ॥३४॥

मनहरन ।

जीतन को सूरन सपूरन अरिन कहँ
चूरन करन भुज दंड फरको करैं ।
बाहिबे मैं परम कराल करवाल रिपु
सालन को बखतर करी करको करैं ॥
भाव नरपाल तव सिंह सी झपट गुनि
काल ह्वै बिहालअरि जाल धरको करैं ।
तोहि लहि कलिमैं कलपतरु दीननके
दोख दुख दारिद समूह सरको करैं ॥ ३५ ॥

मालती सवैया ।

जीति दिली दल संगर में झट खंडित मान करौ अरि केरो ।
कीरति धौल महीतल पूरि भरौ दलमैं उतसाह घनेरो ॥
औसि मलिच्छन हाड़नपै चढ़ि धावन को अब स्वाद चखाई ।
देहु इन्हैं रनमंडलमैं समसेरन के बल धूरि मिलाई ॥ ३६ ॥

दोहा ।

सुनत छंद कबिराजके सकल सूर हरषाय ।
लगे कहन इमि चावसों समर हेत ललचाय ॥ ३७ ॥

नराच ।

प्रचंड शत्रु सैन खंड खंड जंग में करैं ।
महाकराल धोप हाथ काल सी जबै धरैं ॥
भुवालके प्रतापसों सदैव सिंह से लरैं ।
स्वदेसको उदंड कै घमंड बैरि को हरैं ॥ ३८ ॥

विशेषक ।

यों कवि के अरु सूरन के सुनि बोल भले ।
देखि सबै भट जूहन को रन रंग रले ॥
बैनन सों तिनको सतकार महीप कियो ।
फेरि तहाँ दल नाथन को ढिग बोलि लियो ॥ ३९ ॥

चंचला ।

यों कह्यो तबै भुवाल व्यूह को बनाव जौन ।
जंग के उमंग सों सचोप चित्त धारि तौन ॥
सेन आपनी सम्हारि ठौर ठौर मैं जमाय ।
देहु सूर मंडली प्रचंड युद्ध को चलाय ॥ ४० ॥

शोभना ।

इमि भूप आयसु पायकै दल नाथ आनँद पूरि ।
भरि चाव सों चित राखिकै दल ठौर ठौरनि भूरि ॥
रन हेत धारि उछाह दीरघ दुंदभीन बजाय ।
किय जङ्ग हेत पयान सूरन संग आनँद छाय ॥ ४१ ॥

जलहरन ।

अरजत दीन लरजत कुंडलीस गरजत
बर सिंधुर चलत लखि दीह दल ।

कहलत कूरम दिगीस दहलत दिग
दंति टहलत पारि जगत मैं खल भल ॥
दान द्विज पावत सुनावत असीस जस
गावत करत नहिं चारन चतुर कल।
पूरत प्रताप भूप अरि बल तूरत पै
दोहिन के चूरत करेजन धरनि तल ॥ ४२ ॥
धावतै अडोल दल बलसों महीतल पै
हीतल अरिंदन के हालत हहरिहैं।
उछलत चलत तुरंगन के मानो अरि
जूथन के आवैं नाग दंसित लहरिहैं ॥
डग मग धरत धरा को धसकत दिग
सिंधुर समान गुरु कुंजर चलत हैं।
धारि कर सांकरि सजोम उलझारि मद
गारि जे पछारि मृगराजन मलत हैं ॥ ४३ ॥

तोटक।

डग सूर सबै इक भाँति धरैं पग साथ उठैं महि साथ परैं।
पग संग परैं छितिपै जबहीं निरघोष उठै तिनसों तबहीं ॥४४॥
मनु चालु बिलोकत मोद भरै छिनहीं छिन जै धुनि भूमि करै।
सब जात सपूत लरै रन मैं यह देस बिचारि किधौं मन मैं ॥४५॥
डगही डग मातु समान गनै पुनि सावस कै बर बैन भनै।
सम भूमि चलैं डगसों सिगरे भट एकहु को डग ना बिगरे ॥४६॥
सब के चित चाव मनो सम है रन चोप न एकहु के कम है।
यहि हेत सबै सम भूमि चलैं डग नेकुन सूरन के पिछलैं ॥४७॥

पद्धटिका ।

दल दीह युद्ध हित जात जानि मग माहिँ लखैं सब लोग आनि ।
युवती अटान चढ़िकै सचाव निरखैं अनूप दल को बनाव ॥४८॥
दल माहिँ डीठिचहुँ ओरफेरि सुत भ्रात पीतमहि आदि हेरि ।
सब पाय परम आनंद गात चितवैं तिनको रनहेत जात ॥४९॥
दल दूरि कढ़ो लखि जुवतिजूह निरखैं पताकगन को बरूह ।
जब नहिँ मसाल आभा लखाय ध्वज अंधकार मधि गे बिलाय ॥५०॥
तब बैठि भौन देवीन पूजि बिनती बिसाल बहु भाँति कूजि ।
बरदान यहै माँगहिँ मनाय प्रिय लोग जीति रन जस बढ़ाय ॥५१॥
फिरि कुशल छेम सों भौन आय चहुँओर देहिँ उतसाह छाय ।
इमि जङ्ग ओर इक टक लगाय तिय रहीं सदन आनंद पाय ॥५२

त्रिभंगी ।

उत बारि मसालन अरिबल सालन देसहि पालन भट भारी ।
आनंद मनावत रिपुदिसि धावत सुजसु बढ़ावत पन धारी ॥
सिगरे भटनायक धर्मसहायक रन सुखदायक मानि महाँ ।
तुरता अति धारे ब्यूह सवाँरे जात चले रनभूमि जहाँ ॥५३॥

रूपमाला ।

भाँति भाँति सजे सबै रन साज सों बर वीर ।
घोर आयुध साजि धारे चारु कौच सरीर ॥
जङ्ग हेत उमंग सों चित चाहिजै अभिराम ।
जात सूर समूह मारग माहिँ तेजस धाम ॥ ५४ ॥
एकहू अस बीर देखि न परै सब दलमाहिँ ।
जङ्ग भारहि गुनै जो भुजदंडपै निजनाहिँ ॥

चारु जाति मसाल की जब परै मुख पर आनि।
कंज सो तब खिलो आनन परै सबको जानि ॥५५॥

झूलना।

बरभूषनन पर परै जोति मसाल की जब आय।
मनि हीर आदिक सों तबै प्रतिबिम्ब चारु लखाय॥
तिनमाहिँ सूरन को कबैा दरसात रूप ललाम।
मनुजाहिँ तिनहूँ माहिँ रन हित चले भट बल धाम ॥५६॥

गजराज झूल दराज सों उत सजे सुखमा आल।
अति घोर घन से घुमड़ि रनहित जात हैं बिकराल॥
सब ओर फेरत सुंड गाजत गाज से बल पूर।
गिरिराज से चहुँओर धावत करन अरि दलचूर ॥५७॥

जब कामदार सु झूलपै परि जाति जोति मसाल।
तब उठै तासों तेज को प्रतिबिम्ब सुखमा आल॥
मनु तेजरासि नछत्र नभ मैं देहिँ आभा छाय।
यहि भाँति सों सुखदानि सोभा झूल की दरसाय ॥५८॥

भुजंगप्रयात।

कहूँ चारु हैादा धरे दंति राजैं मनो मेघपै देवयानै बिराजैं।
लसैं सूर बाँके तहाँ मोद छाये मनैा जंगको देवता दैारि आये ॥५९॥

चामर।

जात हैं कहूँ तुरंग जंग हेत चावसों।
धारि सूर बीर पीठि सोभना बनावसों॥

भूमि छोड़ि ते मनो अकास को उड़े चहैं ।
चंचला समान मेघ सैन में प्रभा लहैं ॥६०॥

महिखरी ।

षट जात दल परचंड निज निज सेनपति के संग मैं ।
रहिपृथक तबहूँ मिले मन में बिसद जंग उमंग मैं ॥
प्रति सैन सों रण रीति गहि सत बीर बर बिलगाय कै ।
यक मील आगे चलैं तहँ षट चारु गोल बनाय कै ॥६१॥
रहि सजग ते चहुँओर सों रिपुसैन आहट लेत हैं ।
अति छोटेहु अरि चीन्ह ताकन माहिँ निज मन देत हैं ॥
पुनि तीनि तीनि सुबीर तेऊ भेजिकै तिहुँ ओर को
हैं रहत लेत सुराग तिहुँ दिसि बैरिदल के छोर को ॥६२
यहि भाँति रहि चैतन्य रन महि ओर सेना जात है ।
अरि जीतिबे को चाव सबके गातमैं उमगात है ॥
मग जात यों परभात को गुनि काल आनँद सों पगे ।
बुझवाय चारु मसाल बर भट फेरि मारग मैं लगे ॥६३॥

दोहा ।

लखत चले परभात को बहु भट बिसद बनाव ।
मढ़ो गगन मंडल सुखद जासु बिसाल प्रभाव ॥६४॥

जैकरी ।

पूरब पच्छिम दिसि अवदात । नभ मैं कछु कालिमा लखात ।
सो क्रम सों बढ़ि ओज बढ़ाय । लीन्हेसि व्योम मंडलहि छाय ॥६५॥
केवल मधिमैं ताल समान । रहो गगन मैं निरमल थान ।
तामें तारागन बिख्यात । फूले कंज समान सोहात ॥६६॥

यहि प्रकार तमको लषि जोर   नासन को बल तासु कठोर।
निजपितु को मंगल अनुमानि   प्रगट भई ऊषा गुनषानि ॥६७॥

तब लाली पूरब दिसि माहिँ   मढ़ी गगन ऊषा पर छाहिँ।
बढ़त गई क्रम ही क्रम तौन   दाबत चली कालिमहि जौन ॥६८॥

जिमि सेनापति जङ्ग मँझारि   धीरज औ दृढ़ता सँग धारि।
अरि देसहि दाबत बल भौन   करत नहीं तुरतासों गौन ॥ ६९ ॥

रोला।

यों नभ पंचम अंस तासु दूनो बस मैं करि।
निज बल पूरन पेखि लालिमा चित साहस धरि॥
बढ़ि कै पंचम अंस और तुरतासों लीन्हों।
तहाँ जाय फिरि चालु मन्द पहिले सम कीन्हों॥ ७० ॥

यहि बर पंचम अंस माहिँ पितु को तन सुन्दर।
देखि कालिमाहीन नील बारिज सोभाधर॥
मनु ऊषा मन माहिँ चाव परिपूरन पायो।
ताही सों झट धाय तहाँ आभा फैलायो॥ ७१ ॥

बढ़ि क्रम ही क्रम फेरि सेस नभ चलि मुद धरिकै।
पूरित मङ्गल कियो तेज पुहुमीतल भरिकै॥
ढाई घटिका पिता गोद ऊषा इमि खेली।
परम चाव सों दियो कालिमा को बल ठेली॥ ७२ ॥

सतरथ पै चलि नहीं तबहुँ तुरता दिखरायो।
सब जग करिकै पुष्ट काज मैं सबहिँ लगायो॥

रवि को पूरब रूप जोति मैं चारु दिखाई ।
सूरज हित मग दियो मनो नभ माहिँ बनाई ॥ ७३ ॥

निरखि प्रेमिका गात सूर आनँद सों पागो ।
तासु अनुग बनि चलन हेत मन मैं अनुरागो ॥
प्राची दिशि कछु ठौर लालिमा तब दृढ़ छायो ।
मनु अनार सत एक ठौर नभ माहि छोड़ायो ॥ ७४ ॥

फिरि क्रम ही क्रम लाल लाल रवि बिंब लखानो ।
ह्वै पूरन पुनि मनो थार सिंदूर सोहानो ॥
चख भ्रामक पै नहीं छिनक निज कर बगरायो ।
लाल रूप धरि मनो चन्द बर गात दिखायो ॥ ७५ ॥

कै प्राची तिय भाल देस बेंदा यह सोहत ।
किधौं गगन को छत्र परम सुन्दर मन मोहत ॥
रहि छिन भरि यों सूर करनि यक साथ बगारयो ।
भागत ऊषहि देखि मनो चञ्चलता धारयो ॥ ७६ ॥

दोहा ।

पै रवि कर धावत निरखि पितु ढिग लाज बढ़ाय ।
अंतर्धान भई तुरत ऊषा गात छिपाय ॥ ७७ ॥

भगी जात ऊषाहि लखी गहन हेत ललचाय ।
भभकि उठीं ज्वालामुखी सम रविकर समुदाय ॥७८॥

कुसुम बिचित्रा ।

तबहूँ ऊषा भगि जब गई, मन दिन राजा के रिस भई ।
लषि ससि तारा चमकत भले, रविकर भेजे तित रिसरले ॥७९॥

मनोरमा।

तिन जाय कियो ससि तारन श्रोहत
इमि ऋक्षन देखि प्रभा अपनी गत।
निज गात दुराय लियो दुख सों भरि
यह कूर कला लखतै अपनी हरि॥ ८०॥

रूपवती।

मन मैं पछिताव लह्यो मनु भारी
यहि हेतु महा समता चित धारी।
किरनै बहु भेजि अनन्द बगारो
तरु जालन को बहु भाँति सँवारो॥ ८१॥
तिन हेम समान धरी बर सोभा
लखि रूप अनूप महा मन लोभा।
तरु मालन की महिमा इमि देखी
निज बास थली अति सुन्दर पेखी॥ ८२॥
खग जालन हूँ श्रुति को सुखदाई
कलराव मढ़्यो बहुधा मुद छाई।
निज पंखन चंचल कै सुख पायो
उड़िकै चहुँ ओर प्रभा बगरायो॥ ८३॥
बहु धेनु चलीं चरिबे मुद पागीं
मनु सूरज को जस गावन लागीं।
सब लोग लगे निज मारग माहीं
कहुँ चोर चकारन को डर नाहीं॥ ८४॥

नगस्वरूपिणी ।

उछाह यों बिसाल पेखि कै प्रभात को नयो ।
भये प्रसन्न बीर चाव चौगुनो हिये छयो ॥
खिले मुखारबिन्द प्रात सूर देखतै मनो ।
रिपून चोर जानि चोप जङ्ग सों भयो घनो ॥ ८५ ॥

सुखदा ।

आभा रवि की परै कौच हथियार पर ।
जोति पुंज तब कढ़ै सैन सों तेज धर ॥
मानो सूरज तेज बढ़ावन मानि मन ।
भेजन जोतिन जात सेन दिवि धारिपन ॥ ८६ ॥

मनहरन ।

भूतल बनावन अकास के सरिसबीर
आयुध नछत्रन समान चमकावहीं ।
लाली जिमि दाबति चलति कालिमा को तिमि
लोपन अरिन को उमङ्ग धरि धावहीं ॥
सूर जिमि करत रहत छबि छीन चन्द
त्योंही दिलीपति को घमंड चूर करिकै ।
मूँदि कै कुमुदिनी समान अरि गन मद
चाहत प्रकासन प्रताप बल भरिकै ॥ ८७ ॥

सुखदा ।

आगे दल के प्रबल तेज चलि जात है
तामैं रिपु बल मथन चाव अधिकात है ।

ताही सों कढ़ि मनो सजग आगे चलै
चाहत छिन मैं शत्रु सैन सब दल मलै ॥ ८८ ॥
कैधौं रिपु चख चकाचौंध लावन प्रबल
जात जोति अति बेगवंत जहँ बैरि दल।
सूरन के मुख लसैं लाल रन चाव धरि
प्रात सूर कर जाहिँ लाल तिन पाहिँ परि ॥ ८९ ॥

मालिनी।

जगमग मुख सोभा लालिमा और धारै।
जब रबिकर ऐसे मेल तासों पसारै ॥
रबि महि ढिग जौलौं थान राख्यो सोहानो।
तब लगि सब छाया जूह भारी लखानो ॥ ९० ॥
पर जिमि जिमि ऊँचो सूर भो ब्योम माहीं।
तिमि तिमि तन छाहीं को रहो दीह नाहीं ॥
मनु जगत बड़ाई सूर भारी जु पाई।
मद भरि सबही की चारुताई घटाई ॥ ९१ ॥

पद्मावती।

बहु ध्वज बर ऊँचे ब्योम पहुँचे सेन सुजस मनु मिलि गावैं।
तिनकी परछाहीं छिन थिर नाहीं दल संचालन सँग धावैं ॥
हिलि हिलि महि पाहीं तै परछाहीं लिखैं मनो नृप जस भारी।
नभ देव मनाई खबरिन लाई किधौं कहैं छिति पन धारी ॥ ९२ ॥

त्रिभंगी।

जिमि जिमि दिन राऊ अधिक प्रभाऊ बढ़ि अकास में प्रगट कियो।
तिमि तिमि बल धारी तेज बगारी सबही को हठि कष्ट दियो ॥

इत भूमि कँपावत लखि दल धावत सघन धूरि उड़ि ब्योम चली ।
अति घाम घनेरो लखि रबि केरो कीन्ह मनो तेहि छाँह भली ॥९३॥

तारक ।

अभिमान किधैां रबि को महि देखी ।
मुख धूरि मल्यो मन में तेहि तेखी ॥
रबि तेज किधैां दुख दानि बिचारी ।
तेहि मंद कियो पुहुमी पनधारी ॥ ९४ ॥

लखि भूपति को परताप लजाई ।
लिय मूँदि किधैां मुख श्री दिन राई ॥
दिन में कछु बीरन को दुख जानी ।
मनु साँझ कियो जगती अनुमानी ॥ ९५ ॥

निज सूरन को उतसाह निहारी ।
महि मोद लह्यो मन में अति भारी ॥
तेहि कारन धारि उमंग महाना ।
बढ़ि पूरि गई नभ लैां सुख दाना ॥९६॥

बर बीरन को उपजो दल नीको ।
तब क्यों नहिँ मान बढ़ै जगती को ॥
यह बात किधैां पुहुमी मन लाई ।
बढ़ि छाय दियो नभ लैां ठकुराई ॥ ९७ ॥

लखि योधन को रन हेत पयानो ।
महि संगर नीति मनो मन आनो ॥

उठि कै यहि लागि अकासहि जाई।
थल बैरिन को चितवै चित लाई ॥ ९८ ॥

मनहरन।

धोरवा समान धूरि धावति दसहु दिसि
पूरित गगन लौं किये हैं पन धरि कै।
बादर प्रताप के उठन घन घोर चहैं
तासु मनु पूरब सरूप बल भरि कै ॥
व्यापि अबही सों महि व्योम लौं गयो है बेस
हाड़न के कोप जलनिधि सों निकरि कै।
चाहत बहावन सकल दल बैरिन को
गाज सम जौन हथियार झरि करि कै ॥ ९९ ॥
धावत प्रबल बल धारि कै सकल दल
तासु परि पूरन प्रताप जग छायो है।
उदित बिलोकि जेहि कोटि मारतंड सम
देखि निज हीनता दिवाकर लजायो है ॥
मानि जग हेत बिनु काज निज तेज ताहि
गोपन बिचार दिन कर मन लायो है।
ताही सों प्रचंड धूरि धार की सहाय लहि
जुगुनू समान रूप आपनो बनायो है ॥ १०० ॥
तारन के सहित छपाकर की छीनि छबि
भूप तेज रबि नहिँ अजस बगारयो है।
जामिनि की जगत बिदित सुघराई जौन
लोपित न ताहि करिबे में चित धारयो है ॥

तासों घन घटा सम पूरि भूरि धूरि नभ
सूरज को सकल प्रताप तेहि टारयो है।
चन्द कौमुदी सी सेत कीरति सकल दिसि
धारि कै अनोखी रीति जग में पसारयो है ॥ १०१ ॥

छादित भई है नभ माँहि धूरि धार चारु
दूसरो अकास सो बनाय जेहि दयो है।
बिसद बिराजैं तुंग ध्वजन की पाँति मनु
तारन को सोहत समूह नभ नयो है ॥
अरिगन साल भावसिंह नरपाल तासु
उदित कलाधर समान छत्र भयो है।
जासु परकास सों अखिल रिपु-मंडल को
तेज दिन दीपक समान बनि गयो है ॥ १०२ ॥

पूरत दिगंत लौं प्रताप यहि भाँति मग
भूप दल दारुन समर हित जात है।
पेखि सज धज ठकुरायसि कि जासु मन
धारि कै उछाह सबही को हरषात है ॥
पाये हैं महीप सों द्विजन दान माहिँ ग्राम
तिनके समीप निकसति जब सैन है।
पावत असीस महि देवन सों भूप तब
जौन तिहुँ काल जग मंगल को ऐन है ॥ १०३ ॥

पेखि निज नाथहि समर हित जात धरि
मीनन अनेक मग धीमर खरे भये।

संग सुरभी को घृत लेइ तिमि गोपन के
जूह नरपालहि जोहारन सबै गये ॥
मारग मैं चार गन मिलि दल नाथन को
बैरिन के चाल की खबरि सब देत हैं ।
कीरति बढ़ावन बचावन जनम भूमि
जात यहि भाँति सूर सिगरे सचेत हैं ॥ १०४ ॥

ठौर ठौर करत बिराम समुचित काल
धौंसनि धुकार सों हलावत गगन को ।
मंडित उछाह रन पंडित सकल दल
खंडित करन नियरानो रिपु गन को ॥
देखत मलिच्छ दल दीरघ ध्वजान तहँ
सूरन के उमगो अतुल रन चाव है ।
मंगल बरन अवलोकि मुख बीरन के
संगर को कियो दल नाथन बनाव है ॥ १०५ ॥

गाज के समान तब गरजि गरजि तोप
अरिन के हिरदै हलावन के चोप सों ।
परम प्रचंड बल धारि दुसमन दिसि
पूरित कियो है नभ गोलन के ओपसों ॥
उमड़ि भुवाल भावसिंह को प्रताप सिंधु
बोरन चहत मनु बैरिन को जाल है ।
गोलन के तेज मिसि छादित करत नभ
तासु लहरिन को समूह विकराल है ॥ १०६ ॥

तोपन सों कढ़ि गुरु गोलन के जूह करि
दरसित चालु धनु सरिस अकास मैं ।
परम भयङ्कर मचाय रोर तेज रासि
गिरैं जेहि काल आनि बैरि दल खास मैं ॥
होहिँ सत खंड तब परसि पुहुमि पुनि
उड़ि प्रति खंड बल धारि अरि नास मैं ।
मारि मारि करें बिन प्रान बर बीरन को
चहुँ दिसि नाचि गनिका से रन रास मैं ॥ १०७ ॥

तोपन को रोर घोर पूरित गगन भयो
परलै पयोद जुरि मानो गरजत हैं ।
सुनत अवाज सत गाज के सरिस तौन
हहरि मलिच्छन के हिये लरजत हैं ॥
उलका सरिस चमकत लखि गोलन को
भभरि भगात गज बाजि बहु डरि कै ।
चिक्करत छोड़त पुरीष मरदत भट
दूरि कढ़ि जाहिँ रनभूमि सों निकरि कै ॥ १०८ ॥

मोहन ।

हाड़न इमि गोला बरसाये, सैन मलिच्छन में सब छाये ।
एकहु गोला बिफल न होई, होहिँ बिकल अरि भट यह जोई ॥१०९

अरिल्ल ।

बैरिनहूँ करि कोप महामन, कियो तबै जोजित निज तोपन ।
तजे अमित गोला रिस सों भरि, चाहि देन हाड़न भस्मित करि ॥११०॥

हाकलिका ।

पै बहु गोला बिनु फल भये, चूकि निसानो इत उत गये ।
हाड़न के गोला उत घने, बीर असंख्य समर थल हने ॥ १११ ॥

सिंहावलोकित ।

इमि रन तेहि थर बिकराल भयो
परलै दिन दुहु दिसि पूरि गयो ।
बहु भट गन आरत नाद करैं
गुरु गोलन सन सब गात जरैं ॥ ११२ ॥

रूप क्रांता ।

प्रचंड तोप माल सों कढ़ी महान धूम धार ।
दसौ दिसा अकास मैं सुमेघसी मढ़ी अपार ॥
कढ़ी हुती रिसाग्नि सों बिचारि तौन घोर भाव ।
न भूमि सींचिबे बिचार मैं धरयो कछूक चाव ॥ ११३ ॥

काव्य ।

बरु गोलन बरसाय पुहुमि पर आपद छायो ।
पितु को दारुन रूप मनो जगको दरसायो ॥
तोपन सों कढ़ि चलैं लाल गोला जब भारी ।
चमकैं तब चंचला मनो घन मैं पन धारी ॥ ११४ ॥
सौदामिनि सम लाल लाल गोला पुनि धाई ।
देहिँ समर थल माहिँ अमित रिपु गन झरसाई ॥
गोलन सों अँग अंग सुभट गज बाजिन केरे ।
कटि कटि उड़ि उड़ि ब्योम परैं महिपै चहुँ फेरे ॥ ११५ ॥

महा भयानक दृश्य देखि यह कादर कम्पहिँ ।
हहरि हहरि हिय माहिँ नैन हाथन सों झम्पहिँ ॥
दोय पहर यहि भाँति जंग दारुन तहँ माच्यो ।
धरिकै रूप कराल काल दुहुँ दल मैं नाच्यो ॥ ११६ ॥

गुरु तोपन के जूह मुग़ुल दल के सब टूटे ।
गोपित थानन माहिँ धरे गोला बहु फूटे ॥
भगन भयो उतसाह तोप सों रही न आसा ।
लघु तोपन बल कियो इबिधि हाड़न परकासा ॥ ११७ ॥

जानि परयो लरि सकै तोप नहिँ रन पनधारी ।
करै जूझ बरु एक सूर संगर मैं भारी ॥
गुरु तोपन हूँ धरे भयो अरि को मुँह कारो ।
लघु तोपन करि दियो भाव नृप जस उजियारो ॥ ११८ ॥

दोहा ।

मुग़ुलन को बल भो सिथिल दगै एक नहिँ तोप ।
गरजन तरजन वीरता भईं मनो सब लोप ॥ ११९ ॥

परी मरीसी अरिन मैं रहे न बीर सचेत ।
भये त्यागि चंचल पनो मनो मौन यहि हेत ॥ १२० ॥

कलहंस ।

यह देखि हाल अरीन को मुद धारिकै ।
बढ़ि जान संकट हीन चित्त बिचारि कै ॥
दलनाथ साहस पूरि सेन सम्हारि कै ।
बहु भाँति सूर समूह की मनुहारि कै ॥ १२१ ॥

अनुकूलतामरस।

गंजन को अरि कटक बिसाला।
भंजन मुग़ुल मान बिकराला।
रंजन हेत स्वदेस महाना।
घोर समर लगि कियो पयाना॥ १२२॥

झूलना।

कछु काल चलि प्रति सैन के जुग भाग चारु बनाय।
लखि दूरि गोली मारु लों अरि युद्ध हित ललचाय॥
बहु मोरचे रचि जंग हेत उमंग धारि महान।
भट लगे बरषन बज्र से बिकराल गोली बान॥ १२३॥

जब एक भाग सजोम बरषै अस्त्र जाल कराल।
तब धाय आगे बढ़ै दूजो सेन भाग बिसाल॥
कछु दूरि बढ़िकै बिरचि रच्छक मोरचे मन लाय।
वह लगै बरषन अस्त्र अरि पहँ सुभद औसर पाय॥ १२४॥

तब भाग पहिलो छोड़ि लरिबो सविधि आगे जाय।
परि भूमि पै रचि मोरचे पुनि हनै बान सचाय॥
यहि भाँति आवत देखि बूँदी राज सैन सडैार।
जब धारि कोपित गात बरषन लगे आयुध गैार॥ १२५॥

धरि जंग रीति बिसाल तिनसों सेन गात बचाय।
बहु तजे गोली बान हाड़न जीति मैं मन लाय॥
जब धरि भुसुंडी हाथ दागन लगैं गोली जाल।
बनि जाय तब दलमाहिँ पावक रेखसी बिकराल॥ १२६॥

वह रेख टूटै नहीँ अरिगन करैं कोटि उपाय ।
मरि गिरै जो भट एक दूजो तहाँ पहुँचै धाय ॥
भट गिरे दूजे बढ़े मैं लषि परै अंतर नाहिँ ।
झट चंचला सम सूर खाली ठौर पै बढ़ि जाहिँ ॥ १२७ ॥

तहँ परै लखि सिखि भित्तिसी दल सामुहें अति घोर ।
सब कटक धावत तासु पीछे युद्ध हित बरजोर ॥
मनु बाँधि पावक पुंज को बर ब्यूह भाव भुवाल ।
बढ़ि चलो आवत भस्म करिबे शत्रु सेन कराल ॥ १२८ ॥

जब दगैं बर बंदूक गाजत मेघसी तेहि ठौर ।
तब निकसि पावक ज्वाल तिनसों चलै अरिकी ओर ॥
मनु धारि रूप कराल दारुन बीर गन को कोप ।
रिपु ओर धावत तेज तिनको गुनत करिबो लोप ॥ १२९ ॥

अगयारि आयुध मालसों कढ़ि धूम धार महान ।
घन घोरसी तहँ धूमि लीन्हों छाय सब असमान ॥
तेहि माहिँ पावक रेख भीषम लसैं थिर यहि भाँति ।
मनु मेघसों थिर कढ़ी नूतन चंचला की पाँति ॥ १३० ॥

जल धार ठौर कराल गोली बान बरषा पीन ।
जुरि करत हैं ते मेघ अरिपै रीति धारि नवीन ॥
मनु मेघनाद समान रन मैं धूम की धरि ओट ।
बर बीर हाड़ा देस के हित करैं अरि पै चोट ॥ १३१ ॥

रिपु आयुधन सों बीर गन के कटैं सिर भुज गात ।
नृप भाव दल मैं तऊ साहस चौगुनो उमगात ॥

तन भयेहु छतसों छीन सूरन धारि जंग उमंग।
नहिँ तज्यो लरिबो गुनत अरि की करन गरिमा भंग ॥१३२॥

दोहा।

कटैँ हटैँ नहिँ युद्ध सों गिरैं लरैं उठि फेरि।
करैँ निछावरि सूरतन जनमभूमि तन हेरि ॥ १३३ ॥
जनमभूमि गुनि जननि तन स्वारथ करिबो मानि।
धावहिँ भट उनमत्त सम मरिबोई सुभ जानि ॥ १३४ ॥
मरत मरत जौलौं गिरैं तबहूँलौं गुनि धम्मे।
दागि भुसुंडी चावसों बेधि देहिँ अरि मम्मे ॥ १३५ ॥
बाँधि पाग सों घाव पुनि करमैं धारि बँदूक।
मारि मारि अरि मुगुल दल उर उपजावैं हूक ॥ १३६ ॥
उठि न सकैं जब घावसों तऊ भुसुंडी धारि।
बैठै कै महिपै परे करैं शत्रु सों रारि ॥ १३७ ॥

चंचरी।

देखि यों सुबिसाल साहस सैनिकन को जंग मैं।
बीरगन को कह्यो साबस भाव भूप उमंग मैं ॥
उच्च जै जैकार धुनि तब मची सैन महान मैं।
व्यापिदिविलौं दियो संकट पूरि जेहि अरि मान मैं ॥ १३८॥

सुगीत।

बज्र से जब घोर आयुध परैं अरि पै जाय।
देहिँ बीर असंख्य ते तब काटि भूमि गिराय ॥
चंचला सी देखि गोली तहाँ धावत घोर।
बाजिगज चिक्करत भाजत पीठि दै रन ओर ॥ १३९ ॥

एक दिसि लखि घोर बरषा आयुधन की चंड ।
तकैं जौलौं श्रौर थल अरि धारि भीति उदंड ॥
लखैं तौलौं मढ़ी तहँ बिकराल गोली बान ।
नहीं बैरिन लह्यो रन मैं ठौर दायक त्रान ॥ १४० ॥

देखि आवत सामुहे बिकराल पावक धार ।
एक छिनहु रुकै जो नहिँ भरी तेज अपार ॥
भये साहसहीन गौरवहीन अरि बलहीन ।
खीन मन छत जालपूरित सबहिँ बिधि अति दीन ॥ १४१ ॥

मारु नहिँ सहि सके बूँदी राज की दिन एक ।
छाँड़ि सब अभिमान आरत भये तजि रन टेक ॥
अग्नि वर्षा चंड सों जरि गये अरि के गात ।
किते भटबर सरन सों तहँ परे बेधित गात ॥ १४२ ॥

चहूँ दिसि सननात गोली चलैं रन महि माहिँ ।
भटन के कहुँ कान ढिगसों निकसितेई जाहि ॥
उड़ैं बान सपच्छ कुहु कुहु करत चारों ओर ।
लागि तन मैं प्रान पीवैं भटन के बरजोर ॥ १४३ ॥

चंड सर तन लागि दूजी ओर कहँ कढ़ि जाहिँ ।
रक्त बिंदु न लगै यक बस बेग पंखन माहिँ ॥
पंख जुत लखि नाग से बहु उड़त बान कराल ।
लेहिँ बहुभट जंगथल मैं मूँदि नैन उताल ॥ १४४ ॥

लगै छोटो घाव जेहि थर परै गोली आय ।
बढ़ै छत पुनि यथा गोली धसत तन में जाय ॥

धारिगोली रूप हाड़ा कोप मनु बरिबंड।
पान रन मैं करै अरि को रुधिर गहि गति चंड॥ १४५॥

चन्द्रमाला।

यह दुरदसा देखि जोधन की गौर भूप बिलखायो।
करन हेत चैतन्य सकल दल रन थल तबल बजायो॥
कह्यो फेरि है सूर सपूतो कत रन हिम्मति हारी।
यहि मूठी भरि अरि सेना को कत नहिँ देत बिडारी॥ १४६॥
बड़े बड़े रनजीति नाम लहि जस खोवत समुदाई।
कहा लखैहो बदन साहि ढिग अब दिल्ली मैं जाई॥
जनि कारिख मुख मैं पोतवावो कादरपन सब त्यागौ।
गलगंजन हित जीति अरिन कहँ सूर सिंह सम जागौ॥१४७॥
सुनि ये बचन गौर नरपति के बीरन साहस धारयो।
करन हेत रन घोर सोर करि धनु बन्दूक सम्हारयो॥
पूरन चन्द्र बिलोकि जलधि मैं ज्यों बेला बढ़ि आवै।
त्यों बूँदी बल देखि मुगुल दल रनहित सनमुख धावै॥१४८॥
हने हनि बिसद बान गोलिन सों दुहुँ दल रोस बढ़ाई।
चहैं पराक्रम प्रगटि रिपुन कहँ देहिँ अबहिँ बिचलाई॥
निकसि धूम पुनि बर बंदूकनि पूरि गयो नभमाहीं।
तड़िता सम प्रकास गोलिन को लखि दिन-मनि सकुचाहीं॥१४९॥
गंधक पूरित बर बरूद को गंधदसैा दिसि फैलो।
परेहु आपदा भयो भटन को नेकु नहीं मुख मैलो॥
सहि सहि घाय तीर गोलिन के नेकु न हिम्मति हारैं।
करि करि भृकुटी बंक बीरगन आगेहि बढ़न बिचारैं॥१५०॥

किंसुक सुमन सरिस छत गन सों छादित गात बिराजैं।
औरहु बढ़त बदन लाली लषि तिन सों भट गन गाजैं॥
होय मारु यों गुरु गोलिन सों मनु घन युग बिरझाने।
बढ़ि बढ़ि हनैं दुहूँ दिसि कोपित दृढ़ पखान मन माने॥१५१॥
जग सुख दायक सांत रूप निजकै पावक बिसरायो।
अति जाज्वल्य प्रलै सूरज सम रन मैं रूप दिखायो॥
नहि दरसात ठौर अस जहँ नहिँ पूरि रहे बरवाना।
गोलिनहूँ को घाव किन्तु नहिँ सूरन लागत जाना॥ १५२॥
ह्वै रन मैं उनमत्त सूर गन तन को घाव न जानैं।
जननी जनमभूमि पाहन हित मरिबे में सुख मानैं॥
धावत रिपु-दल ओर बीर बहु लहि गोलिन की चोटैं।
ह्वै असमर्थ समर त्यागन के दुख सों सिर धुनि लोटैं॥ १५३॥
मन थिर करि निज घाव बाँधि फिरि बन्दूकन छतियावैं।
परे परे अरि ओर चावसों गोलिन की झरि लावैं॥
थके पथिक जन सम घायल भट किते भूमि पै राजैं।
तेऊ दबत बिलोकि अरिन कहँ समर सिंह सम गाजैं॥ १५४॥
यहि प्रकार कछु काल समर थल दुहु दल के भट रूरे।
करत रहे रन घोर सुजै हित अति बल विक्रम पूरे॥
दुहुँ दिसि ह्वै रन-मत्त भटन पुनि त्यागि मोरचन दीन्हो।
अरि समीप गुनिकै तरवारिन बाहन को पन लीन्हो॥ १५५॥

दोहा।

त्यागि त्यागि गोली सरन तब जोधन पन धारि।
ढाल सहित असि कर धरी अरिबल मथन बिचारि॥ १५६॥

लै कर मैं बर सैहथी कोऊ नेजा धारि ॥
संगीनन धरि बहु सुभट धाये बिरचन रारि ॥ १५७ ॥
त्यागि त्यागि मुरचान इमि धाये भट करि हूह ॥
मानहु लूटन पथिक बहु जाहिँ अभीर बरूह ॥ १५८ ॥
रन मदसों उनमत्त भट जीवन लोभ भुलाय ।
धाये रन मल्ल पुन्थ मनु लूटन हित ललचाय ॥ १५९ ॥
भटभेरा लखि बर भटन संगीनन कर धारि ।
नाथि नाथि पर वीर बर दिये अमित महि डारि ॥ १६० ॥

मन हरन ।

सेत चन्द करके समान ही सँगीन तेहि
सूरन को सोनित सजोम जब पियो है ।
छीनि उतसाह अरि मंडल सों तबै निज
लाल लाल रूप बिकराल करि लियो है ॥
कैधों करि पान रन मधु कालिका के सम
दारुन भुसुंडिन प्रचंड तन कियो है ।
जंग मैं सँगीन मिसि चाखन मुगुल दल
लाल लाल रसना पसारि पुनि दियो है ॥ १६१ ॥
नाथि नाथि दारुन सँगीनन भटन रन
हाड़न अरीन को उछाह तहँ छीनो है ।
धायबे को बाहु को बँदूक को मिलाय बल
प्रबल मुगुल दल खीन करि दीनो है ॥
बज्र सम परिकै सँगीन बखतर जुत
बीरन को ककरी समान काटि जंग मैं ।

ताल के समान लहि गात पर जोधन के
पैरत फिरहिँ मीन सरिस उमंग मैं ॥ १६२ ॥

काव्य।

भोगी रसना सरिस भूमि बिलसों मनु धावैं।
अति प्रचंड संगीन अरिन डसि दुंद मचावैं ॥
बज्र सरिस तरवारि वीर संगर मैं बाहैं।
बन्दूकन पै घालि तिन्हैं जोधा तन पाहैं ॥ १६३ ॥
परि अचूक असि कहूँ कंध पर बीरन केरे।
काटि कवच अरु गात करैं तन के जुग घेरे ॥
करि पैतरे सबेग कहूँ अरि वार बचाई।
घायल सिंह समान बीर बाहैं असि धाई ॥ १६४ ॥
देखि सिरोही चलत कहूँ चंचलता धारैं।
घालि सामुहे ढाल वार तेहि ओट निवारैं ॥
कहुँ तीच्छन तरवारि करन ढालन सह काटी।
काटि काटि अरि बीर देह लोथिन महि पाटी ॥ १६५ ॥
एक वार सों वीर तीनि जोधा कहुँ काटैं।
छुधित सिंह सम गाजि अरिन मृग से गुनि डाटैं ॥
अरि प्रानन के संग म्यान तजिकै असि निकसैं।
ताल सरिस लहि समर भूमि पंकज सी बिकसैं ॥ १६६ ॥
एक वार सों काटि भटन गज बाजि समेता।
भुज बल हाड़ा बीर अरिन डारैं रनखेता ॥
हनि अचूक तरवारि कहूँ करि कुंभ बिदारैं।
काटि तुरीगन प्रबल बीर कहुँ रन महि डारैं ॥ १६७ ॥

माचि चखन मैं चकाचौंध अरिके तरवारी।
खोद सहित सिर काटि देहिँ छिति पै कहुँ डारी॥
चमकि चंचला सरिस घुसैं घन कौचन माहीं।
असि प्रताप ये देखि सैहथी गन सकुचाहीं॥ १६८॥

सनि सोनित सों लाल लाल असि रूप लखानो।
करि मद पान कराल कालिका नाचति मानो॥
जिमिजिमि सोनित पियैं तमकि रन मैं तरवारी।
तिमि तिमि तिनकी प्रबल भूष जागति जनु भारी॥ १६९॥

रन मदसों उनमत्त बीरतन सुधि बिसराई।
बधिबे मैं तल्लीन तमकि बाहैं असिधाई॥
निज पराव को बोध भटन रन मैं बिसरायो।
केवल सज धज पेखि अरिन पै सस्त्र चलायो॥ १७०॥

कहूं सैहथी बाहि बीर अरि गात बिदारैं।
नेजनसों कहुँ नाथि रिपुन रन मैं संहारैं॥
कहूँ अस्त्र सों सस्त्र काटि अरिवार बचावैं।
आयुध खंडन हेरि कहूं जोधा पछितावैं॥ १७१॥

परि ढालन पै कहूँ प्रबल रन मैं तरवारी।
ह्वै खंडित गिरि परैं समरथल पै झनकारी॥
रिपु साहस के साथ चमर छत्रन कहुँ काटी।
काटि पताका ध्वजा देहिँ रन मंडल पाटी॥ १७२॥

चमकि चमकि चहुं ओर चपल नेजा संगीनैं।
अति प्रचंड जम दंड सरिस जोधन रन बीनैं॥

साथहि आयुध बाहि कहू युगरिपु मदमाते ।
बधि दोउन गिरि दुवौ तड़पि महि पै लपटाते ॥ १७३ ॥

बहुभट छत सों पीड़ि सम्हरि अरिपै करि वारा ।
बधि ता कहँ मरि गिरैं बमन करि सोनित धारा ॥
मरत मरत कहुँ बीर झपटि रिपु भट धरि रन मैं ।
काटि दंत सों कंठ प्रान राखैं नहिँ तन मैं ॥ १७४ ॥

आयुध खंडन होत झपटि धरि बैरिन केते ।
नखनि रदनि मुठिकानि लरैं रन मैं जस हेते ॥
काढ़ि रिपुन के नैन कहू अँगुरिन सों लेहीँ ।
काटि रदन सों कंठ डारि महि पै रिपु देहीं ॥ १७५ ॥

धरि दाढ़ी जुत काक पच्छ रिपु बल मथि डारैं ।
दावँ पेंच सह मल्ल युद्ध करि अरि संहारैं ॥
डारि भूमि पै अरिन कंठ पेंड़ीन दबाई ।
महा क्रोध बस देहिँ तिन्हैं जमपुर पहुँचाई ॥ १७६ ॥

पेंड लगावत तरल तुरंगम कहुँ बलवाना ।
हींसत अरि दिसि हलैं तड़पि रन सिंह समाना ॥
करि कुंभन पै टाप घालि गुरु जोम जनावैं ।
तब नेजन सों बीर गजारोहिन बिचलावैं ॥१७७॥

चपल चौकड़ी भरत तुरँग मृग से जब जाहीं ।
बाल चंदसी तबै नाल तिनकी चमकाहीँ ॥
तड़पि गगन मैं तुरी प्रबल रिपु बार बचावैं ।
बहुरि बिजै हित वायु बेग धरि अरि पहँ धावैं ॥ १७८ ॥

सनमुख तुरँग बचाय कहूँ पैदर ह्वै पाछे।
हयारोहि पहँ प्रबल घाव घालैं रन आछे॥
धरि जव मरदैं कहूँ पैदरनि प्रबल तुरंगा।
दसि दंतन सों करैं कबौंअरिको मद भंगा॥ १७९॥
सहि घावन पर घाव नहीं मन करैं मलीना।
धाय धाय जुत चाव करैं बैरी बल खीना॥
अरि दल आवत पेखि अरच्छित निज थल ओरा।
है दल मग मैं आड़ि ताहि बिरचै रन घोरा॥ १८०॥
इमि लहि कै अवकास सेन सज्जित ह्वै धावै।
अनी घनी अरि की न दावँ संगर मैं पावै॥
एक ओर तल्लीन हेरि अरि दल बलवाना।
दूजी दिसि सों धाय तुरँग सेना सबिधाना॥ १८१॥
प्रबल बेग धरि करै अचानक अरि पै वारा।
सावन झरिसी बरसि कठिन अस्त्रन की धारा॥
इमि हय दल छिन माहिँ कटक अरि को बिचलावै।
अथवा जवसों धाय रिपुन के वार बरावै॥ १८२॥

बसंत तिलका।

संग्राम भूरि यहि भाँति प्रचंड माच्यो।
मानो सरूप धरिकै रन काल नाच्यो॥
देख्यो अरीन रन मैं जब जोम धारे।
देखे मिले दल दुवौ सहसा हँकारे॥ १८३॥
धायो सबेग दल दंतिन को कराला।
पूरे दिगंत रवघंटन को बिसाला॥

हे भीमकाय गज कज्जल सैल मानो।
धाये पयोद रन को अथवा प्रमानो ॥ १८४ ॥
धारे सजोम कर सांकरि को घुमावैं।
कै सिंहनाद अरिपै उनमत्त धावैं ॥
देखैं जहाँ प्रबल जूथप जूथ ठाढ़े।
पैठैं तहाँ करि प्रचंड प्रभाव बाढ़े ॥ १८५ ॥
डारैं बिडारि पग सो अरि मींजि मारैं।
कै सुंड कुंडल तिन्है धरि कै पछारैं ॥
धारैं रिपून सहसा कहुँ बेग धारी।
फेकैं तिन्है नभ दिसा गहि जोम भारी ॥ १८६ ॥
मारैं कराल पग ठोकर चाव धारे।
आघात दन्तन करैं पुहुमी पछारे ॥
मर्दैं अरीन सहसा कहुँ धाय आगे।
पारैं प्रलै जहँ पिलैं रन रोस पागे ॥ १८७ ॥

शोभना।

गज देखि आवत सत्रु को कहुँ पीलवान रिसाय।
मद मत्त कुंजर चाव सों लै चलैं ओज बढ़ाय ॥
सहि सीस अंकुस कोप करि गज तुंड पुच्छ उठाय।
उनमत्त धावहिँ मनहु सैल सपच्छ दीरघ काय ॥१८८॥
गजवान भीषम नाद करि करि देत करिन उछाह।
लै बढ़ैं घोर गयन्द अरि बल मथन की गहि चाह ॥
इमि धाय कै दुहुँ ओर सों गज दीह रिस विस्तारि।
बढ़ि देहिँ ठोकर सीस की सिर बीच द्रुत गति धारि ॥ १८९ ॥

पबि पात के सम नाद सो सब ग्रोर पूरत घोर ।
तिमि करैं मैगल धरे बर बल ठेलिबे मैं जोर ॥
भरपूर बल बिस्तारि ठेलैं नाग दोऊ ग्रोर ।
पर हटैं तिल भरि नहीं दोऊ करन भीषम रोर ॥ १९० ॥

रन भूमि भीम गयन्द सहजै खरे से दरसात ।
बल करत जाने जात जब बल गात पै परि जात ॥
उत पीलवान सजोम अति सै घोर रोर मचाय ।
उतसाह दन्तिन देहिँ रन मैं जीति हित उमदाय ॥ १९१ ॥

करि मथित अरि बल भाँति यहि रन माहि ताहि पछारि ।
बलवान मैगल दन्तबल अरि उदर देहिँ बिदारि ॥
कहुँ मानि मन मैं हारि लहि बल-हीन गज अवकास ।
निबुकाय सिर भगि चलै हिय धरि बाचिबे की आस ॥ १९२ ॥

दोहा ।

यहि बिधि सों रन भूमि मैं भो भीषम संग्राम ।
नहीं गौर भट सहि सके हाड़ा बल अभिराम ॥१९३॥

मानि हारि मन मैं बिमन रन उतसाह भुलाय ।
दबत दबत एकत्र सब भये बाम दिसि जाय ॥ १९४ ॥

(अपूर्ण)

इति ।

पुष्पांजलि ।

भाषा-कुसुमावलि ।

पहला पुष्प ।

वर्णविचार * (सं० १९७०) ।

प्रथम साहित्य-सम्मेलन के समय पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, बाबू शारदाचरण मित्र तथा पण्डित केशवदेव शास्त्री ने इसी विषय से मिलते हुए विषयों पर लेख लिखे थे। बाबू साहब ने बङ्गाली होकर भी हिन्दी-लिपि-प्रणाली एवं अक्षरों को भारतवर्ष भर में सर्वश्रेष्ठ बतलाया। आपका यह मत आदरणीय है कि भारत में राष्ट्र-लिपि होने की पात्रता केवल हिन्दी के अक्षरों को है और इसी प्रकार राष्ट्र-भाषा होने की योग्यता भी केवल हिन्दी-भाषा ही रखती है। इसी भाँति मदरास के माननीय पण्डित कृष्ण स्वामी ऐयर का भी मत था कि राष्ट्र-लिपि होने की पात्रता केवल देवनागराक्षरों को है। हिन्दी-भाषा-भाषी देशों के अतिरिक्त बम्बई, गुजरात, पंजाब आदि देशों के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानों ने भी बड़ी गम्भीरता से यही मत प्रकट किया है और आज तक करते

---

*यह लेख भागलपूर के साहित्य-सम्मेलन में पढ़े जाने के लिए लिखा गया है।

हैं । भारतवर्षीय भाषाओं और अक्षरों में यह गरिमा केवल हिन्दी को ही प्राप्त है कि जहाँ वह नहीं भी प्रचलित है, वहाँ तक के विद्वान् एवं दूरदर्शी पुरुष मुक्तकण्ठ से उसकी उपयोगिता को स्वीकार करते हैं और उसके प्रचार के सहायक हैं । ऐसी दशा में यह विचार उठता है कि इसके अक्षरों में और भाषा में कुछ अनमोल गुण अवश्य हैं, जो इसको पण्डित-समाज से आदर दिलाते हैं । आज हमको इस पण्डित-समाज से उन्हीं पर विचार करने एवं उसकी त्रुटियों पर ध्यान दिलाने की आज्ञा मिली है । इस पर किसी विद्वान् पुरुष का विचार करना अधिक युक्ति-संगत था, परन्तु कभी कभी बड़े लोगों की भी बाल-विनोद से चित्त बहलाने की इच्छा होती है । सम्भव है कि इसी विचार से हमें इस विषय पर विचार करने की आज्ञा मिली हो । जो हो, हमें तो आज्ञा पालन करनी ही उचित है ।

उपर्युक्त तीनों लेखकों में से ओझाजी ने हमारे वर्तमान अक्षरों की उत्पत्ति के विषय में अपनी अनमोल सम्मति प्रदान की है और शास्त्रीजी ने उनके स्वरूपों का गुरुमुखी, मराठी और बङ्गाली अक्षरों से मिलान किया है । इन दोनों महाशयों के लेखों से इस बात का भी कुछ कुछ पता लगता है कि कौन कौन से रूप किस किस समय प्रचलित थे और उनसे मिलान करने से भारत के अन्य प्रान्तों के अक्षरों की उत्पत्ति भी जानी जा सकती है ।

वर्णविचार में ध्वनियों और अक्षरों से सम्बन्ध रखनेवाले प्रधान दो विभाग हैं । हम इन दोनों पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे । वर्णों की उपयोगिता में ध्वनि-सम्बन्धी यह उत्तमता होनी चाहिए कि

भाषाओं में प्रचलित सभी प्रकार की ध्वनियों के लिए पृथक् पृथक् अक्षर होने चाहिएं और प्रत्येक ध्वनि के लिए एकही अक्षर होना चाहिए। अक्षरों के रूपों में चार गुणों की प्रधानता मुख्य है, अर्थात् निश्चय, सरलता, सुन्दरता और त्वरा-लेखन-उपयोगिता। अब सोचना चाहिए कि हमारे अक्षर इन विचारों की कसौटी में कहाँ तक खरे उतरते हैं और भारतवर्ष में प्रचलित अन्य अक्षरों से तुलनाजन्य गौरव किनमें अधिक है। इस स्थान पर यह कह देना अधिक आवश्यक है कि यद्यपि इन विचारों में भारतवर्षीय सभी अक्षरों पर सोचना उचित है, तथापि सम्मेलन की आज्ञा है कि यह तुलना विशेषतया केवल उर्दू और रोमन अक्षरों से की जावे। इसी कारण हम यहाँ पर केवल उर्दू एवं रोमन अक्षरों से तुलना करेंगे। यह प्रायः सर्व-सम्मत बात है कि स्वदेशी भाषाओं में हिन्दी अक्षरों का क्रम श्रेष्ठतम और सरलतम है। अवश्य ही कुछ लोगों का यह विचार है कि त्वरा-लेखन में हिन्दी से गुर्जरा-क्षर श्रेष्ठ हैं, परन्तु शिरोभाग की रेखा छोड़ देने से हिन्दी एवं गुर्जराक्षरों में बहुत कम भेद रह जाता है। यह रेखा केवल सौन्दर्य-वर्धन के विचार से लिखी जाती है। यदि यह निश्चय हो कि सौन्दर्य की अपेक्षा त्वरा-लेखन अधिक आवश्यक है, तो इस रेखा के छोड़ने से हिन्दी के अक्षर त्वरा-लेखन में भी गुजराती से श्रेष्ठतर ठहरेंगे; क्योंकि यद्यपि उनका 'झ' अक्षर हमारे से सरल है, तथापि इधर हमारे च, ठ, ध और अ उनके इन्हीं अक्षरों से सरलतर हैं।

ध्वनिविचार ।

अब हम ध्वनिविचार से अपने लेख का मुख्य भाग प्रारम्भ करते हैं । इसमें जितनी अपेक्षाकृत बातें लिखी जावें वे रोमन और उर्दू अक्षरों के सम्बन्ध में समझनी चाहिए । हमारे आचार्यों ने स्वरों को पृथक् रक्खा है और व्यञ्जनों को पृथक् तथा उनके पीछे । हमारे कुछ स्वर तो ऐसे हैं जो अक्षर और मात्रा दोनों का काम देते हैं और कुछ ऐसे हैं जो संस्कृत में चाहे अक्षर हों, परन्तु भाषा में मात्रा मात्र रह गये हैं । अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ नामक दश स्वर अक्षर भी हैं, और मात्रा भी । इनमें से अ इ उ ए इकहरे स्वर हैं और शेष सब दोहरे, क्योंकि उनमें उन्हीं स्वरों की ऊँची ध्वनियाँ हैं । अतः अ, इ, ए, और उ मुख्य स्वर ऐसे रहे जो अक्षर और मात्रा दोनों हैं । शेष स्वरों में ऋ संस्कृत के नियमों के कारण स्थिर है, किन्तु हिन्दी में उसकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अक्षर के रूप में उसका काम साधारणतया रकार में इकार की मात्रा मिलाने से निकल सकता है और मात्रा की दशा में भी अर्द्ध रकार के साथ इकार मिलाने से प्रयोजन की सिद्धि हो सकती है । यथा ऋषि एवं नृप को रिषि एवं न्रिप भी लिख सकते हैं । संस्कृत के नियमों पर ध्यान देने से इन शब्दों की ध्वनियों में भेद अवश्य है परन्तु साधारण जनसमुदाय में कोई भी इन उच्चारणों में भेद नहीं करता । हमी लोग उर्दू की लिपि में س ص ث तथा ض ز ذ ظ नामक अक्षर समुदाय का एकही एक ध्वनि-बोधक होना बतला कर दोषारोपण करते हैं, किन्तु उनके विद्वान् मौलवी लोग इनके उच्चा-

रणों में कुछ कुछ भेद अवश्य बतलाते हैं, जो सर्व-साधारण के समझ में नहीं आता और फ़ारसी एवं उर्दू लिपि को केवल दुर्बोध बनाने का काम करता है। यही दशा हमारे ऋ और ष की है। इन अक्षरों के उठा देने से हमारी लिपि-प्रणाली में सरलता आ सकती है और दोष कुछ भी नहीं पड़ सकता। ॠ अर्थात् बड़ी ऋ का प्रयोग वेदों और कहीं कहीं संस्कृत में अवश्य होता था, परन्तु भाषा में कहीं नहीं होता। इस अक्षर का रहना न रहना दोनों बराबर है। ऌ और ॡ मिलित अक्षर हैं न कि एक एक अक्षर। इससे वस्तुतः अक्षर-क्रम में इनका न होना ही ठीक है। अं और अः मात्रा मात्र हैं। इनके स्वरूप अ अक्षर पर प्रयोग द्वारा दिखलाये गये हैं। अः का प्रयोग हिन्दी में बहुत कम होता है। इसी प्रकार ओ और औ भी मात्रा मात्र कहे जा सकते हैं, क्योंकि उनके भी रूप अकार पर उनके प्रयोगों द्वारा दिखलाये गये हैं। वास्तव में अ को छोड़ कर सभी स्वर केवल मात्रा कहे जा सकते हैं, क्योंकि इ, उ, ए भी अि अु अे कर के उत्तमतापूर्वक लिखे जा सकते हैं। अतः वास्तव में अकेला अकार अक्षर और मात्रा दोनों है, बाक़ी के स्वर मात्रा मात्र हैं। इन मात्राओं का प्रचार अधिक होने के कारण त्वरा-लेखन में सुविधा के विचार से इनके रूप अलग बना दिये गये हैं। फिर भी ओ का कोई अलग रूप नहीं है और ऋ त्वरा-लेखन में भी सहायता के स्थान पर अड़चन डालता है। अतः हमारा स्वतन्त्र विचार है कि ऋ और ॠ अनावश्यक वर्ण हैं, तथा इ उ ए का काम अ से निकल सकता है किन्तु त्वरालेखन के विचार से ये अक्षर आवश्यक हैं। स्वरों का उच्चारण जिह्वा द्वारा प्रायः एकही प्रकार से होता है।

व्यंजनों में हमारे यहाँ ऋषियों ने पांच वर्ग स्थिर किये हैं, आठ अक्षर पृथक् रक्खे हैं, तथा क्ष त्र और ज्ञ दो दो वर्णों के मिश्रण के फल हैं, न कि स्वतन्त्र वर्ण। इनको हम अक्षरों की संख्या में नहीं गिनते। वर्गों में एक एक का उच्चारण जिह्वा, दन्त, ओष्ठ, तालु आदि के एक ही एक प्रकार के मिलाने से होता है, अर्थात् कवर्ग का एक प्रकार से, चवर्ग का दूसरे प्रकार से और इसी भाँति अन्यान्य वर्गों का पृथक् पृथक् भाँति से। वर्गों के अक्षरों का शेष अक्षरों से मुख्य भेद यही है कि वर्गों वाले वर्णों के पूर्व अनुस्वार होने से अनुस्वार का शुद्ध उच्चारण उस वर्ग के पंचमाक्षर का होता है, जिसके पहले वह आवे, परन्तु शेष व्यंजनों के प्रथम आने से उसका उच्चारण शुद्ध अनुस्वार का होता है। यथा रंग में अनुस्वार ङ हो जावेगा, कंज में ञ, कंटक में ण, दंत में न और पम्पा में म, परन्तु संहार, संसार आदि में अनुस्वार का शुद्ध रूप रहता है। आजकल हिन्दी के बहुत लेखकों का मत संस्कृत के इस पंचमाक्षर में अनुस्वार को बदलने वाले नियम के प्रतिकूल है। उनका विचार है कि अनुस्वार को सदा अनुस्वार ही रखना चाहिए, चाहे वह जिस वर्ण के पहले आवे। साधारण बोलचाल में कवर्ग तथा य (संयम) और ह के प्रथम आनेवाले अनुस्वारों का उच्चारण शुद्ध अनुस्वार का होता है। पवर्ग एवं व (संवाद) के प्रथमवाले अनुस्वारों का उच्चारण शुद्ध मकार का होता है और शेष अनुस्वारों का उच्चारण अर्द्ध नकार का होता है। ये उच्चारण शुद्ध उच्चारण के प्राकृतिक नियमों के अनुसार आप से आप ऐसे होंगे, चाहे कोई पंचमाक्षर का प्रयोग करे चाहे

अनुस्वार का । ऐसी दशा में पंचमाक्षर के प्रयोग का छोड़ना कुछ अनुचित नहीं समझ पड़ता । यदि यह पंचमाक्षर का प्रयोग छूट जावे तो ङ और ञ नामक अक्षरों की कोई आवश्यकता न रहेगी । वर्गों से इतर वर्णों में सब का उच्चारण-प्रकार एक दूसरे से पृथक् है, परन्तु फिर भी र ल श स का कुछ कुछ मिलता है और व का पवर्ग से कुछ समानता रखता है । ष संस्कृत में तो शायद आवश्यक हो, परन्तु भाषा के लिए बिलकुल अनावश्यक समझ पड़ता है, क्योंकि कहीं तो वह श का उच्चारण रखता है और कहीं ख का । ऐसे स्थानों पर श या ख ही लिखे जा सकते हैं ।

यदि ऋ और ष को निकाल डालें, तो हमारे यहाँ किसी भी ध्वनि के लिए एकही अक्षर अथवा मिलित वर्ण निकलता है; इस लिए लेखन अथवा उच्चारण में किसी प्रकार का भ्रम नहीं पड़ सकता । प्रत्येक लिपि के लिए यह आवश्यक है कि उसमें प्रत्येक भाषा में व्यवहृत हर एक ध्वनि के लिए कोई स्वच्छन्द अथवा मिलित अक्षर हो और एक ध्वनि के लिए एक ही अक्षर हो । इन दोनों बातों का हमारे यहाँ लिपिप्रणाली में पूरा ध्यान रक्खा गया है । हमारे यहाँ उर्दू के ف ز غ خ ق ع अक्षरों के लिए कोई अक्षर न थे, क्योंकि ऐसे उच्चारण ही संस्कृत या हिन्दी में न थे । इन उच्चारणों के लिए उनसे मिले हुए अक्षरों के नीचे बिन्दु रख कर नई ध्वनियाँ बहुत दिनों से निकाली जा चुकी हैं । यथा अ़ क़ ख़ ग़ ज़ फ़ । इन ध्वनियों के आ जाने से उर्दू एवं फ़ारसी के समस्त उच्चारण हमारी लिपिप्रणाली में आ गये हैं । अङ्गरेज़ी के O और v

नामक अक्षरों के उच्चारण हमारे यहाँ न थे। इनके स्थान पर अ के ऊपर ◡ चिह्न से O का काम निकाला गया है, और व के नीचे बिन्दु देकर V का उच्चारण लाया गया है। इसी भाँति लघु और गुरु के बीच का उच्चारण भी खड़ी के स्थान पर ऽ मात्रा या रेखा से निकलता है। इस प्रकार अँगरेज़ी के भी सब उच्चारण हमारे यहाँ आ गये। अब मराठी का एक अक्षर एवं मदरासी भाषा का एक अक्षर रह गया जिनकी ध्वनियाँ हमारी लिपि में अब तक नहीं हैं और जिनके लिए नये अक्षरों के बनाने की आवश्यकता है। उनके लिए हमारी समझ में व के पीछे ष निकाल कर उन्हीं अक्षरों के चिह्न उन्हीं ध्वनियों के लिए हिन्दी में रख देना चाहिए, केवल उनके शिरों पर रेखा रखने से हमारा काम चल जायगा। इस प्रकार हमारी लिपि-प्रणाली समस्त भारतवर्षीय भाषाओं की ध्वनियों एवं उर्दू तथा अङ्गरेज़ी की ध्वनियों को प्रकट कर सकती है।

अब अन्य भाषाओं की लिपियों पर ध्यान देने से विदित होगा कि वे कई अनावश्यक अक्षर रखती हैं और कई आवश्यक ध्वनियाँ उनमें शुद्धतापूर्वक अथवा निश्चित प्रकार से नहीं लिखी जा सकतीं। कभी कभी उनके यहाँ एक ही अक्षर से कई ध्वनियाँ निकलती हैं। यदि उर्दू के अक्षरों को लेवें तो विदित होगा कि अनावश्यक अक्षरों की उसमें अच्छी भरमार है और निश्चय नहीं हो सकता कि किसी विशिष्ट ध्वनि के लिए कौनसा अक्षर लिखा जावे। सकार के लिए वहाँ ث ص س नामक तीन चिह्न हैं। ख़ुब्स में सकार ث से लिखी जावेगी, ख़ास में ص से और ख़स

में س से। इन तीन अक्षरों में से दो नितान्त अनावश्यक और भ्रमवर्द्धक हैं। इसी प्रकार हकार के लिए ح और ه नामक दो चिह्न हैं; तकार के लिए ت और ط हैं; अकार के साधारण बोल चाल में ع और। हैं, और ज़कार के लिए तो ز ذ ض ظ नामक चार चिह्न वर्तमान हैं। अतः ३६ अक्षरों में से आठ अनावश्यक हैं। अब जब चिह्नों की कमी की ओर ध्यान दीजिए, तो ई ए ऐ के लिए वही ے। का प्रयोग होगा। इसी भाँति ऊ ओ और औ की लिखावट में भेद नहीं है। ङ ञ ण लिखे ही नहीं जा सकते। उनका और उँ का में कोई भेद नहीं है। अर्द्धाक्षर कोई नहीं लिखा जा सकता। यथा धर्म को धरम, शक्ति को शकति, पंखा को पनखा, आदि उर्दू में लिखेंगे। ज़ेर ज़बर पेश का विचार है अवश्य, परन्तु उनका प्रयोग कभी नहीं होता। इसलिए सकत, सकतु, सकति, सिकिति, सिकतु, सुकुतु आदि अनेकानेक शब्द उर्दू में एकही प्रकार से लिखे जाते हैं। मृत्युञ्जय, ऊधव आदि शब्द उर्दू में भ्रान्तिरहित प्रकार से लिखेही नहीं जा सकते। ऊधव को ओधो औधो, औधौ, ओधौ, औधू, ओधू, ऊधू आदि अनेक प्रकार से उर्दू में पढ़ सकते हैं। स्वयं उर्दू का शब्द अलीहज़ा लिखा और अला-हाज़ा पढ़ा जाता है। इसी भाँति अल्लह लिखकर अल्ला पढ़ते हैं। यदि ज़ेर ज़बर पेश को मान भी लेवें, तो भी उपर्युक्त प्रायः सब दूषण उस लिपि-प्रणाली में पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं। अतः इस लिपि-प्रणाली में प्रायः चौथाई अक्षर आवश्यकता से अधिक होकर उसे भ्रान्ति-जनक बनाते हैं और न जानें कितनी ध्वनियों के लिए उसमें चिह्न ही नहीं हैं। सो साथ ही साथ उसमें अव्याप्ति और अतिव्याप्ति

दूषण वर्तमान हैं। उर्दू की लेखन-प्रणाली और अक्षर ऐसे भ्रष्ट हैं कि उसमें संस्कृत के किसी भी श्लोक के लिखने से उसका पढ़ना प्रायः असम्भव होजावेगा। यथा,

जयत्वदभ्रविभ्रमद्‌भ्रमद्‌भुजङ्गमस्फुरत्,
धगद्धगद्विनिर्गमत्करालभालहव्यवाट् ।
धिमिद्धिमिद्धिमिद्‌ध्वनन्मृदङ्गतुङ्गमङ्गल-
ध्वनिक्रमप्रवर्त्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः ॥

को यदि उर्दू या अङ्गरेज़ी में लिख देवें, तो इस श्लोक का न जाननेवाला इसे कभी न पढ़ सकेगा। उधर फ़ारसी का कोई कठिन से कठिन छन्द भी हिन्दीलिपि में शुद्धता से लिखा एवं पढ़ा जा सकता है। यथा,

अलाया अइय उस्साक़ी, अदर कासिन अनावेल हा।
कि इश्क़ा सां नमूदौवल, वले उफ़्ताद मुश्किल हा॥

फ़ारसी के कठिन छन्द तक हिन्दी लिपि में सफलतापूर्वक लिखलेने तथा हिन्दी के उर्दू में न लिख पाने से इन दोनों भाषाओं की लिपियों की आनुषंगिक गरिमा एवं हीनता प्रकट होती है।

अब अँगरेज़ी अर्थात् रोमन लिपि पर विचार किया जाता है। इसकी दशा अव्याप्ति और अतिव्याप्ति में उर्दू से भी ख़राब है। इसमें एक ही शब्द समय समय पर विविध प्रकार की ध्वनियों का काम देता है, और एकही ध्वनि विविध स्थानों पर विविध भाँति से लिखी जाती है। यथा वही अक्षर A, hat शब्द में ए का काम देता है, सार्ट में आ का और अलर्ट में अ का। अदर में O अकार का काम देता है। th यदि आगे हो तो ough ओ का काम देते हैं,

परन्तु d आगे हो तो वेही अक्षर फ़ बनजाते हैं। इस भाषा में कई स्थानों पर अक्षरों और उच्चारणों से कोई सम्बन्ध ही नहीं समझ पड़ता। S अक्षर अनेक स्थानों पर सकार का काम देता है और अनेक स्थानों पर ज़कार का। ककार का काम कभी k से लेते हैं, कभी ch (chemist) से और कभी केवल c से। वही ch अनेक स्थानों पर चकार का काम देता है। z और X अक्षर अनावश्यक हैं। उनके काम अन्य अक्षरों से निकल सकते हैं। c अक्षर स्वयं अनावश्यक है, क्योंकि उसका काम स s से चल सकता है और क का k से। c केवल h के साथ मिलकर चकार का काम देता है। ऐसी दशा में सीधा सादा चकार का ही बनाना अधिक युक्तिसंगत था। इस लिपि में अनावश्यक अक्षरों एवं ध्वनियों के दुरुपयोग की अच्छी भरमार है। उधर उनका, उङ्का, ऊँका, ऊनका सब एकही प्रकार से लिखे जावेंगे। इसी भाँति काँटा, कानटा, कनूटा आदि लिपि में एक ही हैं। ङ ञ ण ढ़ ड़ क़ त लिखेही नहीं जा सकते और ढ एवं ध तथा ठ एवं थ को एकही भाँति से लिखते हैं तथा ख़ एवं ख को भी। इस उदाहरण-समूह से प्रकट हुआ होगा कि रोमन लिपि अनेकानेक उच्चारण व्यक्त करने में असमर्थ है और जिन्हें व्यक्त भी करती है, उन पर एक नियम पर न चलकर सन्देह उपस्थित करती है। यदि उपर्युक्त श्लोक को कोई रोमन में लिखना चाहे, तो उसे पढ़नेवाला कोई भी न मिलेगा। इधर हिन्दी-लिपि में कठिन से कठिन अँगरेज़ी शब्द-समूह का यथावत् लिखना अत्यन्त सुगम है, यथा,

ए लूनैटिक ए लवर ऐण्ड ए पोयट।
आर इन इमैजिनेशन आल कम्पैक्ट॥
वन सीज़ मोर डेविल दैन वास्ट सी कैन होल्ड।
दैटइज़ दि मैडमैन, येलूनैटिक आल ऐज़बोल्ड॥

उर्दू और रोमन लिपियों का अक्षर-क्रम भी किसी वैज्ञानिक रीति पर नहीं चलता जैसा कि हमारे यहाँ है। उनके अक्षरों के उच्चारण भी एक प्रकार से हैं, परन्तु वे ध्वनियाँ और व्यक्त करते हैं। उर्दू में कहेंगे अलिफ़ और प्रयोजन लेंगे अ का, कहेंगे जीम और मानेंगे ज। इसी प्रकार दाल, डाल, ज़ाल, सीन, शीन, स्वाद, ज़्वाद, ऐन, ग़ैन, काफ़, क़ाफ़, गाफ़, लाम, मीम, नून और वाव की दशा है। शेष अक्षर भी कहे तो बे पे आदि जाते हैं और माने जाते हैं ब, प आदि। उचित यह है कि जो अक्षर कहा जाय वही माना जाय। उसमें अनावश्यक ध्वनियाँ भ्रमवर्द्धक हैं और उनसे वैज्ञानिक सत्यता का बहिष्कार होजाता है। इसी भाँति अङ्गरेज़ी में यफ़्, यच्, आई, यल्, यम, यन्, क्यू, आर, एस, डब्लू, यक्स, वाई और ज़ेड् का हाल है। शेष अक्षर ए, बी, सी, आदि में भी बे, पे, आदि की भाँति सीधी ध्वनि नहीं कही गई है।

फिर इन भाषाओं के अक्षर-क्रमों में स्वर और व्यञ्जन अनावश्यक प्रकार से हिला मिला कर लिखे गये हैं। उचित यह था कि हमारे यहाँ के समान स्वर और व्यंजन अलग अलग रक्खे जाते। हमारे यहाँ स्वरों में भी विशेष व्यावहारिक-गरिमानुसार उनका पूर्वापर क्रम है। "अ" का सबसे अधिक व्यवहार है और बच्चे पहले अ बोलते भी हैं। फिर अकार शेष स्वरों का मूल स्वरूप है,

जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है, क्योंकि उसी में मात्रा लगाने से शेष स्वर निकल सकते, अर्थात् लिखे जा सकते हैं। अ के पीछे इ की पदवी है और फिर क्रमशः अन्य स्वरों की। व्यंजनों में एक २ प्रकार से उच्चारण होने वाले अक्षरों के पाँच समूह एक पास लिखे हुए हैं और प्रत्येक वर्ग का पंचमाक्षरक्रम अनुस्वार के सम्बन्ध में प्राकृतिक नियमानुसार एक ही है, जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है। षकार को निकालकर शेष सात अक्षरों का उच्चारण-क्रम एक दूसरे से अनमिल है और उनके प्रथम अनुस्वार का शुद्धरूप स्थिर रहता है। उधर अँगरेज़ी में अक्षरों के क्रम का कोई शुद्ध कारण ही नहीं है। उर्दू में ध्वनियों पर क्रम नहीं रक्खा गया है, किन्तु रूपों पर कुछ कुछ क्रम विचार है। फिर भी फ़े को बे, पे के समीप होना चाहिए था और उसके पीछे बड़ी ये एवं काफ़ और गाफ़ को, क्योंकि ये रूप कुछ कुछ मिलते हैं। इसी भाँति ऐन, ग़ैन, क़ाफ़, स्वाद, ज़्वाद, लाम, नून, सीन, शीन और छोटी ये को जीम, चे आदि के पीछे रहना चाहिए था, क्योंकि ये सब कुण्डलवाले अक्षर हैं। वाव तथा छोटी हे को दाल, डाल के निकट रहना चाहिए था और तोय, ज़ोय को इन्हीं के पीछे। इस प्रकार इन थोड़े से अक्षरों में न ध्वनि का क्रम ठहरता है, न रूप का, न स्वर का और न व्यंजन का। इस भाँति ध्वनि विचार में हमारे अक्षर सर्वश्रेष्ठ ठहरते हैं। इनमें जो कुछ लिखा जावे, वही संशय-रहित दृढ़ता-पूर्वक पढ़ा जावेगा और ये सब प्रचलित ध्वनियों को लिख सकते हैं।

रूपविचार।

किसी वर्णमाला के लिए ध्वनिविचार मुख्य है और रूपविचार

अप्रधान । हर वर्णमाला के लिए ध्वनि-व्यक्तीकरण सामर्थ्य-प्रधान गुण है, क्योंकि इसी के लिए वह बनता है । यह ऊपर प्रकट हो चुका है कि सामर्थ्य हमारे वर्णमाला में .खूब प्रचुरता से है । अब अक्षरों के रूपों पर विचार शेष रहा । सामर्थ्य के पीछे रूपों में निश्चय, सरलता, सुन्दरता और त्वरा-लेखन-उपयोगिता के विचार मुख्य हैं, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है ।

हमारे अक्षरों के रूपों की उत्पत्ति का हाल जानना अभी तक के अनुसन्धान से निश्चित नहीं हुआ है । ओझा जी महाशय ने लिखा है कि इनके पुराने से पुराने रूप महाराजा अशोक के समय से मिलते हैं । इससे पूर्व की केवल एक पंक्ति नैपाल की तराई के एक मन्दिर में रक्खे हुए एक शिला-लेख में है, जिसमें केवल १४ अक्षर हैं । ये अक्षर अशोकाक्षरों से मिलते हैं, केवल इनमें दीर्घ स्वर चिह्नों का अभाव है । ये पूरे अक्षर मिले नहीं और इनमें मात्रायें भी ठीक नहीं हैं, अतः अद्य पर्य्यन्त के अनुसन्धान हमें अशोक के समय के अक्षरों तक ले जाते हैं । उस समय के हमारे अक्षरोंवाले रूप हमारे वर्त्तमान अक्षरों के रूपों से बिलकुल पृथक् हैं । ओझा जी ने उन रूपों ने किस प्रकार बदलते बदलते वर्त्तमान रूप ग्रहण किये, इस बात का एक नक़शा दिया है । उस नक़शे की एक प्रतिलिपि हम इस लेख के साथ भी लगाते हैं । इसके देखने से विदित होगा कि कैसे बदलते २ हमारे अक्षर बने हैं । उन्होंने इन अनेक मध्यवर्ती रूपों के समय भी लिखे हैं । इन कई रूपों से गुजराती, बङ्गाली, मराठी आदि अक्षरों के वर्त्तमान रूप मिलते हैं । इनको मिलाने से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि वे वर्णमालायें

उसी समय बनीं जब हमारे अक्षरों के वे रूप प्रचलित थे। इस लिपि-प्रणाली को ब्राह्मी और नागर कहते थे। कहते हैं कि पूर्वकाल में जब कि देवताओं की प्रतिमाएं नहीं बनी थीं, तब उनके पूजन सांकेतिक चिह्नों द्वारा होते थे। ये चिह्न भाँति भाँति के त्रिकोणादि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। इन यंत्रों को देवनगर कहते थे, मानों चिह्नों के कारण देवताओं के लिए वे निवासस्थान अथवा नगर थे। समय पाकर यही सांकेतिक चिह्न अक्षर हो गये। इसी लिए ये अक्षर "देवनागरी" कहलाये।

महाराज अशोक ईसा से प्रायः २५० वर्ष पूर्व हुए। उनके समय के ४४ अक्षरों में से गोलाई-युक्त प्रायः २० अक्षर हैं और इतने ही कोण-प्रधान हैं। बिन्दुयुक्त केवल दो हैं और २६ ऐसे हैं जिनमें सीधी रेखाओं का प्राधान्य है। शिर पर किसी अक्षर के रेखा नहीं है, केवल चार अक्षर ऐसे हैं, जिनके शिर पर रेखायें उनके रूपों के अङ्ग हैं। इन अशोक-अक्षरों के देखने से प्रकट होगा कि हमारे वर्त्तमान अक्षरों से ये सरलतर अवश्य हैं, किन्तु मिलित वर्ण लिखने में इनकी उपयोगिता संशयाकीर्ण है, वरन् समझ पड़ता है कि मिलाने में ये अक्षर निश्चय ही कठिनता से पढ़े जाते होंगे। इन्हीं या अन्य कारणों से समय के साथ ये बदलते चले, यहाँ तक कि अब इनसे प्रकट में वर्त्तमान अक्षरों से कोई सम्बन्ध ही नहीं समझ पड़ता।

हमारे यहाँ प्राचीन काल में ताम्रपत्र, ताड़पत्र, शिलाओं आदि पर लेख अधिक लिखे जाते थे और काग़ज़ आदि पर कम। भोज-पत्र आदि का प्राचीन समय में कुछ कुछ प्रचार तो अवश्य हुआ,

किन्तु अधिकता से नहीं । अधिकतर प्राचीन पुस्तकें ताड़पत्रों पर ही लिखी जाती थीं । इन कारणों से लिखने में मुलायम लेखनियों से उतना काम नहीं लिया जाता था जितना कि पुष्ट लोह-यन्त्रों से । इसीलिए हमारे अक्षर भी ऐसे थे जो सूजा आदि से सुगमता एवं सफलतापूर्वक लिखे जावें । ज्यों ज्यों समय के साथ सभ्यता की वृद्धि से लेखन-कार्य्य की भी वृद्धि होती गई, उसी प्रकार मृदुल लेखनी और काग़ज़ आदि का भी प्रचार हुआ और तदनुसार अक्षरों के रूपों में भी हेर फेर हुए ।

इन हेर फेर करनेवालों ने स्वाभाविक प्रकार से अक्षरों के सौन्दर्य्य एवं शीघ्र लेखन-उपयोगिता पर भी ध्यान रक्खा, यद्यपि निश्चय की ओर से भी ध्यान हटाया नहीं गया । निश्चय पर ध्यान रहने से यह फल हुआ कि आजकल हमारे वर्णों द्वारा जो कुछ लिखा जाय, ठीक वही पढ़ा जावेगा । इसमें कोई सन्देह नहीं पड़ सकता । सौन्दर्य्यवर्द्धन के विचार से अक्षरों के ऊपर उठी हुई रेखाओं के शिरों पर पगड़ी की भाँति कुछ छोटी रेखायें लगाई जाने लगीं, जो समय पर प्रत्येक अक्षर के शिर पर आड़ी रेखा के स्वरूप में बदल गईं । इन शिरोभागवाली रेखाओं के कारण सौन्दर्य्य की वृद्धि अवश्य हुई, किन्तु त्वरा-लेखन-उपयोगिता को क्षति पहुँची । त्वरा-लेखन के विचार ने अक्षरों के रूपों में ऐसे हेर-फेर कराये, जिनके कारण पूरा अक्षर बिना लेखनी उठाये लिखा जा सके । यदि सौन्दर्य-वर्द्धक शिरोभागवाली आड़ी रेखायें निकाल डाली जावें, तो अशोकाक्षरों के ४४ में से १५ ऐसे थे जिनके लिखने में लेखनी एक साथ बिना उठाये काम नहीं कर सकती थी ।

आजकल भी उतने ही अक्षर उसी प्रकार के हैं और फिर भी निश्चय गुण की पूरी वृद्धि हो गई, इस लिए यह उन्नति सन्तोषदायिनी है। सरलता के विचार में आजकल के अक्षर अच्छे नहीं ठहरेंगे, क्योंकि यद्यपि आजकल के ढ और य की सरलताओं में उस समय वाले अक्षरों से समानता है और हमारा वर्त्तमान भ उस समय के भ से सरलतर है, तथापि शेष सब अक्षर उसी समय के सरलतर थे। फिर भी निश्चय-प्राप्ति के विचार से सरलता का यह थोड़ा सा ह्रास बुरा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि निश्चय गुण वर्णों के सभी रूपवाले गुणों से श्रेष्ठतर हैं। सुतरां हमारी वर्त्तमान वर्ण-माला में अशोकाक्षरों की अपेक्षा निश्चय और सुन्दरता के गुण अधिक हैं, किन्तु सरलता और शीघ्र-लेखन-उपयोगिता के कम।

हमारे वर्णों से शिरोभागस्थ रेखाओं का उठा देना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि यद्यपि इसके न रहने से सुन्दरता में कुछ क्षति पहुँचेगी, किन्तु त्वरालेखन-उपयोगिता का गुण ख़ूब बढ़ जावेगा। यह एक बड़ा ही उत्कृष्ट गुण है। हर बात में समय का दुरुपयोग बचाने का विचार अवश्य रखना चाहिए। शिरोभाग की आड़ी रेखायें हटाने से केवल घ ध, म, भ, झ और ख में कुछ फेर फार करना पड़ेगा, क्योंकि इस रेखा के हटाने से घ और ध में कुछ भेद न रहेगा। इसी प्रकार भ और म मेंभी कोई भेद न रहेगा। झ में रेखा के हटाने से भी कोई भ्रम नहीं पड़ सकता, क्योंकि वैसा कोई दूसरा अक्षर नहीं है। ख और र व में इस समय में भी साधारण लेखन-शैली से पूरा भ्रम पड़ता है। इस कारण हमारे विचार से ख का रूप बदलना चाहिए, विशेषतया इसलिए भी कि

यह त्वरा-लेखन के भी प्रतिकूल है। यदि ऊपर की रेखायें अन्य अक्षरों से भी हटाई जावें, ते ख का वही रूप हो सकता है, जो इसी नाम के अशोकाक्षर का रूप है। यदि शिरोभाग की रेखा न हटाई जावे, ते इस रूप में गड़बड़ पड़ेगा, अतः गुजराती का ख हम ले सकते हैं, जिसका रूप हमारे उद्देश्य साधन के उपयुक्त है। भ और ध में अन्त की रेखा आधी कर देने से म और ध से अन्तर हो सकता है। गुजराती में यह रूप ध का है, जिसमें आरम्भ में ही टेढ़ी रेखा द्वारा घ से अन्तर किया गया है। भकार का इसी प्रकार का रूप लिखा गया है, जिसके आदि में एक रेखा बनाकर म से अन्तर किया गया है। इस प्रकार गुजराती अक्षरों के सहारे हम त्वरा-लेखन-उपयोगिता बढ़ाने में अपने ख ध और भ के उपयोगी ऐसे रूप पा सकते हैं, जो हमारे इन्हीं वर्त्तमान अक्षरों के रूपों से मिलते भी हैं। सारांश यह है कि हमारी सम्मति में शिरो-भाग की रेखायें हमारे अक्षरों से हट जानी चाहिएं, और ख, ध और भ को उपर्युक्त प्रकार से लिखना चाहिए। हमारा ण भी अच्छा नहीं है, क्योंकि टवर्ग के अन्य अक्षरों से मिलने पर यह रा होकर भ्रामक होजाता है। यथा पाण्डव (पांडव) को पाराडव भी पढ़ सकते हैं। इसका गुरमुखी का रूप ग्रहण करने के योग्य है।

बहुत लोगों का मत है कि अक्षर ऐसे होने चाहिएं जो लेखनी उठाये बिना उर्दू और अँगरेज़ी की भाँति कई कई साथ ही साथ लिखे जा सकें। हमारे विचार में यह बात बिलकुल ही अनुचित है। त्वरा-लेखन एक आदरणीय गुण है, परन्तु निश्चय उससे कहीं बढ़ कर आदरणीय है। यदि किसी लेखन-प्रणाली से निश्चय

गुण कुछ भी घट गया, तो उसके सारे अन्य गुण व्यर्थ हैं। वर्णमाला की रचना ही इस कारण होती है कि वह ध्वनियों को शुद्धता-पूर्वक व्यक्त करे। यदि वह ऐसा करने में कुछ भी असमर्थ हुई, तो त्वरालेखन आदि सब गुण व्यर्थ हैं। जहाँ अक्षर ऐसे होते हैं कि कई वर्ण एक ही में मिलाकर लिखे जावें, वहाँ सर्वत्र पूरा भ्रम पड़ता है। अँगरेज़ी की लेखन-शैली छपनेवाले अक्षरों से नितान्त पृथक् है। फल यह निकलता है कि कई अक्षर एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं और उनका पढ़ना गद्दे बाज़ी पर ही निर्भर रह जाता है। l m n i e u w h b l g q f p आदि अक्षर प्रायः ऐसे भ्रामक और हिले मिले होते हैं कि उनका पता ही लगना दुस्तर हो जाता है। उर्दू अक्षरों के मिलान तो ऐसे भ्रमयुक्त होते हैं कि ख़ुगीर को होना और चुंकर घंट में भी भेद नहीं रहता। नहीं जान पड़ता कि मोलवी साहब अजमेर गये हैं या आज मर गये हैं। कभी कभी सरकारी लेखों में ऐसे भ्रम पड़े कि हज़ारों रुपये फुँकने के बाद विलायत से फ़ैसला हुआ कि अमुक लेख में अमुक शब्द लिखे हैं। शिरोभाग की रेखायें निकल जाने से नागराक्षर ऐसे हो भी जायँगे कि त्वरा-लेखन तक में उर्दू के अक्षरों से आगे बढ़ जावें। महामहो-पाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने युक्त प्रान्तीय छोटे लाट के सम्मुख इन अक्षरों की त्वरालेखन-उपयोगिता तक प्रमाणित कर दी थी, यद्यपि उनमें शिरोभाग की रेखा भी वर्तमान थी। रेखा निकल जाने से तो इनकी शीघ्र-लेखन-उपयोगिता ख़ूब ही बढ़ जावेगी। रोमन अक्षर आज भी त्वरालेखन तक में हमारे अक्षरों का सामना नहीं कर सकते। निश्चय गुण में उर्दू और

रोमन अक्षर नितान्त व्यर्थ हैं और सुन्दरता में भी वे नागरी अक्षरों के पीछे ही छूट जावेंगे। रूपों की सरलता में ये लिपियाँ अवश्य हमारी लिपि से अच्छी हैं, किन्तु ध्वनि-व्यक्तीकरण विपर्य्यय से बहुत देर में छात्रों के समझ में आती हैं। यदि कोई अनपढ़ मनुष्य हमारे अक्षरों को पढ़कर छः मास में लेखक बन सकता है, तो इन लिपियों में उसे दो तीन साल लग जावेंगे। उपर्युक्त विचारों से यह प्रकट होता है कि उर्दू या रोमन की वर्णमाला ध्वनि और रूप, दोनों में हमारी वर्णमाला से बहुत पिछड़ी हुई है।

भारतवर्ष में मदरास प्रान्त के अक्षरों को छोड़कर हिन्दी, बंगाली, गुरुमुखी (पंजाबी), गुजराती और मराठी वर्णमालायें प्रधान हैं। इनमें हिन्दी और मराठी के अक्षर मिलते हैं, सो ४ वर्णमालायें प्रधान रह जाती हैं। इस लेख के साथ हमने इन चारों के अक्षर एक दूसरे के सामने एक पृथक् पृष्ठ पर दिखलाये हैं। उनके देखने से प्रकट होगा कि ध्वनि-विचार में तो इन वर्णमालाओं में कोई अन्तर नहीं है, भेद है तो केवल अक्षरों के रूपों में है।

रूपों के देखने से भी विदित होगा कि गुजराती वर्णमाला हमारी वर्णमाला से बहुत कुछ मिलती है; प्रधान भेद केवल अ, ख, च, इ, ए, ज, ब, ल में है। इनमें से ख उनका अच्छा है और च, अ, इ, ए और ल हमारे। उनके स और ल एक से होने के कारण कुछ भ्रामक हैं। शेष अक्षरों में न्यूनाधिक्य का प्रश्न नहीं उठता। इससे प्रकट है कि ये दोनों वर्णमालाएँ प्रायः समान हैं। यदि हमारे अक्षरों के शिरोभाग की रेखायें हटा दी जावें, तो

नागरी	गुर०	बंगाली	गुज०
क	ਕ	ক	ક
ख	ਖ	খ	ખ
ग	ਗ	গ	ગ
घ	ਘ	ঘ	ઘ
ङ	ਙ	ঙ	ઙ
च	ਚ	চ	ચ
छ	ਛ	ছ	છ
ज	ਜ	জ	જ
झ	ਝ	ঝ	ઝ
ञ	ਞ	ঞ	ઞ
त	ਤ	ত	ત
थ	ਥ	থ	થ
द	ਦ	দ	દ
ध	ਧ	ধ	ધ
न	ਨ	ন	ન
ट	ਟ	ট	ટ
ठ	ਠ	ঠ	ઠ
ड	ਡ	ড	ડ
ढ	ਢ	ঢ	ઢ
ण	ਣ	ণ	ણ

नागरी	गुर०	बंगाली	गुज०
प	ਪ	প	પ
फ	ਫ	ফ	ફ
ब	ਬ	ব	બ
भ	ਭ	ভ	ભ
म	ਮ	ম	મ
य	ਯ	য	ય
र	ਰ	র	ર
ल	ਲ	ল	લ
व	ਵ	ব	વ
श	ਸ਼	শ	શ
ष	ਸ਼	ষ	ષ
स	ਸ	স	સ
ह	ਹ	হ	હ
क्ष			ક્ષ
ज्ञ			જ્ઞ
अ	ਅ	অ	અ
इ	ੲ	ই	ઇ
उ	ੳ	উ	ઉ
ऋ		ঋ	ઋ
ऌ			
ए		এ	એ

सरलता एवं त्वरालेखन-उपयोगिता हमारे अक्षरों में कुछ विशेष है। रेखाओं के रहने से सरलता एवं सुन्दरता हमारे अक्षरों में अधिक है, किन्तु शीघ्र-लेखन-उपयोगिता उनमें है।

बङ्गाली—बङ्गाली अक्षरों की आनुषंगिक अनुपयोगिता स्वयं बङ्गाली भी मानते हैं। उन में के क, घ, ठ, ड, ढ, न, फ, ब, म, य, ल, व, ष, स, अ और उ हमारे इन्हीं अक्षरों से बहुत कुछ मिलते हैं, किन्तु शेष अक्षरों से बहुत कुछ भेद है। भेदवाले अक्षरों में ख, ग, ङ, ज, ञ, ट, त, थ, द, ध, प, र, श, ट और ऋ हमारे सरलतर हैं, तथा केवल छकार उनका। उनके यहाँ णकार है ही नहीं। अतः सरलता के विचार से बँगला अक्षर हमारे अक्षरों से बहुत पीछे छूट जाते हैं। सुन्दरता और त्वरा-लेखन-उपयोगिता भी हमारे ही यहाँ अपेक्षाकृत दृष्टि से बहुत विशेष है। निश्चय के विषय में विचार तो हमारे ही अक्षरों की श्रेष्ठता का उठता है, किन्तु हम इस बात पर अपने बँगला-ज्ञान-संकुचन के कारण कुछ निश्चय न कर सके।

गुरुमुखी—गुरुमुखी के अक्षरों से जब हमारे अक्षर मिलाये जाते हैं, तब प्रकट होता है कि अ, उ, क, ग, च, ज, ट, ठ, ड, ढ, म, ए और र दोनों के प्रायः समान हैं अथवा उनमें अन्तर बहुत कम है। शेष अक्षरों में से घ, ञ, प, ल, व, ष, श, स और इ हमारे सरलतर हैं, तथा ख, ध, ण, फ और भ उनके सरलतर या श्रेष्ठतर हैं। शेष अक्षरों में

कोई विशेष अन्तर नहीं है। सुन्दरता एवं निश्चय में कोई विशेष भेद नहीं समझ पड़ता है, किन्तु त्वरा-लेखन-उपयोगिता हमारे ही अक्षरों में अधिक देख पड़ती है।

गुर्जराक्षरों में शिरोभाग की रेखाओं का सर्वथा अभाव है, किन्तु बँगला के २२ और गुरुमुखी के २९ अक्षरों में शिरोभाग की रेखायें हैं। कहीं इन रेखाओं के अस्तित्व और कहीं अभाव से इन लिपियों के सौन्दर्य्य में हमारे अक्षरों को देखते कुछ कुछ बट्टा अवश्य लगता है। हर स्थान पर एक नियम का पालन सुगम होता है और वैज्ञानिक शुद्धता का भी वर्द्धन करता है। गुरुमुखी अक्षरों में थ और ब के स्वरूपों में भ्रम पड़ सकता है और श तथा स में केवल बिन्दुओं का भेद है। अतः सब वर्णमालाओं से मिलाने से कुछ या अधिक श्रेष्ठता हमारे ही अक्षरों में निकलती है।

अन्य बातें—अब अन्य बातों पर भी कुछ विचार किया जाता है। पण्डित केशवदेव शास्त्री का मत है कि बँगला अक्षर तेरहवीं शताब्दी में बने, तथा गुरुमुखी एवं गुजराती अक्षर सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दियों में। कम से कम दसवीं शताब्दी तक ये कोई अक्षर न थे। इधर हमारे अक्षरों से ये सब निकले हैं और अशोक के समय से हमारे अक्षर चले आते हैं, यद्यपि समय के साथ इनमें उन्नति अवश्य हुई। अतः प्राचीन और पितृ-भाव से भी हमारे अक्षर पूज्य हैं। यदि सुगमता पर ध्यान दिया जाय तो हमारे अक्षर आज विहार, युक्तप्रान्त, बुन्देलखण्ड, बम्बई, राजपूताना, ग्वालियर, मध्यप्रदेश और अर्द्धपंजाब में प्रचलित हैं और बङ्गाली,

गुरुमुखी, गुजराती अक्षर एकही एक प्रान्त में चलते हैं। अतः यदि इनमें से कोई वर्णमाला भारत में चले, तो उस प्रान्त को सुगमता अवश्य हो, किन्तु शेष समस्त देश को सीखे हुए अपने अपने अक्षरों का ज्ञान भुलाना पड़े। इधर यदि हिन्दी के अक्षरों का प्रचार हो तो बंगाल, गुजरात एवं अर्द्ध पंजाब को अपने अपने अक्षर छोड़ने पड़ें, किन्तु एक मदरास छोड़ शेष भारत को कोई भी असुविधा न हो। फिर ये तीनों लिपि-प्रणालियाँ आपस में भिन्न भिन्न हैं, यद्यपि हिन्दी से इन सब के रूप बहुत कुछ मिलते हैं। अतः हिन्दी के अक्षरों को मानने से इन देशों की असुविधा भी बहुत कम होगी और भारत भर में ऐक्य स्थापन का बड़ा काम होजावेगा। ऐसी दशा में हम आशा करते हैं कि ऐक्य के विचार से हमारे अन्यान्य देश-निवासी भाई इस लिपि-संशोधन को अवश्य ही मान लेंगे और हमारे हिन्दी-भाषा-भाषी भाई भी दुराग्रह छोड़ कर अपनी वर्णमाला में त्वरा-वर्धक एवं संशय-विनाशक कुछ फेर फार अवश्य करेंगे।

हे भाइयो !

निज देश भाषा की करहु उन्नति करन मैं यत्न,
जनि तुच्छ हिन्दी को गनहु भाषान की यह रत्न।
सरबांग पूरन स्वच्छ या की वर्णमाला ख्यात,
अरधांस सुन्दर अन्य भाषन में न जौन लखात॥ १॥
जो जो सकै नर भाषि या मैं शुद्ध लिखिये तौन,
आह्वान करि हम कहैं ऐसी और लिपि है कौन ?

पुनि दूसरो गुण एक यामें है अमोल महान,
जो श्रैार भाषन में न लेसहु मात्र जग ठहरान ॥ २ ॥
जो कछु लिखो सोई पढ़ो भ्रम सकै परि न कदापि,
उर्दू सरिस भाषान में को सकै यह गुन थापि ।
है शुद्ध सुन्दर सरल संसैहीन तुर गतिवान,
प्राचीन लिपि यह बहुत प्रान्तन मांहि पूर्णमहान ॥ ३ ॥
द्वै वर्षही में सकें बालक शुद्ध लिखि पढ़ि याहि,
पर श्रैार लिपि के ज्ञान को षट वर्षहू बस नाहिँ ।
अपनाय याहि अदालतन अरु देस में फैलाय,
अब करहु ऐक्य महान मिलि है बन्धुगण हरषाय ॥ ४ ॥

दूसरा पुष्प ।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास * (सं० १९६८) ।

हिन्दी उस भाषा का नाम है जो बंगाल छोड़ समस्त उत्तरीय तथा मध्य भारत में सामान्यतया और युक्तप्रान्त, बिहार, बघेलखंड बुँदेलखंड एवं छत्तीसगढ़ में विशेषतया बोली जाती है। इसकी दो प्रधान शाखाएं हैं, अर्थात् पूर्वीय और पश्चिमीय, जिनको मोटी रीति से अवधी और ब्रजभाषा भी कह सकते हैं। इनकी उत्पत्ति के विषय में पंडितों का मत-भेद है। कुछ लोगों का मत है कि यह संस्कृत से निकली है, और शेष कहते हैं कि प्राकृत ही बिगड़ते बिगड़ते इस दशा को प्राप्त हुई है। हमारी अनुमति में यही दूसरा मत ग्राह्य है। अधिकतर पंडित लोग भी इसी को मानते हैं। ब्रजभाषा सौरसेनी प्राकृत से निकली है और अवधी अर्ध मागधी से। हिन्दी क्रियाओं का बृहदंश प्राकृत ही से निकला हुआ जान पड़ता है परन्तु इसकी कुछ क्रियाएँ संस्कृत से भी बनी हैं। इसके शेष शब्द विशेषतया प्राकृत एवं संस्कृत से आये हैं। परन्तु कुछ बँगला, मरहठी, फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी, फ़्रेंच, जर्मन, जापानी, चीनी आदि सभी भाषाओं से आये हैं और आते जाते हैं। इसका विकास दिनों दिन होता जाता है और आशा की जाती है कि समय पर इसका सौन्दर्य्य बहुत बढ़ जायगा।

---

* यह लेख पंडित गणेशबिहारी मिश्र ने भी दोनों लेखकों के साथ लिखा था।

पंडितों का मत है कि हिन्दी की उत्पत्ति प्रायः १२ सौ वर्ष हुए हुई थी, परन्तु शोक है कि उस समय की हिन्दी का कोई भी लेख हम लोगों को प्राप्त नहीं है ; केवल दो चार कवियों के संशयाकीर्ण नाम मात्र अँधेरे में बुझे हुए दीपकों की रेखा सी दिखलाते हैं। कहा जाता है कि पुष्य या पुंड ७१४ ई० में एक कवि होगया है। १०८६ ई० में बारदरबेणा और ११६४ ई० में कुमारपाल का भी होना बतलाया जाता है। परन्तु इन कवियों की भी कोई कविता नहीं मिलती। सब से प्रथम गद्य तथा पद्य के लेख जो हस्तगत हैं वे दिल्ली के राजा पृथ्वीराज तथा उसके बहनोई रावल समरसिंह के समय के मिलते हैं, जो प्रायः (११८०) ग्यारह सौ अस्सी ई० के हैं। सब से पुराने गद्य लेखों में से एक ११७२ ई० का महाराज पृथ्वीराज का दानपत्र है, जो नीचे उद्धृत किया जाता है।

"श्रीश्री दलीन महाराजं धीराजनं हिन्दुस्थानं राजं धानं
"संभरी नरेस पुरब दली तषत श्रा श्री महानं राजं
"धीराजनं श्री पृथी राजे सुसाथनं आचारज रूषी
"केस धनंत्रि अप्रन तमने का का जीने के दुवा की
"आरामं चश्रो जोन के रोजं मे राकड़ रूपेआ ५०००) तुमरे

"आ हाती गोड़े का परचा सीवाअ
"आवेंगे षजानं से इनं को कोई माफ
"करंगे जोनको नेरको के अंधकारी
"होवेगे सई दुवे हुकम के हडमन
"रांग्र संमत ११४५ बर्षे आसाड सुदी १३"

यह लेख उस समय की बोलचाल की हिन्दी का अच्छा उदाहरण है। महोबा के जगनिक कवि भी उसी समय हुए थे। उन्हों ने वर्त्तमान आल्हा काव्य की नीव डाली, परन्तु उनके आल्हा में किस प्रकार के शब्द और छन्द थे और उसकी भाषा कैसी थी, इसका कुछ पता नहीं चलता, क्योंकि जगनिक का कोई भी छन्द प्राप्य नहीं है।

महाकवि चन्दबरदाई भाषा का वास्तविक प्रथम कवि है। उसका जन्म अनुमान से ११२८ ई० में हुआ था और प्रायः ६५ वर्ष की अवस्था में यह कवि मोहम्मद ग़ोरी से अपने राजा के पक्ष में लड़ कर परमगति को प्राप्त हुआ। इसका बनाया हुआ पृथ्वीराज-रासो दो ढाई हज़ार पृष्ठों का महाकाव्य है, जिस में विशेषतया युद्ध, मृगया और शृंगार के वर्णन हैं। कुल मिला कर यह एक शृंगार-प्रधान ग्रंथ है और इसकी कविता परम प्रशंसनीय है। चन्द ने लिखा है कि उसने रासो में षट भाषा तथा पुरान एवं .कुरान की भाषाएं कही हैं (षट् भाषा पुरानं च कुरानं कथितं मया)। चन्द ने केवल कविता ही नहीं की थी, वरन् वह पृथीराज का मंत्री भी था और कई बार उसने पृथीराज के लिए घोरयुद्ध भी किया। रासो में गुजरात के राजा भोरा भीमंग के राजकवि से चंद का शास्त्रार्थ भी होना लिखा है। रावल समरसिंहजी को पृथ्वीराज की बहिन ब्याही थी। उस विवाह में कलेवा के समय रावलजी ने चंद के पुत्र जल्ह को भी दायज में लिया था। इससे प्रकट होता है कि उस समय राजदर्बारों में कवियों की बड़ी चाह थी। रासो के पढ़ने से यह भी जान पड़ता है कि दर्बारों में प्रायः कवि रहा करते थे, परंतु

इन में से किसी की भी कविता अब शेष नहीं है। चंद को हिन्दी के चासर होने का गौरव प्राप्त है। स्थानाभाव से इनकी कविता का केवल एक उदाहरण दिया जाता है।

आदी देव प्रनम्य नम्य गुरयं बानीय बन्दे पयं ।
सिष्टं धारन धारयं बसुमती लच्छीस चर्नाश्रयं ॥
तंगुं तिष्ठति ईस तुष्ट दहनं सुर्नाथ सिद्धश्रयं ।
थिर्चर्जंगम जीव चंद नमयं सर्वेस बर्दामयं ॥

चन्द की गणना हमने हिन्दी के नवरत्नों अर्थात् नौ सर्वोच्च महाकवियों में की है।

चंद के पीछे किदार नामक एक कवि का १२२४ में होना शिवसिंहसरोज में लिखा है, परन्तु उसकी भाषा आधुनिक भाषा से बहुत मिलती है, अतः उसका समय संदिग्ध है। १२८७ ई० में भूपति नामक एक कवि ने भागवत पुराण का उलथा किया था, जिसकी भाषा इस प्रकार है।

ताको तुम कीजो जो जानो, इतनो बचन हमारो मानो।
जबहि अबीची बहनुइ कहो, कंस बहीनो मारन रहो ॥
दूनों के पग बेरी डारी, चहूँ दीस चौकी बैठारी ॥

प्रायः इसी समय में नरपति नाल्ह नामक एक कवि ने बीसलदेव रासो नामक एक ग्रंथ १२९८ ई० में बनाया। उसकी भाषा इस प्रकार है—

जब लगि महियल ऊगैसूर, जब लग गंग बहै जलपूर।
जबलग प्रथिमी नय जगन्नाथ, जाणी राजा सिर दीधो हाँथ ॥

रास पहूतो राव को बाजै पड़ह पखावज भेर।

कर जोरे नरपति कहै अचल राज किज्जव अजमेर।

१३०१ ई० में शारंगधर नामक एक कवि का होना शिवसिंह-सरोज में लिखा है। यह चंद का वंशधर था। हम्मीर काव्य और हम्मीर रासो नामक दो ग्रन्थ रण थंभौरनाथ हम्मीरदेव के यहाँ इन्होंने बनाये। इनकी कविता का उदाहरण इस प्रकार है—

सिंह गमन सुपुरुष बचन कदलि फरइ एक सार।

तिरिया तैल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार॥

यह दोहा प्रसिद्ध है। इसकी भाषा बिलकुल आधुनिक है। चित्तौर के महाराना कुम्भकरण ने १४१९—१४६९ ई० तक राज्य किया था। इन्होंने गीतगोविन्द का छन्दोबद्ध टीका बनाया था, परन्तु वह अप्राप्य है। इन्होंने कवियों का बड़ा सम्मान किया था, परन्तु इनके सम्मानित किसी कवि का भी पता नहीं है। कुछ लोगों का विचार है कि मीराबाई इन्हीं की स्त्री थीं परन्तु यह अशुद्ध है। १४६९ ई० के लगभग बाबा नानक का समय है, परन्तु इन्होंने पंजाबी प्रधानभाषा में अपनी रचना की है। इनके अनुयायियों ने हिन्दी का भी सम्मान किया है। महात्मा चरणदास ने १४८१ ई० में ज्ञानस्वरोदय बनाया। उदाहरण—

चारि वेद को भेद है गीता को है जीव।

चरण दास लखु आप में तो मैं तेरा पीव॥

१६ वीं शताब्दी।

अब तक सिवा चंद के हिन्दी का वास्तविक कोई कवि नहीं हुआ था, परन्तु इस शताब्दी में मानो कविता का स्रोत सा फूट

निकला। सूरदास, हितहरिवंश, तुलसीदास, केशवदास आदि महाकवियों ने इस शताब्दी को जगमगाते हुए स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य बना दिया है। कबीरदास का समय १५१२ ई० के लगभग है। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं, जिन में बीजक, साखी तथा पद मुख्य हैं, परन्तु उनमें बीजक के कबीर कृत होने में संदेह है। कबीरदास धर्म्म-सुधारक थे, अतः वे प्रायः बड़ी खरी बात कहते थे।

कासी का मैं बासी बाह्मन नाम मेरा परबीना।
एक बार हरि नाम बिसारा पकर जुलाहा कीना।
माई मेरे कौन बिनैगो ताना।
जो कबिरा कासी मरै तो रामै कौन निहोर।
अपने हाथ करै थापना अजया का सिर काटी।
सो पूजा घर लै गो माली मूरति कुत्तन चाटी।
दुनिया झूमर झामर अटकी।
दुनिया ऐसी बावरी पत्थर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजै जिहि का पीसा खाय।
चकिया सब रागन की रानी।
जिहिं की चकिया बन्द परी है तेहि की सबै भुलानी।
भोर होय के छघरी पहिले घर घर घरानी।
कबीरदास की उलटबाँसी भी बहुत प्रसिद्ध है।

इसी समय के पीछे भाषा के चार प्रसिद्ध कवियों का अभ्युदय हुआ, अर्थात् सूर, जायसी, कृपाराम और मीराबाई। सूरदास का जन्म प्रायः १४८४ ई० में हुआ था और वह प्रायः

१५६४ में स्वर्गवासी हुए। इनकी अष्ट-छाप में गणना थी। शेष सात कवि परमानन्ददास, गोविन्ददास, चतुर्भुजदास, कुम्भनदास, छीत स्वामी, कृष्ण दास, और नन्ददास साधारणतया उत्तम कविता करते थे। सूरदास का कविता-काल १५०४—१५६४ ई० तक है। इनका हाल थोड़े ही मास हुए सरस्वती में हमने विस्तारपूर्वक दिया है। इनका साहित्य भक्ति का एक अच्छा नमूना है, परन्तु वह भक्ति सख्यभाव की थी, न कि दास-भाव की। इन्होंने अपने रुचिकर विषयों का बड़ा ही विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है, यथा मान, नेत्र, उद्धव व्रजगमन, माखन-चोरी इत्यादि। बाललीला, कालीदमन, दावानल पान, कृष्ण-बिदा, रास आदि विषयों का इन्होंने अति ही श्लाघ्य वर्णन किया है। अरुचिकर वर्णनों को इन्होंने बहुत थोड़े में निपटा दिया है। इनकी कविता में साधारण छन्द बहुत हैं, सो, यदि कोई इनके ग्रन्थों को पढ़ कर ढाई तीन सौ पृष्ठों का एक संग्रह निकाल ले, तो वह बड़ी ही उत्कृष्ट पुस्तक बने। इन्होंने उपमा रूपक आदि भी बहुत ही उत्तम कहे हैं। सौर कविता ब्रज भाषा की मर्यादा है, और पूर्व समालोचकों ने इनको भाषा का सूर्य कहकर अपनी गुण-ग्राहकता दिखलाई है। इनकी कविता परम प्रसिद्ध है, अतः एक आध उदाहरण देकर लेख का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं है। इतने बड़े कवि होने पर भी सूरदासजी ऐसे नम्र थे कि गुसाईं विट्ठलनाथ द्वारा अपने अष्ट-छाप में रक्खे जाने पर इन्होंने यह कहा—

'थपि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप'। वास्तव में यदि अष्ट-

छाप में सूरदास जी न होते तो शायद शेष कवियों में से बहुतेरों के नाम भी अब तक मिट गये होते। इस समय पदों में कविता करनवाले सैकड़ों कवि हो गये हैं। हमने सूरदासजी को हिन्दीनवरत्न में दूसरा नम्बर दिया है। जायसी ने १५२० से १५४० तक पद्मावत बनाया। अखरावट में इन्होंने ज्ञान कहा है। इन्होंने युद्ध, तथा संयोग एवं वियोग शृंगार अच्छे कहे हैं और मुसलमानी पैग़म्बर एवं इमामों की वंदना करते हुए भी हिन्दू-देवी देवताओं के लिए कोई अश्रद्धासूचक शब्द नहीं लिखा। कृपाराम ने १५४२ ई० में दोहों का एक उत्तम ग्रन्थ बनाया। मीराबाई ने १५१७ ई० में जन्म लिया था और १५४६ में इनका स्वर्गवास हो गया। इन्होंने गीतगोविन्द की टीका, राग गोविन्द तथा नरसीजी का मायरा नामक तीन ग्रन्थ बनाये हैं।

इनके भजनों से अविचल भक्ति टपकती है और वे उत्तम हैं। इनका विवाह चित्तौर के महाराजकुमार भोजराज के साथ हुआ था, परन्तु यह कृष्णानन्द में उन्मत्त हो कर घर से निकल गईं और सदैव देव-मन्दिरों में अपने जगमोहक राग गाती फिरीं। स्वामी हितहरिवंश का जन्म १५०२ में हुआ था। यह महाराज राधावल्लभीय सम्प्रदाय के संस्थापक थे और इन्होंने संस्कृत एवं भाषा की उत्तमोत्तम कविता की है। इनका चौरासी नामक ग्रन्थ हमारे पास प्रेमलता नाम से है। इनकी भाषा-कविता में संस्कृत के विकट पद अथवा श्रुतिकटु शब्द भूल कर भी नहीं आने पाये हैं। उदाहरण—

ब्रज नव तरुणि कदम्ब मुकुट मनि श्यामा आजु बनी। तरल तिलक ताटंक गंड पर नासा जलज मनी॥ यों राजत कबरी गूँथित कच कनक कंज बदनी। चिकुर चन्द्रकनि बीच अरध विधु मानहु ग्रसत फनी॥

आजु बन नीको रास बनायो। पुलिन पवित्र सुभग जमुना तट मोहन बेनु बजायो॥ कल कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो॥

इनके पद सूरदासजी के उत्तम पदों की टक्कर के होते थे। दादूजी का जन्म १५४४ में हुआ था और १६०४ में ये स्वर्गवासी हुए। यह महाशय बड़े महात्मा थे, परन्तु काव्य-दृष्टि से इनकी कविता वैसी प्रशंसनीय नहीं है। इनके शिष्यों में सुन्दर-दास, रज्जब, जैगोपाल, जगन्नाथ, मोहनदास, तथा खेमदास मुख्य थे। इन सब में सुन्दरदास प्रशंसनीय थे।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने १५३३ में जन्म ग्रहण किया था और १६२४ में उनका स्वर्गवास हुआ। यह महाकवि हिन्दी के अगुआ हैं और इनकी कविता समुद्र के समान अथाह है। हमने इन्हें हिन्दी के नवरत्नों में प्रथम स्थान दिया है। केवल हिन्दी ही क्यों, वरन प्रायः संसार भर की भाषाओं में इस महाकवि के जोड़ के बहुत कवि न मिलेंगे। इस छोटे से निबंध में गोस्वामीजी के गुणों का कुछ भी समुचित वर्णन असम्भव है।

यह एक ही कविरत्न चार भिन्न भिन्न कवियों के बराबर है। दोहा चौपाई में यह कथा-प्रासंगिक कवियों का नेता है। कवितावली तथा हनुमानबाहुक में गोस्वामीजी ने मतिराम आदि के टक्कर

के कवित्त सवैया बनाये हैं, विनयपत्रिका में अवधी ब्रजभाषा और संस्कृतमिश्रित भाषा में परमोत्तम पद कहे हैं, और कृष्णगीतावली में ब्रजभाषा के पदरचयिता सूरदास आदि की समानता सी कर ली है। इतनी भिन्न भिन्न प्रकार की कविता में सफलता-पूर्वक उत्तम ग्रन्थ बनाने में कोई भी अन्य कवि समर्थ नहीं हुआ है। इनके बनाये २५ या ३० ग्रन्थ कहे जाते हैं, जिनमें से १९ या २० अवश्य इन्हीं के बनाये हैं। भक्ति का वर्णन गोस्वामीजी के समान किसी भाषा के किसी कवि ने नहीं किया है। शील-स्वभाव भी इन्होंने अच्छे निबाहे हैं और इनके व्याख्यानों की छटा अयोध्याकाण्ड में देख पड़ती है। कहीं भी पढ़ने से इनका कोई ग्रन्थ शिथिल नहीं देख पड़ता। इन पर १४० पृष्ठों का एक लेख "हिन्दी नवरत्न" में हम ने लिखा है। इनके प्रेमियों को उसे पढ़ना चाहिए। यहाँ अधिक लिखने का अवकाश नहीं है। नाभादास ने इन्हें भक्तमाल का सुमेरु माना था। नन्ददासजी इनके भाई थे। उनकी भी कविता मनोहर है।

नाभादास ने भक्तमाल नामक ग्रन्थ में बहुत से भक्तों का वर्णन छप्पय छन्दों में किया है। महाकवि केशवदास के जन्म और मरणकाल अनुमान १५५२ और १६१२ हैं। रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, विज्ञानगीता, वीरसिंह देवचरित्र, रामालं-कृत-मञ्जरी (पिंगल) नामक इनके ६ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। रीति के प्रथम आचार्य्य यही हैं और इनकी कविता परम सराहनीय है। हमने इनको हिन्दी नवरत्नों में स्थान दिया है। इनकी कविता कुछ कठिन हो गई है, यहाँ तक कि "कवि का दीन न

चहैं बिदाई। पूछैं केशव की कविताई," वाली कहावत आज तक प्रसिद्ध है। इनकी भाषा विशेषतया संस्कृत-मिश्रित है। यथा—

आसावरी माणिक कुम्भ शोभै अशोक लग्ना वन देवता सी।
पलाशमाला कुसुमालि मद्ध्ये बसन्तलक्ष्मी शुभ लक्षणा सी॥
आरक्त-पत्रा शुभचित्रपुत्री मनो बिराजै अति चारु वेषा।
सम्पूर्ण सिन्दूर प्रभास कै धौं गणेश भालस्थल चन्द्र रेषा॥

तुलसीदास और केशवदास हिन्दी की कविता करने में कुछ लज्जा सी बोध करते थे। यथा—

भाषा भनित मोरि मति थोरी।
हँसिबे जोग हँसे नहिँ खोरी॥ (तुलसीदास)
भाषा बोलि न जानहीं जिन के कुल के दास।
भाषा कवि भो मन्दमति तेहि कुल केशवदास॥

महाराजा वीरबल ने भी केशवदास का बड़ा मान किया था। इनके भाई बलभद्र मिश्र ने केवल एक ग्रन्थ नखशिख का टकसाली बनाया है। इस शताब्दी में तानसेन, प्रवीणराय पातुरि, फ़ैज़ी, अबुल फ़ज़्ल, वीरबल (ब्रह्म), मुबारक, रसखानि, अकबर बादशाह, नरहरि, रहीम, गंग, होलराय आदि भी बड़े प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। होलराय के यहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी गये थे, तब इन्होंने यह आधा दोहा पढ़ा।

लोटा तुलसीदास को लाख टका को मोल।
इस पर गोस्वामी जी ने कहा,
मोल तोल कुछ है नहीं लेहु राय कवि होल।

इस लोटे को होलराय ने मूर्ति की भाँति एक चबूतरे पर स्थापित किया और होलपुर में यह आज तक पूजा जाता है ।

१७ वीं शताब्दी ।

इस शताब्दी में भी बड़े बड़े विशद कवि हो गये हैं ; यथा सेनापति, बिहारी, भूषण, मतिराम, लाल, देव इत्यादि । सेनापति ने १६५० ई० में साहित्यरत्नाकर नामक एक परमोत्तम ग्रन्थ बनाया, जिसमें षटऋतु, रामायण, श्लेष, शृंगार और भक्ति का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है । सेनापति महाशय धर्म-सुधारक थे, अतः इनकी कविता में गम्भीर विषयों का अधिक समारोह है, परन्तु यह महाशय, सुन्दर, कोमल और हास्यपूर्ण वर्णन भी अच्छा कर सके हैं ।

बिहारी ने १६६३ ई० में सतसई समाप्त की । इस ग्रन्थ में ठपैची खूब आई है । कविता के प्रायः सब गुण इस ग्रन्थरत्न में वर्तमान हैं । इनकी बारीकबीनी परम प्रशंसनीय है । उर्दू शायरी से मिलती जुलती बिहारी ही की कविता है और इस कवि ने उर्दू शायरी के तलाज़िमों की भी हद कर दी है । इन्होंने अपने दोहों में बहुत सा मतलब कहा है यहाँ तक कि एक एक दोहे में डेढ़ डेढ़ घंटे की बात चीत भर दी है । यथा—

> बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय ।
> सौहँ करै नैनन हँसै देन कहै नटि जाय ॥
> ज्यों ज्यों पट झटकति बकति हटति नचावति नैन ।
> त्यों त्यों परम उदारऊ फगुवा देत बनै न ॥

कविगण उपमायें देते हैं, परन्तु बिहारी ने उपमाओं के फल भी कहे हैं।

पत्रा ही तिथि पाइये वा घर के चहुँपास।
नित प्रति पूनोई रहै आनन ओप उजास॥
अंग अंग प्रतिबिम्ब परि दर्पन से सब गात।
दोहरे तेहरे चौहरे भूषण जाने जात॥

बिहारीलालजी का हिन्दी-नवरत्नों में उच्च आसन है। भूषण महाराज ने १६७३ में शिवराजभूषण बनाया और इस समय के पीछे अपने अन्य ग्रन्थ भी रचे। इनके ग्रन्थों में प्राबल्य, मान और जातीयता की छटा देख पड़ती है। इनके सभी प्राप्य ग्रन्थों का सम्पादन हमने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ग्रन्थमाला में किया है। यहाँ विशेष नहीं लिखते। भूषणजी बड़े ही उत्कट कवि थे और हिन्दी नवरत्नों में यह भी सम्मिलित हैं।

भूषण के अनुज मतिराम ने १६८० के लगभग रसराज बनाया। इनकी भाषा बहुत ही उत्तम होती थी यहाँ तक कि सिवा देवजी के कोई भी कवि मतिराम के बराबर इस गुण में नहीं पहुँचता। उदाहरण—

गुच्छन को अवतंस लसै सित पच्छन अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर पल्लव सो मतिराम सोहायो॥
गुंजन को उर मंजुल माल निकुंजन ते कढ़ि बाहर आयो।
आजु को रूप लखे नँदलाल को नैनन को फल आजुहि पायो॥

मतिरामजी ने भी हिन्दी के नवरत्नों में स्थान पाया है। लाल कवि ने इसी समय से छत्रप्रकाश नामक ग्रन्थ प्रारम्भ किया, जो १७०७ में समाप्त हुआ। इसकी उद्दंडता परम प्रशंसनीय है।

जिस संवत् में भूषण कवि ने शिवराजभूषण समाप्त किया, उसी में महाकवि देवदत्त का जन्म हुआ। यह कवि भाषा का राजा था। इसने भाषा सबसे उत्तम नगीना सी रख दी है और विषयों के बाहुल्य में भी प्रशंसनीय प्रभुता दिखाई है। शृंगार, वैराग्य, कथा (देवचरित), नाटक ("देवमाया प्रपंच"), जाति-भेद, देशभेद, रागरागिनी, षट्ऋतु, अष्टयाम आदि सभी विषय सफलता-पूर्वक इसने कहे हैं। देव ने वृक्षों पर तक वृक्षविलास नामक एक बड़ा ग्रन्थ लिख डाला है। रूप-वर्णन में इन्होंने तसवीरें खड़ी कर दी हैं और अमीरी के साज-सामानों का वर्णन इनके सदृश कोई कवि नहीं कर सका है। शृंगार के मानो यह आचार्य ही थे; क्या संयोग, क्या वियोग, दोनों का वर्णन इनका दर्शनीय है। इतने प्रकार के और इतने सर्वांगपूर्ण रीतिग्रन्थ किसी कवि ने नहीं कहे। इनके विशेषण कभी कभी एक पूरी पंक्ति भर के हो जाते हैं। यथा—

"नूपुर संजुत मंजु मनोहर जावक रंजित कंज से पायन"। क़समें भी इस कवि ने ख़ूब ही खिलाई हैं—

बाँभन की सौं बबा कि सौं मोहन मोहिँ गऊ कि सौं गोरस की सौं। कैसी कही फिरि तो कहौ कान्ह अबै कछू हौंहूँ कका कि सौं कैहौं।

अनुप्रास में यमकादि का जितना व्यवहार सफलतापूर्वक इन्होंने किया है, दूसरे ने नहीं किया। उदाहरण—

छपद छबीले रस पीवत सदीव छीव लम्पट निपट नेह कपट दुरे परत। भंग भये मध्य अंग डुलत खुलत साँस मृदुल चरन चारु धरनि धरे परत॥ देवमधुकर टूक टूकत मधूक धोखे माधवी मधुर मधुलालच लरे परत। दुहुकर जैसे जलरुहु परसत इहाँ मुँहु पर झाँई परे पुहुप झरे परत॥

ब्राह्मणी (जाति-विलास से)।

गंग तरंगनि बीच बरंगनि ठाढ़ी करै जपुरूप उदोती।
देव दिवाकर की किरनैं निकसैं विकसैं मुँख पंकज जोती॥

खतरानी।

ज्यों बिनही गुन अंक लिखै घुन त्यों करि कै करता कर झारयो। वारिये कोरि सची रतिरानी इतो खतरानी को रूप निहारयो॥

देवजी को हिन्दी-नवरत्नों में तीसरा स्थान हमने दिया है। इसी समय आलम कवि हुए हैं। यह ब्राह्मण थे। एक बार इन्होंने यह पद बनाया—

कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन। फिर दूसरा पद इनके बनाये उस समय न बना। इन्होंने यह काग़ज़ का टुकड़ा पाग में बाँध लिया। संयोग-वश यही पाग रँगने के लिए वे सेख नामक रँगरेज़िन के यहाँ दे आये। सेख ने वह गाँठ खोली और दोहे का चरण पढ़कर उसका दूसरा चरण यों लिख दिया—

कटि को कंचन काटि बिधि कुचन मध्य धरि दीन। यह पद

पढ़कर आलम के हृदय में सेख के ऊपर इतना प्रेम उमग आया कि इन्होंने मुसलमान होकर उसके साथ विवाह कर लिया। सेख को लोग "आलम की औरत" कहा करते थे, अतः उसने अपने पुत्र का नाम "जहान" रक्खा और जब कोई उसको आलम की स्त्री कह कर मज़ाक़ करता तो अपने को "जहान की माँ" बतलाती थी। आलम ने वियोग शृंगार बहुत उत्तम कहा है। बोधा, ठाकुर, नेवाज, घनानन्द और आलम ये पाँच बड़े प्रेमी कवि भाषा में हुए हैं। उदाहरण—

जा थर कीन्हे विहार अनेकन ता थर काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥
आलम जौन से कुंजन मैं करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

इस शताब्दी में प्राणनाथ, सुन्दरदास, कुलपति, भड्डरी, महाराजा जसवन्तसिंह, महाराजा अजीतसिंह, श्रीपति, बैताल, रघुनाथ, महाराणा राजसिंह, घासीराम, महाराजा छत्रसाल, कालिदास, कवीन्द्र, नरोत्तमदास, सहजराम आदि भी बड़े बड़े कवि हो गये हैं। घाघ ने भी ग्रामीण भाषा में मोटिया नीति अच्छी कही है। यथा—

चन्ना पहिरे हरु ज्वातैं औ बोझु धरे अँठिलायँ।
घाघ कहै ई तीनिउ भकुआ पीसति पान चबायँ॥
मुये चाम ते चाम कटावैं सँकरी भुँइ माँ स्वावैं।
घाघ कहै ई तीनिउ भकुवा उढ़रि जाय तौ रोववैं॥

बेनी कवि इसी समय में एक प्रसिद्ध भँड़ौआकार होगया है। उदाहरण—

चींटी की चलावै को मसा के मुख आपु जायँ
　　साँस की पवन लागे कोसन भगत हैं।
ऐनक लगाए मरु मरु कै निहारे परैं
　　अनु परमानु की समानता खगत हैं॥
बेनी कवि कहै हाल कहाँ लौं बखान करौं
　　मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत हैं।
ऐसे आम दीने दयाराम मनमोद करि
　　जाके आगे सरसौं सुमेर से लगत हैं॥
चूक तें सरस चोखे लूकसी लगावैं हिए
　　हूक उपजावैं ए अपूरब अराम के।
रस को न लेस रेसा चोपी है हमेस
　　तजि दीने सब देस बिललाने परे घाम के॥
बुरे बदसूरत बिलाने बदबोयदार
　　बेनी कवि बकला बनाए मनौ चाम के।
परम निकाम के लै आए बिन दाम के
　　हैं निपट हराम के ए आम दयाराम के॥ २॥

भँडौवाकारों का यह कवि अगुवा है।

१८ वीं शताब्दी।

इस शताब्दी में कई उत्कृष्ट कवि हो गये हैं, परन्तु बहुत निकलता हुआ कोई भी नहीं था। शम्भुनाथ मिश्र, घनानन्द, दूलह,

देवकीनन्दन, वैरीसाल, महाराजा नागरीदास, गंजन, दास, गुरदत्तसिंह, रसलीन, सुखदेव, ठाकुर, पद्माकर, प्रताप, बोधा, प्रियादास, सूदन, सोमनाथ, हरिकेश, किशोर, गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मणिदेव, तोष, ग्वाल आदि बड़े बड़े प्रवीण कवि इस शताब्दी में वर्तमान थे, परन्तु इनमें से किसी भी कवि को नवरत्न में परिगणित होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। सूरति मिश्र ने इसी शताब्दी में गद्य काव्य में बैतालपचीसी नामक एक ग्रन्थ बनाया। यही कवि गद्य का प्रथम वास्तविक लेखक हुआ है। गंजन कृत क़मुरुद्दीं खाँ विलास, दास-कृत काव्यनिर्णय, तथा शृंगार-निर्णय, गुरदत्तसतसई, सुखदेव के पिंगल, बोधा ठाकुर एवं घनानन्द की प्रेम-कविता, पद्माकर की पद्मैत्री, प्रताप की मतिराम से टक्कर लेनेवाली भाषा, सूदन-कृत वीरकाव्य, नागरीदास की भक्ति और हरिकेश की उद्दंडता इस काल को भी परम पूज्य बनाती हैं। उदाहरण—

डह डहे डंकन को सबद निसंक होत
बहबही सत्रुन की सेना आनि सरकी।
हाथिन को झुंड मारू राग को उमंड इतै
चम्पति को नन्द चढ़यो उमड़ि समर की॥
कहै हरिकेस काली ताली दै नचति ज्यों ज्यों
लाली परसति छत्रसाल मुखवर की।
फरकि फरकि उठैं बाहुअत्र बाहिबे को
करकि करकि उठैं कड़ी बखतर की॥

१६ वीं शताब्दी।

इस शताब्दी में सर्दार, शेखर, पजनेश, गनेशपरसाद, लल्लूलाल, सदल मिश्र, बेनी प्रवीण, रामचन्द्र, सेवक, लेखराज, शिवसिंह सेंगर, द्विजदेव, राजा शिवप्रसाद, प्रतापनारायण मिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह आदि बड़े बड़े कवि और लेखक होगये हैं। शेखर का हम्मीरहठ, पजनेश के उद्दंड छन्द, गनेशप्रसाद की लावनियाँ और रामचन्द्र की चमत्कारी कविता परम प्रशंसनीय हैं। बेनीप्रवीण की कविता बहुत ही विशद है। शिवसिंहजी ने कवियों के चरित्रादिक लिखने में प्रशंसनीय श्रम किया है। लल्लूलाल ने व्रजभाषा को खड़ी बोली से मिलाकर प्रेमसागर गद्यात्मक काव्य-ग्रन्थ लिखा है। सदल मिश्र ने उन्हीं के साथ साथ खड़ी बोली में गद्य लिखा है।

राजा शिवप्रसाद ने उर्दू-मिश्रित हिन्दी लिखी और पाठशालाओं में हिन्दी का विशेष आदर करवाया। राजा लक्ष्मणसिंह ने पहले पहल उत्तम गद्यात्मक ग्रन्थ लिखा, परन्तु इस शताब्दी के शृंगारस्वरूप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने १८५० में जन्म ग्रहण कर १८८५ पर्यन्त पीयूष-वर्षिणी कविता की। वर्तमान साधु गद्य के वास्तविक उन्नायक यही महाशय हुए हैं। नाटकों को तो मानों इन्होंने जन्म ही दिया। हिन्दी का उपकार जितना इनसे हुआ, उतना किसी दूसरे से नहीं हो सका। देशहितैषिता ने तो मानो पृथ्वी पर इन्हीं के स्वरूप में अवतार लिया था। इनकी कविता में हास्य और प्रेम बहुत अच्छे आये

हैं। सत्रहवीं शताब्दी के पीछे केवल यही एक कवि हिन्दी-नवरत्नों में गिना गया है।

इसी शताब्दी में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आर्यसमाज संस्थापन और वेदों के उद्धार में प्रशंसनीय श्रम और आत्मसमर्पण किया। हिन्दी को भी इनकी और इनके अनुयायियों की कृपा से विशेष सहायता मिली और आगे भी मिलने की आशा है।

वर्त्तमान काल में गद्य उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है, परन्तु पद्य में परमोत्तम कवि एक भी नहीं देख पड़ता। २० वीं शताब्दी के विषय में कुछ समालोचना करना हम उचित नहीं समझते। हिन्दी में महाराणा कुम्भकरण, महाराजा छत्रसाल और राव बुद्ध कवियों के बड़े आश्रयदाता हो गये हैं। भाषा कविता में प्रायः युद्ध, भक्ति, नायिकाभेद, प्रेम, रीति, अलंकार, नखशिख, षट्ऋतु, रामकथा, कृष्णकथा, स्फुट कथा, आदि विषयों पर कविता हुई है।

हमारी कविता की भाषायें प्रायः व्रजभाषा, प्राकृत-मिश्रित भाषा, बैसवारी, बुँदेलखंडी, राजस्थानी, खड़ी बोली आदि हैं। खड़ी बोली में सबसे पहले भूषण ने १७ वीं शताब्दी में कुछ कविता की। उसी शताब्दी में रघुनाथ कवि ने भी खड़ी बोली में कुछ छन्द कहे, और सीतल कवि ने केवल खड़ी बोली में "गुलज़ार चमन" नामक एक अद्वितीय ग्रन्थ रचा। वर्तमान समय में भी बहुत से कवि खड़ी बोली में उत्तम कविता करते हैं। गद्य में सबसे प्रथम लेख दान-पत्रादि मिलते हैं। गद्य-ग्रंथ प्रायः सबसे प्रथम १६ वीं शताब्दी में सूरदास के समकालीन श्री स्वामी

गोकुलनाथजी ने बनाये, जो बिट्ठलनाथजी के पुत्र और महर्षि बल्लभाचार्य्य के पौत्र थे। इनके ग्रंथों के नाम बावन और दो सौ चौरासी वैष्णवों की वार्ता हैं। ये बड़े ग्रंथ हैं और इनकी भाषा व्रज भाषा है, परन्तु यह काव्य-ग्रंथ नहीं है और साधारण बोल चाल में इनके द्वारा वैष्णवों का वर्णन लिखा गया है। गद्य का वास्तविक प्रथम कवि सूरति मिश्र १८ वीं शताब्दी में हुआ।

समाचार-पत्रों का प्रचार विशेषतया भारतेन्दुजी के समय से हुआ, और तबसे उनकी संख्या और भाषा में उत्तरोत्तर उन्नति होती आई है। आजकल भाषा में कई अच्छे अच्छे मासिक पत्र, अर्द्धमासिक पत्र, और साप्ताहिक एवं अर्द्ध साप्ताहिक पत्र निकल रहे हैं और दैनिक पत्र भी एकाध हैं। यदि इसी भाँति समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ उन्नति करती गईं, तो आशा है कि थोड़े समय में भाषा उन्नत अवस्था में हो जायगी। सभाएँ भी कई अच्छा काम कर रही हैं।

इतिहास की ओर भी कुछ लोगों की रुचि हुई है और कुछ इतिहास-ग्रंथ लिखे भी गये हैं। हमारा संकल्प पृथ्वी भर के इतिहास प्रकाशित करने का है। इन सबका साधारण रीति से भी वर्णन करने से लेख का बहुत विस्तार हो जाता, अतः दिग्दर्शन मात्र से संतोष किया गया। निदान हिन्दी-भाषा पद्य साहित्य में ख़ूब परिपूर्ण है और गद्य में भी उन्नति करती जाती है। अब समयोपयोगी काव्य और कला के ग्रन्थों की आवश्यकता है।

—:o:—

तृतीय पुष्प ।

हिन्दी-साहित्य पर उसके प्रधान सहायकों के प्रभाव

(सं० १९७१) ।

जैसा कि प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी पर विदित है, इस भाषा का जन्म संवत् ७०० के लगभग हुआ था । उस समय इस का प्राकृत भाषा से विशेष सम्पर्क था और सिवा साधारण लेखों के इस में तत्कालीन कोई साहित्य-ग्रन्थ नहीं मिलता । समय के साथ इसकी उन्नति होती गई यहाँ तक कि पृथ्वीराज के काल में ही इस में प्रचुरता से साहित्य-ग्रन्थ बनने लगे । चन्द-कृत रासो देखने से विदित होता है कि उस काल में राजदरबारों में बहुधा हिन्दी के कवि रहा करते थे, किन्तु समय के उलट फेर से अब उनके ग्रन्थ दृष्टिगत नहीं होते हैं। अतः हिन्दी-साहित्य के प्रथम सहायक राजागण हुए, और ये ही कई शताब्दियों तक इसके प्रधान सहायक रहे । इसका प्रभाव यह पड़ा कि उस समय प्रधानता से और उसके पीछे भी न्यूनाधिक प्रकारेण हमारे साहित्य में राजयश-वर्णन हुआ और हज़ारों ग्रन्थ इस प्रकार के बन गये । इनमें से एक बृहदंश समय के साथ लुप्त हो गया, किन्तु अब भी सैकड़ों वरन् हज़ारों नृप-यश-कीर्त्तन के अच्छे बुरे ग्रन्थ प्रस्तुत हैं । वीर, भयानक, रौद्र और शान्ति रसों का इन ग्रन्थों द्वारा हमारी कविता में अच्छा समावेश हुआ ।

समय के साथ बहुत से भक्त कवि भी हुए, जिन्होंने भक्ति पक्ष के भी अच्छे अच्छे ग्रन्थ रचे। फिर भी वैष्णव सम्प्रदायों के उत्थान के पूर्व हमारे यहाँ भक्ति का पक्ष कुछ निर्बल रहा। भक्तिपक्ष उत्तरीय भारत में वैष्णवता से बहुत सबल हुआ। इसकी राम और कृष्ण की भक्ति सम्बन्धिनी दो प्रधान शाखायें हुईं। भक्ति-पक्ष के प्रथम उन्नायक महात्मा रामानुज हुए, जिनको थियासफ़िस्ट लोग ईसा का अवतार समझते हैं। इनके शिष्यों में महात्मा रामानन्द प्रधान हुए। प्रसिद्ध कवि और भक्त महात्मा कबीरदास इन्हीं के शिष्य थे। भक्त कवियों में सब से पहला महाकवि यही महात्मा हुआ। पीछे से रामानन्दी मत दक्षिण से फैलता हुआ अयोध्या तक पहुँचा और महात्मा तुलसीदास ने इसे अपना कर वह ज्योति प्रदान की, जिससे संसार में कोई भी भाषा अभिमान कर सकती है। व्रजमंडल में चार प्रधान वैष्णव-सम्प्रदाय हुए, अर्थात् विष्णु, माध्व, निम्बार्क और रामानुजीय। महात्मा वल्लभाचार्य्य विष्णु-सम्प्रदाय के अन्तर्गत थे। उनका शाखा-सम्प्रदाय वल्लभीय कहलाता है। महात्मा चैतन्य महाप्रभु और हित-हरिवंश माध्व सम्प्रदाय के अन्तर्गत थे। महाप्रभु जी का शाखा-सम्प्रदाय गौड़ीय और हित जी का हितअनन्य सम्प्रदाय कहलाता है। निम्बार्क सम्प्रदाय में महात्मा हरिदास प्रधान थे, जिन्होंने टट्टियों वाली शाखा चलाई। रामानुजीय सम्प्रदाय के अन्तर्गत रामानन्दी है, जिस में स्वयं गोस्वामी तुलसीदास हुए, जैसा कि अभी कहा जा चुका है।

वल्लभीय सम्प्रदाय में अष्टछाप वाले प्रसिद्ध कवि हुए, जिनमें महात्मा सूरदास प्रधान हैं। इन सम्प्रदायों के अनुयायी सैकड़ों उत्कृष्ट कवि हुए हैं; जिनकी रचनाओं से भाषा-भांडार भक्तिपक्ष से भरा हुआ है और यह रचनायें सर्वतो भावेन प्रशंसनीय हैं। अतः वैष्णवता हमारी भाषा की दूसरी प्रधान सहायिका है। इसके द्वारा धर्म्मसम्बन्धी कथा-प्रासंगिक ग्रन्थ भी बहुत बने। इन भक्तवरों में श्री कृष्णचन्द्र की भक्ति प्रधान थी, जिसके कारण रास, माखनचोरी आदि शृंगारिक विषयों की भी हमारे यहाँ भक्त कवियों के साथ ही साथ प्रधानता हो गई। हम देख चुके हैं कि साहित्योन्नति के प्रथम प्रधान कारण राजा लोग थे। वे भी शृंगारी विषयों को पसन्द करते थे। अतः भक्त कवि तो शृंगारात्मक साहित्य रचते ही थे, अभक्त कवियों और राजसेवियों ने भी भक्ति की आड़ में शृंगार-काव्य की धूम मचा दी। इस प्रकार से शृंगार-रस ने हमारे साहित्य का ऐसा पीछा पकड़ा है कि उससे छुटकारा होता नहीं देख पड़ता। महाकवि देव, बिहारी, मतिराम आदि ने अन्य रसों के साथ शृंगार का भी बड़ा सम्मान किया। फिर भी यदि वैष्णवता और राजाओं की सहायता न होती, तो हमारा साहित्य आज बड़ी ही शोचनीय अवस्था में होता। शिवाजी, छत्रसाल आदि शूरों के समय में वीर-रस का भी अच्छा मान हुआ और इसके ग्रन्थ बहुत बने, जिन में से सैकड़ों उत्कृष्ट भी हैं। पीछे से भारत में कादरता के प्रबल प्रचार से इन ग्रन्थ-रत्नों का तादृश सत्कार नहीं हुआ, जिस से इन में से

बहुत से लुप्त हो गये। फिर भी अद्यापि ऐसे सैकड़ों ग्रन्थ प्रस्तुत हैं।

अतः अब तक राजाओं और वैष्णवों की सहानुभूति से ही हमारी कविता को लाभ पहुँचता था, किन्तु अब एक अन्य परम प्रधान सहायता उसे मिलने वाली थी, जिसके लिए वह माने पहले से ही तैयारियाँ कर रही थी। अब तक राजाओं और ऋषियों की कृपा से हमारा साहित्य शृंगार, वीर, शान्ति और कथा-प्रसंग के विषयों में परिपूर्ण हो चुका था और देव, मतिराम, प्रताप आदि सुकवियों के हाथ में वह अपने भाषा-सम्बन्धी माधुर्य, प्रसाद आदि गुणों की भी बहुत अच्छी उन्नति कर चुका था, किन्तु गद्य-विभाग अब तक प्रायः शून्य था। संवत् ७०० के लगभग हिन्दी का जन्म हुआ था, १२२५ के लगभग उसमें पद्य काव्य की बहुतायत हुई थी, १६२५ के लगभग भक्ति वृद्धि के साथ साहित्य के प्रधान अंगों की पूर्ति हुई थी, और १८५० तक देव, दास, मतिराम आदि के सहारे भाषा-सम्बन्धी उन्नति प्रायः पूर्णता को पहुँच चुकी थी, किन्तु फिर भी गद्य-विभाग शून्यप्राय रह गया था। संवत् १४०७ में महात्मा गोरखनाथ ने गद्य में ग्रन्थ-रचना अवश्य की थी, और बिट्ठलनाथ, गोकुलनाथ, गंग, जटमल आदि ने १६०० से १६८० तक ब्रजभाषा और खड़ी बोली गद्य में ग्रन्थ अवश्य रचे थे, किन्तु इन ग्रन्थों में साहित्यांश बहुत कम था। अब सं० १९२५ के लगभग से गद्योन्नति का प्रारम्भ होने वाला था, सो लल्लूलाल एवं सदल मिश्र ने १८६० संवत् से ही उस का श्रीगणेश कर दिया।

सो अब तक हमारे यहाँ पद्य ही पद्य था और इसलिए सांसारिक विषयों की ओर हमारी भाषा का ध्यान ही नहीं गया था। ऐसे विषयों का प्रचार गद्य द्वारा ही होता है। ये साधारण कामकाज के विषय हैं, जिनका पद्य से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। अब तक हमारे यहाँ जीवन-होड़ (struggle for existence) का सिक्का नहीं जमा था, किन्तु अँगरेज़ी राज्य के प्रभाव से शान्ति बढ़ी, जिस से सभी प्रकार की सामाजिक उन्नतियों का समय आया। इन्हीं के कारण जीवन-होड़ हमारे यहाँ भी स्थापित हो रहा है और लोगों को सुख से शरीर-यात्रा और गृहस्थी चलाने के लिये भाँति भाँति से परिश्रम करने की आवश्यकता हुई है। पाश्चात्य लोगों की बढ़ी हुई सांसारिक सभ्यता देख कर हम में भी संसारीपन बढ़ रहा है, जिससे भाँति भाँति की नई चीज़ों और आरामों की हमें भी चाह हो रही है। इन सब कारणों से कार्य्यकर्त्ताओं की संख्या बढ़ रही है और गद्य का अधिकाधिक प्रचार दिनों दिन आवश्यक होता जाता है। इन कारणों से इन ५० वर्षों में ही गद्य के इतने अधिक ग्रन्थ रचे जा चुके हैं, जितने कि पूर्व काल के किन्हीं दो सौ वर्षों में भी गद्य और पद्य, दोनों विभागों में न बने होंगे। इस प्रकार इन थोड़े ही से दिनों में हमारी भाषा का यह भारी अभाव भी दूर सा हो गया है या उसके दूर हो जाने की बहुत जल्द आशा है। अतः हमारे साहित्य की तीसरी प्रधान सहायिका वर्त्तमान पाश्चात्य सभ्यता है, जिस ने संसारीपने को बढ़ा कर हमारे गद्य काव्य को उन्नत किया है और भविष्य में और भी करेगी। इसी समय में स्वामी

दयानन्द सरस्वती ने आर्य्य समाज को स्थापित करके एक प्रकार से हिन्दी की भारी उन्नति की। यह मत हम में उस समय चला है जब कि हम पूर्णतया पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में थे। इस से इस मत में सांसारिक उन्नति के भी बहुत से साधन हैं। इन्हीं साधनों में से गद्योन्नति भी एक है।

अतः हमारे साहित्य के तीन प्रधान सहायक हुए हैं, अर्थात् राजागण, वैष्णवता और पाश्चात्य सभ्यता। इन में से प्रथम दो ने पद्य की उन्नति की और तृतीय ने गद्य की। प्रथम दोनों के कारण अवधी भाषा का भी कुछ मान हुआ किन्तु ब्रजभाषा की पूर्ण प्रधानता रही, परन्तु तृतीय के कारण अब खड़ी बोली का बल बढ़ा है। गद्य को तो इसने अपनालिया ही है, अब पद्य में भी इस का शुभ प्रभाव बढ़ता देख पड़ता है। आशा है कि समय पर पद्य में भी हमारे यहाँ पाश्चात्य प्रकार की रचना होने लगेगी, और इस से सिवा लाभ के हम किसी प्रकार की हानि भी नहीं देखते। पूर्वीय प्रथा की साहित्य-रचना हमारे यहाँ ख़ूब बहुतायत से भरी पड़ी है, सो यदि पाश्चात्य-प्रणाली के गद्य, पद्य एवं नाटक-ग्रन्थ भी हो जावें, तो हमारी भाषा-कविता में पूर्णता अच्छी आ जावे। इस समय भी हमारे यहाँ सैकड़ों विषयों पर सहस्रों ग्रन्थ प्रस्तुत हैं, किन्तु नूतन शैली की रचनाओं की ऊनता से अँगरेज़ी पढ़े लोग उनके अस्तित्व से भी परिचित नहीं हैं और वे शोक के साथ अपनी मातृभाषा को बहुत ही दरिद्रा समझते हैं। हमारा साहित्य दरिद्र नहीं है किन्तु कुछ कुछ इकंगीपन लिये हुए है। इस समय सर्व-

व्यापकता भी हमारे यहाँ आ रही है और आशा है कि इस तृतीय सहायक से वह पूर्णता को पहुँचेगा। एवमस्तु ! एवमस्तु !! एवमस्तु !!!

चौथा पुष्प ।

प्राचीन हिन्दी में गद्य * (सं० १९६९)।

यद्यपि हिन्दी-भाषा का जन्म विक्रमीय आठवीं शताब्दी के लगभग हुआ था, तथापि या तो इसमें गद्य-लेखक बहुत दिन तक हुए ही नहीं, अथवा उनके गद्य ही काल की कुटिलता से लुप्त हो गये। पहले गद्य-लेखक, जिनके ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं, महात्मा गोरखनाथ हैं, जिनका काल सं० १४०७ के लगभग माना गया है। इस महात्मा के प्रथम हिन्दी गद्य के उदाहरण-स्वरूप महाराजा पृथ्वीराज आदि के आज्ञापत्र ही हैं, जो पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या की कृपा से पठित समाज को प्राप्त हुए हैं। ऐसे चिट्ठी, परवानों आदि की नौ नक़लें नागरीप्रचारिणी सभा की प्रथम खोज रिपोर्ट में प्रकाशित हुई हैं। उनमें से दो की यहाँ नक़ल दी जाती है, जो अनन्द सं० ११४५ की हैं। इस सं० में ९० जोड़ने से विक्रमीय संवत् निकलता है। सब से पहला आज्ञापत्र अनन्द संवत् ११३९ का है।

"श्रीहरी एकलिंगो जयति।

श्रो श्री चीत्रकूट बाई साहब श्रीप्रथुकुंवर बाई का बारणागाम मोई अचारज भाई रुसीकेसजी बांच जो अपन श्री दलीसूं भाई

---

* यह लेख तृतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिए लिखा गया था। इस के लेखक हमारे ज्येष्ठ भ्राता पं० गणेशविहारी मिश्र भी हैं।

श्रीलंगरी रां जी आआ है जो श्री दलीसूं वी हजूर को वी खास रुका आयो है जो मारो वी पदारवा की सीखवी है नेदली काका जीर बेद है जो का (गद वाच) त चला आव जो थानेमा आगे जाणो । पड़ेगा था के वास्ते डाक बेठी है श्रीहजूर वी हुक्म बेगियो है जो थे ताकीद सूं आव

जो थारे मंदर को व्याव कामारथ अबार कारांगादली सु आ पाछे करांगा और थे सबेरे दन अटे आंघसो । संवत् ११ (४५) चैत सुदी १३ ॥"

"सही

श्री श्री चित्रकोट महाराज धीराज तपेराज श्रीरावर जी श्री श्री समरसी बचनातु दाअमा आचारज ठाकुर रुसीकेस कस्य गाम मोईरो षेडो थाने मआकीदो लोग भोग सुदीया आवादान कर जो जमाषात्री सो आवादान करजे थारे हे दुवे घवा मुकननाथ...समत ११४५ जेठ सुदी १३"

अर्थ

श्रीहरि एकलिंग की जय हो ।

मोई ग्रामनिवासी आचार्य भाई हृषीकेशजी को चित्तौर से बाई साहब श्रीपृथाकुंवरि बाई का सम्वाद बांचना । आगे भाई श्रीलं-गरी राय जी दिल्ली से आये हैं और श्रीदिल्ली से हजूर का ख़ास रुक्का भी आया है, जिससे मुझको भी दिल्ली जाने की आज्ञा मिली है । काकाजी अस्वस्थ हैं, सो कागज बांचते चले आओ । तुमको हमसे पहले जाना पड़ेगा । तुम्हारे वास्ते डाक बैठाई गई है । श्रीहजूर (समरसिंह) ने भी आज्ञा दी है, सो ताकीद जान कर

जल्दी आओ । जो तुम्हारे मन्दिर की स्थापना जल्दी स्थिर हुई है, सो हम लोगों के दिल्ली से लैाटने पर होगी । इतनी जल्दी आओ कि दिन का सबेरा वहाँ हो तो शाम यहाँ हो । मिती चैत सुदी १३ संवत् ११४५ ।

सही ।

महाराजाधिराज आदेशकर्ता श्रीरावलजी श्री श्री समरसिंहजी श्री श्रीचित्तौर नरेश की आज्ञा से आचारज ठाकुर रूषीकेश को (दियागया)। मुई खेरे का ग्राम तुमको दान में दिया गया। उसको हरा भरा आबाद करो । जमाखातिर से इसको हराभरा और आबाद करो । वह तुम्हारा है । दुबे घवा मुकुन्दनाथ द्वारा आज्ञा हुई । मिती जेठ सुदी १३ संवत् ११४५ ।

उपर्युक्त भाषा संवत् १२३५ की है, जिसका प्रयोग राजपूताने में होता था । अब साधारण मनुष्य को इसका समझना बहुत कठिन है । यह साहित्य की उच्च भाषा न हो कर रोज़ाना बोलचाल की बोली है । इसके पीछे संवत् १४०७ तक किसी प्रकार की गद्य भाषा का अब तक पता नहीं चला है । हमारी भाषामें महात्मा गोरखनाथजी सबसे पहले गद्य-लेखक हैं। इन्होंने कितने ही संस्कृत एवं हिन्दी पद्य के ग्रन्थ रचे और 'गोरखनाथ बोध' नामक एक हिन्दी गद्य-ग्रन्थ भी लिखा, जिस का आकार १२२५ अनुष्टुप् श्लोकों के बराबर है । यह जोधपूर के राज-पुस्तकालय में है और इसमें छोटे छोटे २७ ग्रन्थ संगृहीत हैं। इनमें से कुछ रचनायें पद्य में भी हैं । इनका गद्य व्रजभाषा-मिश्रित है । उदाहरणः—

"स्वामी तुमे तौ सतगुर अम्है तो सिष सबद एक पुछिबा दया करि कहिबा मनन करिबा रोस।"

"पराधीन उपरांति बंधननांही। सुआधीन उपरांति मुकति नाहीं। चाहि उपरांति पाप नाहीं। अचाहि उपराइति पुनि नाहीं। कम उपरांति मल नाहीं। निहकम उपरांइति निरमल नाहीं। दुष उपरांति कुबधि नाहीं। निरदोष उपरांति सबधि नाहीं। सु सबद उपरांइति पोष नाहीं। अजपा उपरांइति जाप नाहीं। घोर उपरांइति मंत्र नाहीं। नारायन उपरांति ईसट नाहीं। निरंजन उपरांइति ध्यान नाहीं।

इति गोरखनाथ जी के। 'सिसटि परवाण' ग्रन्थ संपूरण समापता।"

यद्यपि महात्मा गोरखनाथ जी संस्कृत के पूर्ण पंडित थे, तथापि उन्होंने हिन्दी लिखने में शब्दों के शुद्ध संस्कृत-रूप न लिख कर भाषा में प्रचलित रूप लिखे हैं और एक ही शब्द के। कई प्रकार से विविध स्थानों पर लिखा है।

महात्मा गोरखनाथ के पीछे प्रायः २०० वर्षों तक फिर भी कोई गद्य-लेखक न हुआ, या यों कहें कि अब तक इस समय के किसी गद्य-लेखक का पता नहीं लग सका है। बल्लभीय मत-संस्थापक महात्मा बल्लभाचार्य्य के पुत्र महात्मा बिट्ठल स्वामी हिन्दी के द्वितीय गद्य-लेखक कहे जा सकते हैं। इनका जन्म संवत् १५७२ में हुआ था, सो रचनाकाल १६०० के लगभग माना जा सकता है। इनका केवल एक गद्य-ग्रन्थ 'शृंगाररस-मंडन' खोज में मिला है। इसकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है, जिसमें संस्कृत-शब्दों की भी कुछ विशेषता है।

उदाहरण:—

"प्रथम की सखी कहत है जो गोपी जन के चरण विषे सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत में डूबि के इनके मन्द हास्य ने जीते हैं अमृत समूह ता करि निकुंज विषे शृंगार रस श्रेष्ठ रसना कीनी सो पूर्ण होत भई ॥"

संवत् १६२७ के लगभग गंगा भाट नामक एक व्यक्ति ने 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' नाम्नी १६ पृष्ठ की खड़ी बोली गद्य में एक पुस्तक रची । इसके देखने से प्रकट होता है कि इसमें कवि ने बादशाह अकबर से चन्द बरदाई कृत रासो का वर्णन किया । अब तक हम लोगों का विचार था कि जटमल खड़ी बोली के गद्य का प्रथम लेखक है, परन्तु गंगा को अब यह पद मिलता है । इस समय हमारे पास ग्रन्थ का उदाहरण प्रस्तुत नहीं है । इसी समय अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नन्ददास ने भी 'विज्ञानार्थ प्रकाशिका' और 'नासकेत पुराण' भाषा नामक दो गद्य-ग्रन्थ ब्रजभाषा में रचे ।

बिट्ठलेश के पुत्र गोकुलनाथ जी ने 'चौरासी और २५२ वैष्णवों की वार्ता' नामक दो परमोपकारी ग्रन्थ रचे, जिनमें शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है । इन ग्रन्थों से कई उपकारी साहित्यानुरागियों के जीवनचरित्र जानने में बहुत बड़ी सहायता मिली है । उदाहरण:—

"श्रीगुसाईं जी के सेवक एक पटेल की वार्ता ।

सो वह पटेल वैष्णव राजनगर में रहेतो हतो ॥ वा पटेल वैष्णव के दो बेटा हते और एक स्त्री हती और बड़े बेटा की दो स्त्री हतीं

श्रौर छोटे बेटा की एक स्त्री हती ऐसे सात मनुष्य श्री गुसाईं जी के शरण आए श्रौर श्री ठाकुर जी पधराय के सेवा करन लगे ॥ तब छ जनेन को मन तो श्री ठाकुर जी में लगो हतो श्रौर एक बड़े बेटा को मन लौकिक में बहुत हतो ॥ सो कछु भगवत सम्बन्धी कार्य करतो नहीं हतो श्रौर लौकिक में तद्रूप होय रह्यो हतो ॥"

गोकुलनाथ जी ने अपने ग्रन्थ में कोई साहित्य विषयक चमत्कार लाने का प्रयत्न न करके रोज़मर्रा की बोलचाल का व्यवहार किया। महाकवि केशवदास ने भी कविप्रिया में यत्र तत्र कुछ गद्य लिखा है, परन्तु इनकी गणना गद्यलेखकों में नहीं हो सकती ।

महात्मा नाभादास जी का रचनाकाल सवत् १६५७ के लगभग है। इन्होंने पद्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त ५६ पृष्ठों का 'अष्टयाम' नामक एक गद्य-ग्रन्थ भी रचा, जो महाराजा छत्रपुर के पुस्तकालय में है। उदाहरणः—

तब श्री महाराजकुमार प्रथम वशिष्ठ महाराज के चरण छुइ प्रनाम करत भये। फिरि अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भये।"

बनारसी दास जैन की कविता का भी यही समय है। इन्होंने बहुत से पद्य-ग्रन्थ रचे, जिनमें यत्र तत्र कुछ भाग गद्य का भी है। उदाहरणः—

"सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो। संशय बिमोह बिभ्रम ये तीन भाव जामें नाहीं सो सम्यग्दृष्टी।"

संवत् १६८० में जटमल कवि ने "गोरा बादल की कथा" नामक एक ग्रन्थ रचा, जिसमें खड़ी बोली का प्राधान्य है। यह

दूसरा ग्रन्थ है जिसमें खड़ी बोली से मिलती हुई गद्य भाषा का प्रयोग हुआ है और छंद भी उसी भाषा के हैं। इसको खड़ी बोली का द्वितीय गद्य-लेखक समझना चाहिए। उदाहरणः—

"श्री रामजी प्रसन्न" होये। श्री गनेसायनमः लक्ष्मीकांत। हे बात कीसा चित्तौड़ गढ़ को गोरा बादल हुआ है जीनकी बारता की कीताब हींदवी में बनाकर तयार करी है॥

सुक संपत दायेक सीदंबुद सहेत गनेस। बीगण बीजर लावीन सो बे लोनुज परमेस॥ १॥

दूहा॥ जगमल बाणी सरस रस, कहत सरस बर बंद।
चइवाण कुल उवधारो हुवा जुवा चावंद ॥ २॥

गोरे की आवरत आवेसा बचन सुन कर आपने खावंद की पगड़ी हाथ में लेकर वाहा सती हुई। सो सीवपुर में जा के वाहां दोनो मेले हुवे॥

गोरा बादल की कथा- गुरू के बस सरस्वती के मेहरवानगी से पूरन भई तीस वास्ते गुरू कू सरस्वती को नमस्कारता हुं। ये कथा सोलसे आसी के साल में फागुन सुदी पूनम के रोज बनाई। ये कथा में दो रस हे वीरारस व सीनगाररस हे सो कथा। मोरछड़ी नाव गाव का रहनेवाला कवेसर जगहा उस गाव के लोग मोहोत सुकी हे घर घर में आनन्द होता है कोई घर में फकीर दीखता नहीं।

उस जग आलीषान बाबा राज हे मसीह वाका लड़का हे सो सब पठानो में सरदार है जयेसे तारों में चन्द्रमा हे औयेसा वो है।

धरमसी नाव का वेतलीन का बेटा जटमल नाव कवेसर ने ये कथा सवल गांव में पुरण करी ।"

इस ग्रन्थ का आकार एक सहस्र श्लोकों के बराबर होगा। महात्मा तुलसीदासजी ने गद्य में एक फ़ैसलानामा लिखा, जो महाराजा बनारस के पुस्तकालय में वर्तमान है। इसकी भाषा साधारण बोलचाल की है। यथाः—

"मौजे भदेनी मह अंश पांच तेहि मह अंश दुइ आनन्दराम तथा लहरतारा सगरेउ, तथा छितुपुरा अंश टोडरमलुक तथा नयपुरा अंश टोडर मलुक हीलहुज्जती नाश्ती ।"

महा कवि चिन्तामणि तिवारी का रचना-काल १६९० के लगभग है। आपने भी रीतिग्रन्थ में कुछ गद्य लिखा है।

संवत् १७२७ में प्रसिद्ध कवि कुलपति मिश्र ने रसरहस्य नामक रीति-ग्रंथ रचा। इस में भी यत्र तत्र गद्य का प्रयोग हुआ है।

महाकवि देवजी का जन्म संवत् १७३० में हुआ था। इनका रचना-काल संवत् १७४६ से १८०४ पर्यंत समझ पड़ता है। इन्होंने पद्य के अनेकानेक ग्रन्थ रचे और गद्य के उदाहरणार्थ 'शब्द रसायन' में एक वचनिका कही, जिस एक वाक्य में ही अनेक प्रकार के गद्य-सम्बन्धी चमत्कार देख पड़ते हैं। उदाहरणः—

"महाराज राजाधिराज व्रजजनसमाज विराजमान चतुर्दशभुवन विराज वेदविधि विद्यासामग्री सम्राज श्री कृष्णदेव देवाधिदेव देवकी-नंदन जदुदेव यशोदानन्द हृदयानंद कंसादि निकंदन बंसावतंस अंसावतार शिरोमणि विष्टपदत्रय निविष्टगरिष्ट पद त्रिविक्रमण जगत्-

कारण भ्रमनिवारण माया मय विभ्रमण सुर रिषि सखा संगमन राधिकारमण सेवक बरदायक गोपी गोपकुल सुखदायक गोपाल वालमंडली नायक अघघायक गोवर्धनधरण महेन्द्र मोहापहरण दीनजन सज्जनशरण ब्रह्मविस्मय विस्तरण परब्रह्म जगज्जन्ममरण-दुःखसंहरण अधमोद्धरण विश्वंभरण विमलजसः कलिमल विनासन गरुड़ासन कमलनैन चरणकमलजलत्रिलोकीपावन श्रीवृन्दावन-विहरण जय जय॥"

सूरतिमिश्र का रचनाकाल संवत् १७६७ के इधर उधर है। इन्होंने ब्रजभाषा गद्य में बैतालपचीसी लिखी, तथा कुछ ग्रंथों पर टीकाएं गद्य एवं पद्य में कीं। उदाहरण :—

"सीसफूल सुहाग और बेंदा भाग ए दोऊ आये पांवड़े सोहे सोने के कुसुम तिन पर पैर धरि आये हैं॥"

श्रीपति कवि कालपीवाले का समय १७७७ है। आपने भी रीति ग्रन्थ में यत्र तत्र ब्रजभाषा गद्य लिखा है। यथा, "यामें 'अस आहि' अंतर वेद भाषा।"

दासजी का रचनाकाल संवत् १७८६ से चलता है। इन्होंने काव्यनिर्णय में कुछ तिलक गद्य ब्रजभाषा में किये हैं। यथा :—

"मधु छुये ते त्वचा को सुख होय, पीवे ते जीभ को, सुने ते कानों को, देखे ते दृगन को, सुगन्ध ते नाक को सुख होय, यों पाँचों इन्द्रियन को दुख दूरि होतु है।"

दासजी के समकालीन बंसीधर कवि ने भाषाभूषण पर एक उत्कृष्ट टीका रची। इसमें आपने अलंकारों के स्वरूप ब्रजभाषा गद्य में भलीभाँति दरसा दिये हैं। यथा,

"चोरी को गुर मीठो ऐसो उपखानो प्रसिद्ध है ता मांझ सठ-नायक प्रति मानिनी नायका को उपालंभ यह अर्थांतर ठहरायो अथवा स्वैरनी सों सखी को परिहास ॥"

प्रसिद्ध कवि सोमनाथ ने संवत् १७९४ में 'रसपीयूषनिधि' नामक रीतिग्रन्थ रचा। इसमें आपने स्थान स्थान पर गद्य द्वारा बहुत से काव्यांग समझाये हैं। रीतिग्रन्थ लेखकों में इन्होंने सब से अधिक गद्य का प्रयोग किया है। उदाहरण :—

"द्वैभेद अविवांछिति-वाच्य ध्वनि के—अर्थान्तर संक्रमित श्रौर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि श्रौर एकभेद असंलक्ष्य क्रमको श्रौर संलक्ष्य क्रमव्यंगिध्वनि द्वै भेद शब्दार्थ व्यंगि के तौर द्वादश भेद अर्थरूप व्यंगिध्वनिकौ श्रौर एक भेद शब्दार्थ मूलव्यंगिध्वनि कौ सब अष्टादस भेद ध्वनि के भये ॥"

संवत् १८०० में ललितकिशोरी तथा ललित माधुरी ने मिल-कर एक गद्य-ग्रन्थ रचा। यह ब्रजभाषा में है। यथा,

"मलयगिरि को समस्त बन वाकी पवन सों चन्दन ह्वै जाय वाके कछू इच्छा नाहीं ॥"

अनन्तर १८१० के लगभग किसी अज्ञात कवि ने "चकत्ताकी पातस्याही को परम्परा" नामक एक १०० पृष्ठों का गद्य-ग्रन्थ खड़ी बोली में रचा। इसमें मुगल बादशाहों श्रौर उनकी राज्य-परिपाटी का कुछ वर्णन है।

इसके पीछे प्रायः ५० वर्ष तक किसी गद्यलेखक का पता अब तक नहीं लगा है श्रौर १८६० वाले लल्लूलाल तथा सदल मिश्र ही प्रसिद्ध गद्यलेखक मिलते हैं। अतः इससे पूर्व का समय हिन्दी गद्य

के लिए प्रारंभिक काल कहा जा सकता है। इसमें एक तो कोई भारी गद्यलेखक हुआ ही नहीं और दूसरे विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ, सोमनाथ, जटमल आदि थोड़े ही कवियों को छोड़ किसी ने उसे प्रधानता नहीं दी। महात्मा गोरखनाथ जी की गद्य-रचना सबल तथा भावपूर्ण होने पर भी बहुत थोड़ी है और गोकुलनाथ एवं जटमल में साहित्य का चमत्कार नहीं। महात्मा विट्ठलनाथ ही ऐसे लेखक रह जाते हैं जिन्होंने शिष्ट गद्य में रचना का प्रयत्न किया, परन्तु इनका ग्रन्थ भी छोटा है। सूरति मिश्र की बैतालपचीसी का उत्कृष्ट होना अनुमान-सिद्ध है, पर वह हमारे देखने में नहीं आई। महात्मा तुलसीदास, देव, बनारसीदास, दास आदि को गद्य-लेखक कहना ही नहीं फबता, क्योंकि इन्होंने बहुत कम गद्य लिखा है और वह भी केवल प्रसंगवश। इस समय गंगादास तथा जटमल ने खड़ी बोली का सूत्रपात अवश्य किया, परन्तु सब प्रकार से ब्रजभाषा का ही प्राधान्य रहा। गद्य-सम्बन्धी सद्गुणों की उन्नति इस भारी समय में बिल्कुल नहीं हुई। उपर्युक्त लेखकों में केवल गोकुलनाथ, गंगादास, ललितकिशोरी तथा ललितमाध्वरी ने पद्य की ओर ध्यान नहीं दिया और जटमल ने भी उस का आदर नहीं किया, शेष लोगों ने पद्य ही की प्रधानता रक्खी।

संवत् १८६० से १९२४ पर्यन्त गद्य का दूसरा काल समझना चाहिए। इस में ब्रजभाषा के मेल से आरंभ करके गद्य ने धीरे धीरे बड़े बड़े लेखकों के सहारे वह गौरव प्राप्त किया, जिसने उसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि की प्यारी भाषा बनाकर वर्तमान समय के उच्चाशयपूर्ण अनेकानेक लोकोपकारक विषयों के यथोचित व्यक्त

करने का सामर्थ्य प्रदान किया। इस सुन्दर समय में लल्लूलाल, सदल मिश्र, जानकीप्रसाद, सरदार, राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह, स्वामी दयानन्द आदि धुरंधर लेखकों ने हिन्दी गद्य को गौरवान्वित किया।

लल्लूलाल आगरा-निवासी ब्राह्मण थे, जिन्होंने संवत् १८६० में अँगरेज़ी शिक्षा-विभाग की आज्ञानुसार कई उत्तम गद्य-ग्रन्थ लिखे, जिनमें प्रेमसागर प्रधान है। आपने खड़ी बोली और ब्रजभाषा का मिश्रण करके एक नवीन गद्य शैली चलाई, जिस का तत्कालीन शिक्षा-विभाग ने सम्मान किया। आपने लालचन्द्रिका नामक बिहारी सतसई की अच्छी टीका रची। इनकी भाषा का नमूना इस प्रकार है:—

"महाराज इसी ढब की सभाके बीच खड़े हो ब्राह्मण ने रो रो बहुत सी बातें कहीं, पर कोई कुछ न बोला। निदान श्रीकृष्णचन्द्र के पास बैठा सुन सुन घबड़ाकर अर्जुन बोला। हे देवता तू किस के आगे यह बात कहे है और क्यों इतना खेद करै है? इस सभा में कोई धनुर्धर नहीं जो तेरा दुख दूर करै। आज कल के राजा आपकार्यी हैं परदुःख निवारण नहीं, जो प्रजा को सुख दें औ गौ ब्राह्मण की रक्षा करैं। ऐसे सुनाय अर्जुन ने पुनि ब्राह्मण से कहा कि देवता अब तुम जाय अपने घर निश्चिन्त हो बैठो, जब तुमारे लड़का होने का दिन आवे तब मेरे पास आइयो, मैं तुमारे साथ चलूंगा औ लड़के को न मरने दूंगा॥"

सदल मिश्र ने 'नासकेतोपाख्यान' नामक ग्रंथ इसी संवत् में शिक्षाविभाग की आज्ञानुसार रचा। यह ग्रंथ प्रौढ़तर भाषा

में लिखा गया और इसमें खड़ी बोली का अंश व्रजभाषा से अधिक है। इस कवि ने गद्य के साथ साहित्य-सौन्दर्य का अच्छा चमत्कार दिखाया है। नासकेतोपाख्यान एक छोटा सा ग्रन्थ होने पर भी बहुत प्रशंसनीय है। इसका सामना इसका समकालीन तथा पूर्वकाल का कोई भी हिन्दी-गद्यग्रन्थ नहीं कर सकता। उदाहरण—

"कुण्ड में क्या अच्छा निर्मल पानी, कि जिस में कमल के फूलों पर भौंर गूंज रहे थे, तिस पर हंस सारस चक्रवाक आदि पक्षी भी तीर तीर सोहावने शब्द बोलते, आस पास के गाछों पर कुहू कुहू कोकिलैं कुहक रहे थे, जैसा बसंत ऋतु का घर ही होय।"

पंडित जानकीप्रसाद ने संवत् १८७४ में राम चन्द्रिका का एक प्रशंसनीय तथा भावपूर्ण तिलक व्रजभाषा में निर्माण किया, जिसमें उन्होंने एक एक छन्द पर पाँच पाँच छः छः पृष्ठों तक अर्थ लिखे हैं और विविध भावों के व्यक्त करने का अच्छा प्रयत्न किया है, परन्तु काव्यांगों के दिखलाने का कुछ भी श्रम इसमें नहीं किया गया। कुल मिला कर टीका प्रशंसनीय है। उदाहरण—

"बालक जैसे पग सों दाबि पंक कहें कीच को पेलि कै पाताल को पठावत है तैसे ये (गणेशजी) कलुष जे पाप हैं तिनको पठावत हैं इहाँ गजराज को त्याग करि बालक सम या सों कह्यो पद्मिनी पत्रादि तोरन में बालक को उत्साह रहत है तैसे गणेश जू को बिपत्यादि बिदारण में बड़ो उत्साह रहत है कौतुक ही बिदारत हैं॥"

प्रतापसाह कवि इसी समय में हुआ । इसने भी 'व्यंग्यार्थ-तर्ककौमुदी' में यत्र तत्र गद्य का प्रयोग किया । यथा,

"इहां नीति अनीति इन शब्दन तें बिरोध इहाँ नीति अरु अनीति लेना तैहि बिषे चाव यह अर्थ विरोधतें बिरोधाभास अलंकार व्यङ्ग्य । "

संवत् १८८४ गोस्वामी तुलसीदास के प्रसिद्ध भक्त और उन पर अच्छे अनुसंधानकर्त्ता लाला छक्कनलाल का समय है। आप भी गद्य-लेखक थे ।

सरदार कवि का रचना-काल संवत् १९०२ के लगभग है। इन्होंने सूर के दृष्टकूट पर एक बहुत ही सुन्दर टीका बनाई, जिसमें कूटों का अर्थ बड़े परिश्रम से लिखा है। इसके अतिरिक्त इनकी बनाई कविप्रिया तथा रसिकप्रिया की टीकाएं भी उत्कृष्ट तथा उपयोगी हुई हैं। सब टीकाएं गद्य ब्रज भाषा में लिखी गई हैं। इनमें काव्यांगों का भी अच्छा वर्णन है। उदाहरणः—

"या रसिकप्रिया के पढें रतिमति अति बाढ़ै और सब रस बिरस कहा नवरस तिन की रीति जाने और स्वारथ कहा याके पढ़े चातुर्यता लहै तब सब राजा प्रजा को बल्लभ होय या भाँति तो स्वारथ लहै और श्रीकृष्ण राधा को वर्णन है यातें तिनके ध्यान को परमारथ लहै या ते रसिकप्रिया की प्रीति ते दोऊ बातें सिद्ध होहीं ॥ "

सरदार आदि के अतिरिक्त रामगुलाम, बेनीमाधव आदि अनुसंधानकर्त्ता और टीकाकार भी बहुत से हो गये हैं,

जिन्होंने ब्रज-भाषा गद्य का प्रयोग किया है, परन्तु एक प्रकार से ऐसे लोग गद्य-काव्य-रचयिता नहीं कहे जा सकते।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द का रचना-काल संवत् १९११ के इधर उधर है। आप सरकारी शिक्षा-विभाग के उच्च पदाधिकारी थे। आपने अनेकानेक पाठ्य पुस्तकें छात्रों के लाभार्थ बनाईं तथा संकलित कीं। आपने हिन्दी में खिचड़ी भाषा का प्रयोग समुचित माना। इसमें उर्दू एवं फ़ारसी के शब्दों का बेधड़क प्रयोग बहुतायत से होता था। राजा साहब की हिन्दी वर्त्तमान गद्य से इतना ही प्रधान अंतर रखती है। इनके साथ ब्रजभाषा का संपर्क गद्य से बिलकुल उठ गया ओैर हिन्दी गद्य ने खड़ी बोली को दोनों हाथों से अपनाया। ब्रजभाषा रुचिर होने पर भी एकदेशीय भाषा है। उसका प्रयोग सभी स्थानों पर होना न तो स्वाभाविक, न उचित है। कोई कारण नहीं कि ब्रजमंडल से इतर अन्य प्रांतों के निवासी अपनी भाषाओं का आदर न करके ब्रजभाषा की ओेर झुकें। गद्य से विभिन्नता दूर करने के लिए यह भी आवश्यक है कि पृथक् पृथक् प्रांतों के निवासी किसी एक ऐसी भाषा का प्रयोग करें जो सब कहीं की भाषा कही जा सके ओैर हो भी। अनेकानेक प्रांतों की ग्राम्य भाषायें तो पृथक् हैं, परन्तु हिन्दी के प्रायः सभी प्रांतों में नागरिक भाषा एक ही सी है। इसी का नाम खड़ी बोली है, जिसका गद्य में अब सर्वत्र प्रचार है ओैर पद्य में भी सत्कार दिनों दिन बढ़ता हुआ देख पड़ता है। शुद्ध खड़ी बोली के प्रथम लेखक राजा शिवप्रसाद ही हैं।

उदाहरण—

"वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा महाराजा भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा ग्रैार कीर्ति तो सारे जगत में व्याप रही है। बड़े बड़े महिपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते थे ग्रैार बड़े बड़े भूपति उसके पांव पर अपना सिर नवाते। सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना ग्रैार खज़ाना उसका सोने चांदी ग्रैार रत्नों की खान से दूना, उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया ग्रैार उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया। कोई उसके राज्य भर में भूखा न सोता ग्रैार न कोई उघाड़ा रहने पाता। जो सत्तू मांगने आता उसे मोतीचूर मिलता ग्रैार जो गजी चाहता उसे मलमल दी जाती। पैसे की जगह लोगों को अशरफ़ियाँ बांटता ग्रैार मेह की तरह भिखारियों पर मोती बरसाता॥"

राजा लक्ष्मणसिंह का रचनाकाल १९१७ के लगभग था। आपने कालिदास-कृत रघुवंश का गद्य में ग्रैार शकुंतला का गद्य-पद्य में अनुवाद किया। आपकी पुस्तकों का मान सरकार में ख़ूब हुआ। राजा शिवप्रसाद की भाँति आपने भी शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग गद्य में किया, परन्तु उसमें उर्दू एवं फ़ारसी शब्दों को आदर न देकर संस्कृत का विशेष मान किया। आपकी भाषा राजा शिवप्रसाद की भाषा से श्रेष्ठतर एवं शुद्धतर है। आपने अनुवाद मात्र किया ग्रैार अपनी रचनाशक्ति एवं मस्तिष्क से बहुत अधिक काम नहीं लिया, परन्तु अपने समय के आप अच्छे लेखक एवं सुकवि थे। जिस प्रकार के ग्रंथ आपने रचे,

वैसे उस समय भाषा में कम पाये जाते थे। आप सरकार के कृपापात्र भी थे। इन कारणों से आप की ख्याति हिन्दी-लेखकों में बहुत अधिक हुई। रचना भी आप प्रशंसनीय करते थे। उदाहरण—

"महाराज जब मैं इस करसायल पर दृष्टि करता हूं और फिर आप को धनुष चढ़ाए देखता हूं तो साक्षात ऐसा ध्यान बँधता है मानो पिनाक संधान किये शिव जी सूकर के पीछे जाते हैं। इस मृग ने हम को बहुत थकाया है देखो कभी सिर झुकाये रथ को फिर फिर देखता चौकड़ी भरता है कभी तीर लगने के डर से सिमटता है। अब देखो हाँफता हुआ, अधखुले मुख से घास खाने को ठिठका है फिर देखो कैसी छलांग भरी है कि धरती से ऊपर ही देखाई देता है देखो अब इतने बेग से जाता है कि दिखाई भी सहज नहीं पड़ता॥"

स्वामी दयानन्द सरस्वती का रचना-काल १९२० के पास है। आप प्रसिद्ध आर्य्यसमाज के प्रवर्त्तक और हिन्दूधर्म्म के सुधारक थे। अन्य बड़े बड़े धर्मोपदेशकों की भांति आपने भी अपनी धर्म्म-शिक्षा लोकप्रचलित भाषा में ही दी। इसी लिए स्वयं गुजराती ब्राह्मण होने पर भी आपने हिन्दी का ही, उसे लोक-मान्य समझ कर, समादर किया। उपदेशों के अतिरिक्त आपने अपने धर्म्मग्रन्थ इसी भाषा में लिखे और समाज के नियमों में हिन्दी की उन्नति भी स्थिर की। यह आर्य्यसमाजियों में हिन्दी-गौरव का एक बड़ा कारण हुआ। हिन्दी गद्य के उन्नायकों में स्वामी जी भी

एक थे । आप खड़ी बोली का प्रयोग करते थे, जो शुद्ध और सरल होती थी । उदाहरणः—

"राजा भोज के राज्य में और समीप ऐसे ऐसे शिल्पी लोग थे कि जिन्होंने घोड़े के आकार का एक यान यन्त्रकलायुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ी में ग्यारह कोश और एक घण्टे में साढ़े सत्ताईस कोश जाता था । वह भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था । और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि बिना मनुष्य के चलाये कलायन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते तो यूरोपियन इतने अभिमान में न चढ़ जाते ।"

इन उपर्युक्त उदाहरणों से विदित होगा कि हिन्दी-गद्य सदल मिश्र के समय से बराबर उन्नति करता गया, यहाँ तक कि स्वामीजी के समय में वह वर्त्तमान गद्य से बिलकुल मिल सा गया है । स्वामी जी चन्द्रबिन्दु का प्रयोग प्रायः नहीं करते थे और विराम-चिन्हों का स्वल्प व्यवहार आपके लेखों में है । आपने शुद्ध संस्कृत के शब्दों का व्यवहार अपने पहलेवाले लेखकों से कुछ अधिक किया परन्तु फिर भी उपर्युक्त लेख में 'वल' न लिखकर आपने 'बल' लिखा है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के पीछे वर्तमान गद्य का समय आता है । संवत् १९२५ से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का रचना-काल प्रारम्भ होता है । आपने गद्य, पद्य तथा नाटक-विभागों की बहुत अच्छी पूर्ति की । एक इन्हीं से हिन्दी को इतना भारी

लाभ पहुँचा है और पहुँचने की आशा है कि ये महाशय वर्तमान हिन्दी के पिता कहे जा सकते हैं।

भारतेन्दु ने शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग किया और उसमें संस्कृत शब्दों का यथोचित व्यवहार रक्खा, न स्वल्प और न अधिक। आपकी भाषा ऐसी अच्छी है कि साधारण मनुष्य उसे भली भाँति समझ सकता है। गद्य में आप साहित्य स्वाद के देने में ख़ूब समर्थ हुए हैं। बहुत कम लेखकगण ऐसा समुज्ज्वल एवं चटकीला गद्य लिख सके हैं। कुछ लोग तो सहल से सहल गद्य लिखना ही उत्तमता की सीमा समझते हैं और अनेक महाशय क्रिया आदि दो चार शब्दों को छोड़कर कठिन से कठिन संस्कृत शब्दों ही द्वारा हिन्दी वाक्यों की कलेवरपूर्त्ति करनी चाहते हैं। साधारण जनसमुदाय के लिए सुगम भाषा का प्रयोग होना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु ऊँचे दरजे की भाषा भी छोड़ी नहीं जा सकती। फिर भी इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि संस्कृत-शब्द-बाहुल्य से ही भाषा की उत्कृष्टता सम्पादित नहीं हो सकती। साहित्य का मुख्य काम अलौकिकानन्द-प्रदान है, न कि कठिन शब्द-संकलन। जिस भाषा में रसोत्पादन शक्ति विशेष होगी, वही पूजनीय मानी जायगी। भारतेन्दु की गद्य-रचना में यह गुण पाया जाता है।

उदाहरण—

'सुख तो हिन्दुस्तान में तीन ही ने किया एक मुहम्मदशाह ने, दूसरे वाजिद अलीशाह ने, तीसरे हमारे महाराज ने। मुहम्मदशाह के ज़माने में नादिरशाही हुई, वाजिदअली से लखनऊ ही छूटा,

अब देखें इनकी कौन गति होती है। इस का तो यही फल है, पर फिर कौन इस रंग में नहीं है। बड़े २ ऋषि मुनी राजा महाराज नए पुराने सभी तो इसमें फसे हैं। अहा! स्त्री वस्तु भी ऐसी ही है। यह तो कल के अर्थ में यन्त्र हुआ। (ऊपर देख कर) क्या कहा ? इसी यन्त्र के अनुष्ठान का न यह फल हुआ कि सिर पर इतनी भारी जवाबदेही आय पड़ी। किसके किसके ? जिसके बल हम कूदते हैं ? अरे महाराज के ? क्या हुआ ? (ऊपर देखकर) क्या कहा "तुम को क्या नहीं मालूम ?" हमको यहां तक तो मालूम है कि पहले एक कमीसन आया था और फिर कुछ आया के आया जाया की गड़बड़ सुनी थी। छिः छिः ! स्त्री ऐसी ही वस्तु है उस पर भी कुमारी। बिजली को घन का पच्चड़। स्त्री और बिजली जिससे छू गई वह गया। (ऊपर देख कर) क्या कहा "गया भी ऐसा कि फिर न बहुरैगा" अरे कौन कौन ? क्या कहा ? वही जिसका सबेरे से तुम पवड़ा गा रहे हो। हाय ! हाय ! महाराज ? अरे क्या हुये ? गद्दी से उतारे गये ? हाय महा अनर्थ हुआ।"

उपर्युक्त उदाहरण से ज्ञात होगा कि भारतेन्दु जी साधारण शब्दों ही में पूरा साहित्य-चमत्कार लाते थे। इस खड़ी बोली में केवल "आय पड़ी" में मिश्रण है, अन्यत्र नहीं। आपने भी अनुस्वार और अर्धअनुस्वार दोनों के लिये विन्दु ही का प्रयोग किया है। उस समय तक स्यात् किसी भी लेखक का ध्यान चन्द्रबिन्दु की ओर नहीं गया था। विरामचिन्हों का आप प्रयोग तो करते थे, परन्तु पूरे तौर से नहीं। आपके विराम-चिह्न सर्वत्र अँगरेज़ी नियमों के अनुसार नहीं हैं, परन्तु अपने से पहलेवाले लेखकों की अपेक्षा

आपने बहुत अधिक विराम-चिह्न लिखे हैं। इनके व्यवहार से अर्थ समझने में बहुत स्थानों पर सुगमता होती है, परन्तु बिल्कुल अँगरेज़ी ढँग से इनका लिखना हमें आवश्यक नहीं समझ पड़ता। अँगरेज़ी में विराम-चिह्नों का प्रयोग बहुत अधिकता से होता है और अर्थ व्यक्त करने में उनकी सर्वत्र आवश्यकता नहीं होती। उन सब का हिन्दी में प्रचलित करना अनावश्यक समझ पड़ता है। भारतेन्दु जी भी अँगरेज़ी भाषा के ज्ञाता थे, परन्तु फिर भी उन्होंने अपने विराम-चिह्नों को उसके अनुसार नहीं रक्खा। इससे उनका भी मत यही समझ पड़ता है। संस्कृत शब्दों के व्यवहार में आपने सर्वत्र शुद्ध रूप न लिख कर हिन्दी में व्यवहृत रूप लिखे हैं। यथा मुनी, महाराज, बस्तु, बल इत्यादि। ये चार शब्द इसी छोटे से लेख में आये हैं। बहुत से लोगों का मत है कि पद्य में तो हिन्दी में प्रचलित रूप लिखे जा सकते हैं, परन्तु गद्य में शब्दों के शुद्ध संस्कृत रूपों के व्यवहार बाध्य हैं। भारतेन्दु जी का यह मत नहीं था। यही विचार भाषा के प्राचीन लेखकों का भी था। महात्मा गोरखनाथ, नाभादास, आदि लेखक संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे, परन्तु उन्होंने गद्य में भी शब्दों के शुद्ध संस्कृत रूप न लिख कर भाषा में प्रचलित रूप लिखे हैं। हमारे विचार में शब्दों के ऐसे ही रूप लिखने चाहिए। कोई कारण नहीं है कि हिन्दी संस्कृत या किसी अन्य भाषा की ऐसी आसरेगीर समझी जावे कि अपने में प्रचलित शब्दों को छोड़ कर अन्य भाषाओं के व्याकरणों का मुँह ताके।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पीछे हिन्दी में बहुत से सुलेखक हुए, परन्तु उनका वर्णन इस लेख में अयुक्त है, क्योंकि वे किसी प्रकार प्राचीन गद्य-लेखक नहीं कहे जा सकते। गद्य ने अब बहुत अच्छी उन्नति कर ली है और दिनों दिन करता जाता है। आशा है कि प्रायः ५० वर्ष के भीतर इस में किसी भी उपयोगी विषय के ग्रंथों की कमी न रहेगी।

यद्यपि हिन्दी बहुत काल से चल रही है और बड़े बड़े राजाओं महाराजाओं से लेकर साधारण मनुष्यों तक ने इस पर सदैव पूरा ध्यान रक्खा है, यहाँ तक कि इसका पद्य-विभाग बहुत ही परिपूर्ण एवं सुष्ठु है, तथापि हमारे प्राचीन लेखकों ने गद्य की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया। पद्य में अलौकिक आनन्ददायक विषयों का बाहुल्य रहता है और गद्य में लोकोपकारी विषयों का। ऐसे विषयों की वृद्धि देशभक्ति एवं व्यवसाय-बाहुल्य से होती है। दुर्भाग्यवश भारत में इन दोनों बातों की आनुषंगिक ऊनता रही है। हमारे यहाँ महात्मा बुद्धदेव के समय से दया की मात्रा बहुत अधिक रही है। यह एक बहुत अच्छा गुण है, परन्तु किसी भी भाव के उचित से बहुत अधिक बढ़ जाने से व्यक्तिगत उन्नति चाहे भले ही हो, परन्तु देश की प्रायः अवनति हो जाती है। दया के बढ़ने से हमारे यहाँ प्रायः सभी विभागों में अकर्मण्यता की वृद्धि हुई। घर में यदि एक मनुष्य की अच्छी आय हुई तो उसने दयावश औरों को अपने हीं समान मान किया और उन्हें सुख दिया। इस अच्छे व्यवहार का फल यह हुआ कि वे आलसी हो गये। तीर्थस्थानों में लाखों पंडे पुरोहितादि दया के कारण आलसी हैं। लाखों समर्थ

भिक्षुक इसी कारण से आलसी हैं और करोड़ों अन्याश्रयी लोग कुछ भी काम नहीं करते। इसी प्रकार धर्म-भाव एवं सांसारिक अनित्यता के विचार ने उचित से अधिक बढ़ कर भारतीय आलस्य को विशेष बलप्रदान किया।

हमारे यहाँ के स्वार्थत्यागी महाशयों ने लौकिक उन्नति पर ध्यान न देकर पारलौकिक विचारों को प्रधानता दी। इन कारणों से हम ऐसी सांसारिक हीनावस्था में आ पड़े हैं कि जहाँ योरोप ने सैकड़ों सुखद कला-यंत्रोंको बनाया, वहाँ हम अपना बुद्धि-वैभव-स्वरूप एक भी यन्त्र नहीं दिखला सकते। सांसारिक उन्नति के लिए जीवन-होड़ की बहुत बड़ी आवश्यकता है, जिसका मुख्य अभिप्राय यही है कि यथासाध्य प्रायः प्रत्येक समर्थ मनुष्य को जीविकार्थ पूरा परिश्रम करना पड़े। इस बात की वृद्धि से देश में धनोत्पादक बल बढ़ता है और विविध लोकोपकारी विषयों पर ग्रन्थनिर्माण की आवश्यकता पड़ती है, जिससे गद्योन्नति होती है। जिन देशों में शिल्पव्यवसाय की उन्नति है, उनका गद्य अवनति की दशा में नहीं रह सकता।

इसी प्रकार देशभक्ति से भी मनुष्य देशोन्नति की ओर ध्यान देगा। हमारे यहाँ ईश्वर-भक्ति की मात्रा तो बहुत प्रचुर रही, परन्तु देशभक्ति अनेक कारणों से बढ़ न सकी। देश-भक्ति बहुधा व्यवसाय-वृद्धि से बढ़ती है, यद्यपि कभी कभी अन्य कारणों से भी यह बढ़ी है। भारत ने सदैव से बाहर की विजयिनी जातियों का स्वागत किया है। जेता और विजित जातियों का नीर क्षीरवत् सम्मिश्रण मनुष्यसुलभ अभिमान के कारण कठिन है। यहाँ समय

समय पर अनेकानेक विजयिनी जातियाँ बाहर से आती रही हैं। शायद इसी कारण से भारतीय जातिभेद समय पर अत्यन्त दृढ़ हो गया, यहाँ तक कि प्रधान जातियों की अंतर्जातियाँ तक बहुत ही दृढ़ और एक दूसरी से पृथक् हैं। देशभक्ति के लिए संसार में भ्रातृभाव का होना बहुत आवश्यक है। जब तक हम किसी को अपना न समझेंगे, तब तक उसके गौरव से प्रसन्न क्या होंगे? जातिभेद में स्वजाति से प्रेम और दूसरों से उदासीनता का होना परम स्वाभाविक है। इसी से भ्रातृभाव की हमारे यहाँ कमी रही। भ्रातृभाव संसारभक्ति को बढ़ाता है, परन्तु उसमें जब व्यवसाय-प्रचुरता मिलजाती है, तब स्वदेश से इतर मनुष्यों से धनोत्पादन का भाव उठ कर हमें उनसे अधिक व्यवसायी बनने को उत्साहित करता है। यही भाव व्यवसाय द्वारा देशभक्ति को बढ़ाता है, जिससे देशोन्नति का विचार उठ कर विविध लोकोपकारी विषयों द्वारा गद्यभांडार भरता है।

हमारे यहाँ दया तथा सांसारिक अनित्यता के भावों ने उपर्युक्त गुणों की हानि करके गद्य को बड़ी ही शिथिलावस्था में रक्खा। जब हमारे पद्य विभाग का गद्य से मिलान किया जाता है, तब गद्य की सापेक्ष महाघोर अवनति पर अवाक् रह जाना पड़ता है। अँगरेज़ी राज्य का पूरा प्रभाव हिन्दीभाषी देशों पर प्रायः ५० वर्ष से पड़ा है। इसीने जीवन-होड़ की भारी वृद्धि कर के हमारे गद्यविभाग का परिपोषण किया है। परन्तु अभी तक औरों की अपेक्षा लोकोपकारी विषयों में हमारा ज्ञान इतना छोटा है कि मानो हम कुछ जानते ही नहीं। इसी से अब तक हमारे अच्छे गद्य-लेखक भी अनुवादों

तथा परावलम्बी ग्रंथों ही में उलझे पड़े हैं और हम श्रेष्ठ ग्रंथों के अभाव में ऐसे लेखकों की प्रशंसा भी करते हैं। हमारा गद्य परम प्राचीन होने पर भी दुर्भाग्यवश अभी तक एक प्रकार से आदिम काल ही में है। ऐसे समय में परावलम्बी ग्रंथों का बनना स्वाभाविक है, परन्तु आशा है कि समय पर हमारा लेखक समुदाय अपने मस्तिष्क से कुछ अधिक काम लेना सीखेगा।

एवमस्तु। एवमस्तु। एवस्तु।

पाँचवाँ पुष्प ।

हिन्दी के मुसलमान कवि *(सं०१९६९)।

सम्मेलन ने कृपापूर्वक हमको यह काम सौंपा है कि आप महाशयों को मुसलमान कवियों का कुछ हाल सुनावें। इस गम्भीर विषय पर कुछ लिखने के लिए बड़ी गवेषणा की आवश्यकता है और उचित था कि कोई विशेष श्रमशील और अनुभवी व्यक्ति इस विषय को हाथ में लेता। परन्तु बड़ों की आज्ञा शिरोधार्य्य मान कर हमीं 'निज पौरुष परमान ज्यों, मशक उड़ाहिँ अकास' का न्याय धारण कर के इस प्रयत्न में प्रवृत्त होते हैं।

हिन्दी भाषा प्राकृत का वर्त्तमान रूप है, अर्थात् प्राकृत भाषा ही बिगड़ते बिगड़ते इस रूप को प्राप्त हुई है। यह बिगाड़ किसी एक समय में नहीं हुआ, परन्तु धीरे धीरे शताब्दियों तक होता रहा। अतः सिवा मोटे प्रकार से और किसी भाँति हिन्दी का जन्मकाल नहीं बतलाया जा सकता। इस मोटे प्रकार से हिन्दी का जन्मकाल संवत् ७०० के लगभग माना जा सकता है। मुसलमानों ने आर्य्यावर्त्त से सम्बन्ध होते ही हिन्दी-काव्य की ओर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया था, यहाँ तक कि जिस समय महमूद

---

*इस लेख के लेखक पं० गणेशविहारी मिश्र भी हैं।

ग़ज़नवी ने संवत् १०८० में भारत पर चढ़ाई की थी, उस समय उसकी सभा में हिन्दी जानने वाले और कविता के समझनेवाले तक प्रस्तुत थे। यह आक्रमण महाराजा कालिंजर के राज्य पर हुआ था, जहाँ के स्वामी राजानन्द ने एक छन्द महमूद की प्रशंसा में लिख कर उसके पास भेजा। सुलतान के हिन्दी जाननेवाले सभ्यों ने जब उसका अर्थ कहा तब सुलतान तथा उस के अरबी और फ़ारसी जाननेवाले सभासद बहुत प्रसन्न हुए। इससे उसने न केवल अपनी चढ़ाई ही कालिंजर दुर्ग से उठा ली, वरन् १४ क़िले और राजा को पुरस्कारस्वरूप दिये। इस समय के पीछे से ही मुसलमानों ने हिन्दी का पठन-पाठन प्रारम्भ कर दिया होगा, परन्तु अब उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिल सकता। सुलंकी महाराजा जयसिंहदेव ने सं० ११५० से १२०० तक अन्हलपूर पट्टन में राज्य किया था। उनके समय में कुतुबअली नामक एक व्यक्ति हिन्दी का कवि तथा एक मसजिद का उपदेशक था। उसकी मसजिद कुछ लोगों ने गिरा दी थी, जिस पर उसने एक छन्दोबद्ध प्रार्थनापत्र राजा को दिया। राजा ने जाँच के उपरान्त मसजिद फिर से बनवादी और उसके तोड़नेवालों को यथोचित दंड दिया। इसकी कविता का कोई उदाहरण अब नहीं मिलता। इससे यह विदित होता है कि मुसलमानों ने बहुत प्राचीन काल से हिन्दी काव्य करना प्रारम्भ कर दिया था। इतिहास के अभाव से प्रायः दो सौ वर्ष तक किसी मुसलमान कवि की कविता या नाम नहीं मिलता।

अमीर ख़ुसरो का देहान्त संवत् १३८२ में हुआ था। यह महाशय फ़ारसी के एक प्रसिद्ध कवि थे। हिन्दी भाषा के भी बहुत से छन्द, पहेलियाँ, मुकरी, इत्यादि इनकी रचित मिलती हैं। प्रसिद्ध कोषग्रन्थ ख़ालक़बारी इन्हीं का लिखा हुआ है। यह उस समय बना था जब कि फ़ारसी और हिन्दी का मेल हो कर वर्त्तमान उर्दू की नीव पड़ रही थी। बहुत लोगों का मत है कि उर्दू का जन्म शाहजहाँ के समय में हुआ था और यह मत यथार्थ भी है। परन्तु ख़ुसरो की कविता देखने से यह अवश्य कहना पड़ता है कि उर्दू की नीव उसी समय से पड़ रही थी। इनकी कविता साधारण हिन्दी, फ़ारसी मिश्रित हिन्दी और खड़ी बोली में पाई जाती है। यथा—

ख़ालिक बारी सिरजनहार। वाहिद एक बिदा करतार॥
रसूल पैग़म्बर जान बसीठ। यार दोस्त बोलै जो ईठ॥
ज़ेहाल मिसकीं मकुन तग़ाफुल। दुराय नैना बनाय बतियाँ॥
किताबे हिजराँ नदारम् ऐ जाँ। न लेहु काहे लगाय छतियाँ॥
आदि कटे से सब को पाले। मध्य कटे से सब को घालै॥
अंत कटे से सब को मीठा। सो ख़ुसरो मैं आँखों दीठा॥

अमीर ख़ुसरो के समय में ही मुल्ला दाऊद नामक एक कवि ने हिन्दी काव्य में नूरक और चन्दा का प्रेम कथन किया, परन्तु इसकी रचना हमारे देखने में नहीं आई।

संवत् १५६० में कुतबन शेख़ ने मृगावती नामक एक उत्तम काव्य ग्रन्थ बनाया। इसमें एक प्रेमकहानी पद्मावत की भाँति दोहा चौपाइयों में कही गई है और इसकी रचना-शैली भी उसी प्रकार की है, यद्यपि उत्तमता में यह उसके बराबर नहीं पहुँचती। शेख़ कुतबन शेख़ बुरहान चिश्ती के चेले थे और शेरशाह सूर के पिता हुसैनशाह के यहाँ रहते थे। उदाहरण—

साहि हुसैन अहै बड़ राजा। छत्र सिँघासन उनको छाजा॥
पंडित औ बुधिवंत सयाना। पढ़ै पुरान अरथ सब जाना॥
धरम दुदिष्ठिल उनके छाजा। हम सिर छाँह जियो जग राजा॥
दान देइ औ गनत न आवै। बलि औ करन न सरवरि पावै॥

मलिक मोहम्मद जायसी मुसलमान कवियों में एक परम प्रसिद्ध कवि हैं। इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ पद्मावत सं० १५७५ से सं० १६०० तक बनाया। इनका नाम केवल मोहम्मद था, जिसके पहले मलिक शब्द सम्मानसूचक लगा दिया गया है और जायस में रहने के कारण यह जायसी कहलाते थे। पद्मावत के अतिरिक्त इन्होंने एक और ग्रन्थ अखरावट नामक बनाया, जिसका आकार छोटा है और कविता की उत्तमता में भी यह पद्मावत से नीचा है। पद्मावत में २९७ पृष्ठ हैं और उसमें चित्तौर के महाराना का पद्मावत से विवाह और अलाउद्दीन से उनका युद्ध वर्णित है। इस बड़े ग्रन्थ में स्तुति, राजा, रानी, षटऋतु, बारह-मासा, नख-शिख, ज्योतिष, स्त्रियों की जाति, राग, रागिनी, रसोईं,

दुर्ग, फ़क़ीर, प्रेम, युद्ध, दुःख, सुख, राजनीति, विवाह, बुढ़ापा, मृत्यु, समुद्र, राजमन्दिर आदि सभी विषयों का वर्णन है और प्रत्येक विषय को जायसी ने बड़ी उत्तम रीति और विस्तार से कहा है। इनका वर्णन आदि-कवि वाल्मीकि की तरह विस्तार से होता है और उत्तम भी है। जायसी ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा अच्छी कही हैं और यत्र तत्र सदुपदेश भी अच्छे दिये हैं। इन्होंने स्तुति, नख-शिख, रसोईं, युद्ध और प्रेमालाप के वर्णन अच्छे किये हैं। इनकी भाषा अवध की पूर्वी भाषा है। उदाहरण—

"कहउँ लिलार दुइजकै जोती। दुइजै जोति कहाँ जग ओती॥
सहस किरनि जो सुरज दिपाये। देखि लिलार वहौ छिपि जाये॥
का सिर बरनौं दिपइ मयंकू। चाँदु कलंकी वह निकलंकू॥
तेहि लिलार पर तिलकु बईठा। दुइज पास मानौं धुव डीठा॥"
"गोरइँ दीख साथु सब जूझा। अपन काल नेरे भा बूझा॥
कोपि सिंघ सामुहि रन मेला। लाखन सन ना मरइ अकेला॥
जेहि सिर देइ कोपि तरवारू। सहि घोड़े टूटइ असवारू॥
टूटि कंध सिर परइँ निरारी। माठ मजीठ जानु रन ढारी॥
तुरुक बोलावैं बोलै नाहीं। गोरइँ मीचु धरी मन माँहाँ॥
सिंघ जियत नहिँ आपु धरावा। मुए पीछ कोऊ घिसियावा"॥

दिल्ली के जगत्प्रसिद्ध बादशाह **अकबर** का जन्म सं० १६०० में हुआ था। इन्होंने अपने प्रसिद्ध न्याय और दाक्षिण्य भाव के कारण हिन्दी-कवियों का भी विशेष सम्मान किया और कविता को इतना अपनाया कि ये स्वयम् भी काव्य करने लगे। इनकी

रचना शुद्ध व्रजभाषा में होती थी और वह प्रशंसनीय भी है। यथा—

साहि अकब्बर बाल की बाँह, अचिन्त गही चलि भीतर भौने।
सुंदरि द्वारहि डीठि लगाय कै, भागिबे को भ्रम पावति गौने॥
चौंकति सी चहुँ ओर बिलोकति, संक सकोच रही मुख मौने।
यौं छवि नैन छबीली के छाजत, मानौं बिछोह परे मृगछौने॥ १॥

इबराहीम आदिलशाह बीजापूर के बादशाह थे। इन्होंने सं० १६०७ के लगभग नवरस नामक रसों और रागों का एक उत्तम ग्रन्थ बनाया।

पिहानी-वासी जमालुद्दीन और इबराहीम भी इसी समय अच्छे कवि हुए हैं।

तानसेन पहले ग्वालियर के रहनेवाले ब्राह्मण और स्वामी हरिदास के शिष्य थे। इनका नाम त्रिलोचन मिश्र था। पहले यह गान-विद्या में बैजूबावरे के चेले थे, परन्तु उसके बाद शेख़ मोहम्मद ग़ौस के शिष्य हुए और उन्हीं के संग में यह मुसलमान भी हो गये। यह बड़े ही प्रसिद्ध गायनाचार्य हुए और कविता भी उत्तम करते थे। इन्होंने (१) संगीतसार, (२) रागमाला, तथा (३) श्रीगणेशस्तोत्र नामक तीन ग्रन्थ बनाये हैं। इन्होंने सूरदासजी की प्रशंसा में निम्न-लिखित दोहा बनाया:—

किधौं सूर को सर लग्यो किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो तन मन धुनत सरीर॥

मुसलमानों में परम प्रसिद्ध और सर्वोत्कृष्ट कवि **ख़ानख़ाना अब्दुल रहीम** का जन्म सं० १६१० में हुआ। यह महाशय अकबर शाह के पालक बैरम ख़ाँ के पुत्र थे। यह सदैव बादशाह के बड़े बड़े ओहदों पर रहा किये, यहाँ तक कि एक दफ़े उनकी समस्त सेना के सेनापति हो गये थे। इन्होंने यावज्जीवन गुणियों और कवियों का भारी सम्मान किया। एक बार केवल एक छन्द के पुरस्कार में गङ्ग कवि को ३६ लाख रुपये इन्होंने दान दिये थे। यह महाशय अर्बी, फ़ारसी, संस्कृत तथा हिन्दी के पूर्ण विद्वान् थे। हिन्दी में इन्होंने (१) रहीम सतसई, (२) बरवै नायिका-भेद, (३) रास-पंचाध्यायी और (४) शृङ्गार सोरठा नामक ग्रन्थ बनाये हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने और भाषाओं में भी ग्रन्थ-रचना की है। इन्होंने ब्रजभाषा, खड़ी बोली और पूर्वी बोली में कविता की है। इनका प्रत्येक छन्द एक अपूर्व आनन्द देता है। यह महाशय वास्तव में महा पुरुष थे। इनका महत्त्व इनकी कविता से भलीभाँति प्रकट होता है। इन्हें मान परम प्रिय था और ख़ुशामद को यह पसन्द नहीं करते थे। इनके विचार गम्भीर, दृष्टि पैनी और अनुभव बहुत ही विशेष था। इन्होंने नीति के दोहे बहुत ही उत्तम कहे हैं। इनकी रचना बहुत सच्ची है और उसमें हर स्थान पर इनकी आत्मीयता झलकती है। उदाहरण—

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था ।
चपल चखनवाला चाँदनी में खड़ा था ॥
ढीलि ओखि जल अँचवनि तरुनि सुगानि ।
धरि खसकाय घइलना मुरि मुसक्यानि ॥
काम न काहू आवई मोल न कोऊ लेइ ।
बाजू टूटे बाज को साहेब चारा देइ ॥
खैर खून खाँसी खुसी बैर प्रीति मधुपान ।
रहिमन दाबे ना दबैं जानत सकल जहान ॥
अब रहीम मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम ।
साँचे तैतौ जग नहीं झूठे मिलैं न राम ॥
माँगे मुकुरि न को गयो केहि न छाँड़िये साथ ।
माँगत आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ ॥
मुकता कर करपूर कर चातक तृषहर सोय ।
एतो बड़ो रहीम जल कुथल परे विष होय ॥
कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय ॥

शेख़ रहीम अबुलफ़ज़्ल के भाई थे । इन्होंने स्फुट दोहे अच्छे बनाये हैं ।

क़ादिरबक्स पिहानी ज़िला हरदोई-निवासी सं० १६३५ में उत्पन्न हुए । यह सैयद इबराहीम के शिष्य थे । इनका काव्य उत्तम होता था । इनके स्फुट छन्द देखने में आते हैं । अब तक कोई ग्रन्थ इनका प्राप्त नहीं हुआ । उदाहरण—

गुन को न पूँछै कोऊ औगुन की बात पूछैं
कहा भयो दई कलियुग यों खरानो है ।
पोथी औ पुरान ज्ञान ठट्ठन मैं डारि देत
चुगुल चबाइन को मान ठहरानो है ॥
कादिर कहत याते कछू कहिबे की नाँहि
जगत की रीति देखि चुप मन मानो है ।
खोलि देखो हियो सब ओरन सों भाँति भाँति
गुन ना हेरानो गुन गाहक हेरानो है ॥ १ ॥

रसखान को बहुत लोग सैयद इबराहीम पिहानीवाले समझते हैं, परन्तु वास्तव में यह दिल्ली के पठान थे जैसा कि दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में लिखा हुआ है । इन्होंने सं० १६७१ में प्रेमवाटिका और सुजान रसखान नामक बड़े ही उत्तम ग्रन्थ बनाये । मुसलमान होने पर भी इनको वैष्णवधर्म पर इतनी श्रद्धा थी कि ये श्रीनाथजी के दर्शन को गये, परन्तु द्वारपाल ने जाने नहीं दिया ! इस पर यह तीन दिन तक बिना अन्न जल पड़े रहे । तब श्रीविट्ठलनाथ महाराज ने इन्हें अपना शिष्य कर के वैष्णवधर्म में सम्मिलित कर लिया । इस से वैष्णवधर्म और विट्ठलनाथ जी की महान् उदारता प्रकट होती है । इनकी कविता से इनकी भक्ति और प्रेम पूर्णतया प्रकट होते हैं, और उसमें प्रेम का परम मनोहर चित्र खींचा गया है । कविजन इनकी कविता को बहुत ही पसन्द करते हैं । उदाहरण—

दम्पति सुख अरु विषय सुख पूजा निष्ठा ध्यान ।
इनते परे बखानिए सुद्ध प्रेम रसखान ॥

मित्र कलत्र सुबन्धु सुत इन मैं सहज सनेह।
सुद्ध प्रेम इनमैं नहीं अकथ कथा कहि एह॥
यक अङ्गी बिनु कारनहि यक रस सदा समान।
गनै प्रियहि सरबस्व जो सोई प्रेम प्रमान॥
डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहि कै प्रेम बखानौ सोय॥
देखि गदर हित साहिबी दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा बंस की ठसक छोंड़ि रसखान॥
प्रेम निकेतन श्री बनहि आय गोबर्धन धाम।
लह्यो सरन चित चाहि कै युगुल सरूप ललाम॥

मानुस हौं तो वही रसखान बसौं मिलि गोकुल गोप गुवारन।
जो पसु होउँ कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को जु भयो व्रज छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग होउँ बसेरो करौं वही कालिँदि कूल कदम्ब की डारन॥

सैयद **मुबारक अली** बिलग्रामी का जन्म सं० १६४० में हुआ था। यह महाशय अरबी फ़ारसी और संस्कृत के बड़े विद्वान् तथा भाषा के सत्कवि थे। सुना जाता है कि इन्होंने दस अङ्गों पर सौ सौ दोहे बनाये हैं, जिनमें **अलकशतक और तिल-शतक प्रकाशित** हो चुके हैं। इनका कोई अन्य ग्रन्थ देखने में नहीं आया। इनका काव्य परम मनोहर और प्रशंसनीय है। उदाहरण—

अलक मुबारक तिय बदन लटकि परी यों साफ़।
खुसनवीस मुनसी मदन लिख्यो कांच पर क़ाफ़॥

सब जग पेरत तिलन को थक्यो चित्त यह हेरि ।
तुव कपोल को एक तिल सब जग डारयो पेरि ॥

अकबर के पुत्र शाहज़ादा दानियाल भी कुछ कविता करते थे । इनका कविता-काल सं० १६६० के लगभग समझना चाहिए ।

सं० १६७७ में शेख़ हसन के पुत्र उसमान ने चित्रावली नामक एक प्रेमकहानी पदमावत के ढंग पर दोहा, चौपाइयों में बनाई । इसकी रचना उत्तम और मनोहर है । उदाहरण—

आदि बखानौं सोई चितेरा । यह जग चित्र कीन्ह जेहि केरा ॥
कीन्हेसि चित्र पुरुष अरु नारी । को जल पर अस सकइ सँवारी ॥
कीन्हेसि जोति सूर ससि तारा । को असि जोति सिरजइ को पारा ॥
कीन्हेसि नयन वेद जेहि सीखा । को अस चित्र पवन पर लीखा ॥

जमाल और बारक भी इसी समय के कवि हैं ।

आगरा-निवासी ताहिर कवि ने सं० १६५८ में उत्तम छन्दों में एक कोकसार बनाई । इनकी रचना परम ललित, शान्त और गम्भीर है । यथा—

पदुम जाति तनु पदुमिनि रानी । कंज सुबास दुवादस बानी ॥
कंचन बरन कमल की बासा । लोयन भँवर न छाँड़इ पासा ॥
अलप अहार अलप मुख बानी । अलप काम अति चतुर सयानी ॥
झीन बसन महँ झलकइ काया । जस दरपन महँ दीपक छाया ॥

दिलदार कवि का कविताकाल सं० १६८० के लगभग है। इसी संवत् में शेख़ नज़ीर आगरा-निवासी ने ज्ञानदीपक नामक ग्रन्थ बनाया।

ताज—यह मुसलमान जाति की स्त्री थीं। इनके वंश, स्थान इत्यादि का ठीक ठीक पता नहीं लगा। शिवसिंहसरोज में इनका संवत् १६५२ और मुंशी देवीप्रसाद ने सं० १७०० दिया है। इनकी कविता बड़ी ही सरस और मनोहर है। यह अपनी धुनि की बड़ी पक्की थीं। रसखान की भाँति यह भी श्रीकृष्णचन्द्र जी की भक्ति में रँगी हुई थीं। इनकी कविता पंजाबी और खड़ी बोली मिश्रित है। उदाहरण—

"सुनौ दिलजानी मेड़े दिल की कहानी तुम
इस्म ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देवपूजा ठानी मैं निवाजहू भुलानी तजे
कलमा कुरान सारे गुनन गहूँगी मैं॥
स्यामला सलोना सिर ताज सिर कुल्लेदार
तेरे नेह दाग मैं निदाघ ह्वै दहूँगी मैं।
नंद के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै
तांण नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहूँगी मैं॥ १॥"

आलम महाशय सं० १७३५ के लगभग हुए हैं। शिवसिंहसरोज में इनका बनाया एक छन्द शाहज़ादा मोअज़्ज़म की प्रशंसा का लिखा है। यह मोअज़्ज़म सं० १७६३ में जाजऊ की लड़ाई में मारे गये थे। उन्हीं की कविता होने के कारण इनका समय निर्धा-

रित किया गया है । यह महाशय जाति के ब्राह्मण थे, परन्तु शेख़ नामक एक रङ्गरेज़िन के प्रेम में फँस कर यह मुसलमान हो गये और उसके साथ विवाह करके सुख से रहने लगे । इनके जहान नामक एक पुत्र भी हुआ था । जान पड़ता है कि इनकी प्रियतमा का देहान्त इनके सामने ही हो गया था, क्योंकि उसके विरह में इन्होंने एक छन्द कहा है ।

"जा थर कीन्हे बिहार अनेकन ता थर काँकरी बैठि चुन्यो करैं ।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं ॥
आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यौ करैं ।
नैनन में जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं ॥"

इनका कोई ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया, परन्तु खोज में आलमकेलि नामक इनका एक ग्रन्थ लिखा है । हमने इनके बहुत से छंद संग्रहों में देखे हैं । इनकी कविता बड़ी ही मधुर और रसभरी होती है । यह महाशय बड़े ही प्रेमी कवि थे ।

शेख़ रङ्गरेज़िन पहले अपना ही काम करती थी । कहते हैं कि आलम कवि ने इसे एक बार एक पगड़ी रँगने को दी, जिसके छोर में एक काग़ज़ का टुकड़ा बँधा रह गया था । इसने खोलकर देखा तो उसमें यह दोहार्ध लिखा था—

"कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन ।"

यह आधा दोहा आलम ने बनाया था, पर शेष उस समय न बन सकने से पीछे बनाने को रख छोड़ा था । शेख़ ने उसका दूसरा

पद यों पूरा करके उसी टुकड़े पर लिख पाग रँग उस टुकड़े को उसीमें बाँध दिया—

"कटि को कंचन काटि बिधि कुचन मध्य धरिदीन"

आलम जी ने अपनी पगड़ी ले जाकर जब यह पद पढ़ा तो उसे रँगाई देने आये और उस से पूछा कि "इस दोहे को किसने पूरा किया?" उत्तर पाया कि "मैंने!" बस, आलम ने एक आना पगड़ी की रँगाई और एक सहस्र मुद्रा दोहे की बनवाई शेख़ को दिये। उसी दिन से इन दोनों में प्रेम हो गया और अन्त में आलम ने मुसलमानी मत ग्रहण करके इसके साथ विवाह कर लिया। कहते हैं कि शेख़ ने अपने पुत्र का नाम जहान रक्खा था। एक बार आलम के आश्रयदाता शाहज़ादा मुअज्ज़म ने हँसी करने के विचार से शेख़ से पूछा, "क्या आलम की औरत आप ही हैं?" इस पर इसने तुरन्त उत्तर दिया, "जहाँपनाह! जहान की माँ मैं हीं हूँ।" शेख़ के छन्द परम मनोहर होते थे। हमने इनका कोई ग्रन्थ नहीं देखा, परन्तु छन्द संग्रहों में बहुत पाये हैं। इनकी भाषा ब्रजभाषा है। इनकी रचना में इनके प्रेमी होने का प्रमाण मिलता है। यह महिला वास्तव में एक सुकवि थी। उदाहरणार्थ इनका एक छन्द यहाँ लिखा जाता है—

"रति रन विषे जे रहे हैं पति सनमुख
तिन्हे बकसीस बकसी है मैं बिहँसि कै।
करन को कंकन उरोजन को चन्द्रहार
कटि माहिँ किंकिनी रही है कटि लसि कै॥

सेख कहै आनन को आदर सों दीन्हों पान
नैनन मैं काजर विराजै मन बसि कै।
ए रे बैरी बार ये रहे हैं पीठि पाछे
याते बार बार बाँधति हौं बार बार कसि कै॥

पठान सुल्तान राजगढ़, भूपाल, के नवाब थे। ये महाशय कविता के परमप्रेमी संवत् १७९१ के इधर उधर हो गये हैं। इनके नाम पर चन्द्र कवि ने बिहारी सतसई के दोहों पर कुण्डलियाएं लगाई हैं। चन्द्र ऐसे सुकवि को आश्रय देना इनकी गुणग्राहकता प्रकट करता है। उदाहरण—

नासा मोरि नचाय दृग करी ककाकी सौंहँ।
कांटे लौं कसकति हिये गड़ी कटीली भौंहँ॥
गड़ी कटीली भौंह केस निरवारति प्यारी।
तिरछी चितवनि चितै मनो उर हनति कटारी॥
कहि पठान सुल्तान बिकल चित देखि तमासा।
वाको सहज सुभाव और को बुधि बल नासा॥

अब्दुल रहमान कवि औरङ्गज़ेब के पुत्र बहादुर शाह के मनसबदार थे। इन्होंने यमकशतक नामक एक ग्रन्थ बनाया है, जिसमें १०७ दोहे हैं, जिनमें श्लेष, यमक, एकाक्षरी इत्यादि के प्रबन्ध हैं और विविध विषय कहे गये हैं। इस ग्रन्थ से विदित होता है कि यह महाशय भाषा पूर्ण रीति से जानते थे और संस्कृत में भी कुछ बोध रखते थे। इस ग्रन्थ की भाषा कठिन है, जिसका कारण स्यात् चित्रकाव्य हो। उदाहरण—

"पलकन मैं राखैां पियहि पलक न छांडैां संग।
पुतरी सो तै होहि जिन डरपत अपने अंग॥
करकी कर की चूरियां बरकी बरकी रीति।
दरकी दरकी कंचुकी हरकी हरकी प्रीति॥"

सभा के खोज में महबूब कवि का जन्म-काल संवत् १७६१ दिया हुआ है। इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिला, पर छन्द बहुत देखे गये हैं। इनकी रचना सरल और सानुप्रास थी और वह परम प्रशंसनीय है।

मृग मद गन्ध मिलि चन्दन सुगन्ध बहै
केसरि कपूर धूरि पूरत अनन्त है।
मोर मद गलित गुलाबन बलित भौंर
भनै महबूब तैार और दरसन्त है॥
रच्यो परपंत्र सरपंच पंचसर जूने
कर लै कमान तान बिरही हनन्त है।
छीनि छिति लई ऋतु राजत समाज नई
उनई फिरत भई सिसिर बसन्त है॥

याकूब खाँ ने संवत् १७७५ में 'रसभूषण' ग्रन्थ रचा। इन्होंने केशवदास-कृत रसिकप्रिया की टीका भी बनाई है।

सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी उपनाम रसलीन कवि ने अट्ठारहवीं शताब्दी में कविता की थी। इन्होंने 'अंगदर्पण' और 'रसप्रबोध' नामक दोहों के दो ग्रन्थ बनाये। अंगदर्पण संवत् १७८४ में बना था। इसमें १७७ दोहों द्वारा नख-शिख का विषय कहा

गया है । इसमें उपमायें, रूपक और उत्प्रेक्षायें उत्तम हैं । 'रस प्रबोध' एक बड़ा ग्रन्थ है जिस में ११५५ दोहों द्वारा रसों का विषय बड़े विस्तारपूर्वक और बड़ी उत्तम रीति से सांगोपांग वर्णित है । रसों का विषय भाव-भेद पर अवलम्बित है, इस कारण रसलीन ने इस ग्रन्थ में भावभेद भी बड़े विस्तार के साथ कहा है । भावभेद में आलम्बन के अन्तर्गत नायिकाभेद और उद्दीपन में षड्ऋतु भी आ जाते हैं । इन विषयों का भी इस कवि ने उत्तम और सांगोपांग वर्णन किया है । यह ग्रन्थ संवत् १७८८ में समाप्त हुआ । रसलीन ने मुसलमान होने पर भी व्रजभाषा बहुत शुद्ध लिखी है और उसमें फ़ारसी के शब्द नहीं आने पाये हैं । इनकी भाषा और किसी ब्राह्मण कवि की भाषा में कुछ भी अन्तर नहीं है । यही हाल अधिकांश मुसलमान कवियों की भाषा का है । इनकी कविता हर प्रकार से सुन्दर और सराहनीय है और इनकी गणना आचार्यों में है । उदाहरण—

मुकुत भये घर खोय कै कानन बैठे जाय ।
घर खोवत हैं और को कीजै कौन उपाय ॥

कत देखाय कामिनि दई दामिनि को निज बाँह ।
थरथराति सी तन फिरै फरफराति घन माँह ॥

वृद्ध कामिनी काम तै सून धाम मैं पाय ।
नेवर झनकावति फिरै देवर के ढिग जाय ॥

तिय सैसव जोबन मिले भेद न जान्यो जात ।
प्रात समै निसि द्यौस के दुवौ भाव दरसात ॥

अलीमुहिब्ब ख़ां उपनाम पीतम, आगरानिवासी, ने संवत् १७८७ में खटमल-बाईसी नामक एक परम मनोहर हास्य-रस-पूर्ण ग्रन्थ बनाया। इसकी रचना सराहनीय है। यह व्रजभाषा में कहा गया है। इस कवि के केवल यह २२ छन्द हमने देखे हैं, पर उन्हीं से इसकी रचना-पटुता प्रकट है। उदाहरण—

जगत के कारन करन चारौ बेदन के,
कमल में बसे वै सुजान ज्ञान धरि कै।
पोखन अवनि दुख सोखन तिलोकन के,
समुद में जाय सोये सेस सेज करि कै॥
मदन जरायो औ सँहार्‌यो दृष्टि ही सों सृष्टि,
बसे हैं पहार वेऊ भाजि हर बरि कै।
बिधि हरिहर और इनते न कोई तेऊ
खाट पै न सोवैं खटमलन सों डरि कै॥

बाघन पै गयो देखि बनन में रहे छिपि,
सांपन पै गयो तौ पताल ठौर पाई है।
गजन पै गयो धूरि डारत हैं सीस पर,
बैदन पै गयो कहू दारू न बताई है॥
जब हहराय हम हरी के निकट गये,
मोसों हरि कह्यो तेरी मति भूल छाई है।
कोऊ न उपाव भटकत जनि डोलै सुनैं,
खाट के नगर खटमलन की दोहाई है॥

नूरमुहम्मद ने संवत् १८०० के लगभग तीस वर्ष की अवस्था में इन्द्रावती नामक दोहा-चौपाइयों में जायसीकृत पद्मावत के ढंग पर एक परमोत्तम प्रेमग्रन्थ बनाया। इसका प्रथम भाग प्रायः १५० पृष्ठों में नागरीप्रचारिणी ग्रन्थमाला में निकला है। इन्होंने वावैला आदि फ़ारसी शब्द, और त्रिविष्टप, स्वान्त, वृन्दारक, स्तम्बेरम आदि संस्कृत शब्द भी अपनी भाषा में रक्खे हैं। इन्होंने जायसी की भाँति गँवारी अवधी भाषा में कविता की है, परन्तु फिर भी इनकी काव्यछटा अत्यन्त मनमोहिनी है। इनकी रचना से विदित है कि यह महाशय काव्यांग जानते थे। एक आध स्थान पर इन्होंने कूट भी कहे हैं। इनका मन-फुलवारीवाला वर्णन बड़ा ही विशद बना है और योगी के अचेत होने तथा लट पर भी इनके भाव अच्छे बँधे हैं। इस कवि ने जायसी की भाँति स्वाभाविक वर्णन ख़ूब विस्तार से किये हैं और भाषा, भाव, वर्णन-बाहुल्य, तीनों में अपनी कविता जायसी से मिला दी है। इन्होंने प्रीति का भी अच्छा चित्र दिखाया है। उदाहरण—

जब लगि नैन चारि रहु चारी। राजकुवँर कहँ ठग अस मारी॥
बहेउ पवन लट पर अनुरागे। लट छितरानि पवन के लागे॥
परी बदन पर लट लटकारी। तपा दिवस भै निसि अँधियारी॥
मोहि परा दरसन कर चेरा। हना बान धन आँखिन केरा॥
यह मुख यह तिल यह लट कारी। ये तो कहि कै गिरा भिखारी॥
एक कहा लट जामिनि होई। राति जानि जोगी गा सोई॥
एक कहा मुख ससिहि लजावा। लट योगी को मन अरुझावा।
एक कहा लट नागिनि कारी। डसा गरल सो गिरा भिखारी॥

प्रेमी का बनाया हुआ अनेकार्थ-नाम-माला ग्रन्थ हमने देखा है। इसमें कुल १०३ छन्द हैं, जिनमें दोहों की विशेषता है। इनकी भाषा सरल और साधारण है। सरोजकार ने इनका जन्म-काल संवत् १७९८ लिखा है।

ज़ुल्फ़िक़ार ख़ां बुन्देलखंड के शासक संवत् १७८२ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने ज़ुल्फ़िक़ार सत्सई नामक एक उत्तम ग्रन्थ रचा है।

अनवरख़ां ने संवत् १८१० में अनवर-चन्द्रिका नामक सत्सई की एक उत्तम और प्रख्यात टीका रची थी।

इस स्थान तक इस लेख में मुख्य मुख्य ३४ मुसलमान कवियों का वर्णन है, जिनके नाम सुगमता के लिए अक्षरक्रम से यहाँ फिर लिखे जाते हैं—

१ अकबर,
२ अनवर,
३ अब्दुल रहमान,
४ अमीर ख़ुसरो,
५ आलम,
६ इबराहीम,
७ इबराहीम आदिलशाह,
८ उसमान,
९ क़ादिर
१० क़ुतुब अली,
११ क़ुतुबन शेख़,
१२ ख़ानख़ाना,
१३ जमाल,
१४ जमालुद्दीन पिहानीवाले,
१५ जायसी,
१६ ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ,
१७ ताज,
१८ तानसेन,
१९ ताहिर,
२० दिलदार,

२१ नूरमुहम्मद,
२२ पठान सुलतान,
२३ पीतम,
२४ प्रेमी,
२५ बारक,
२६ महबूब,
२७ मुबारक,
२८ मुल्ला दाऊद,
२९ या.कूब खां,
३० रसखान,
३१ रसलीन,
३२ शेख़,
३३ शेख़ फ़हीम,
३४ शाहज़ादा दानियाल ।

इन ३४ कवियों का समय क्रम-विभाजित करने से जान पड़ता है कि अकबर के पूर्व केवल पाँच महाशय हुए हैं, यद्यपि मुसलमानों में हिन्दी का प्रचार पृथ्वीराज के पराजय के पहले ही से चला था । अकबर का समय संवत् १६१३ से आरम्भ होता है और यद्यपि इस महापुरुष का देहान्त संवत् १६६२ में ही हो गया, पर इस के समय के कविगण बहुत आगे तक जीवित रहे होंगे । अतः भाषा के विचार से अकबर का काल १६२५ से १६८० तक मानना चाहिए । इस समय के १६ कवि उपर्युक्त नामावली में हैं । अतः प्रायः आधे मुसलमान कवि इसी गुणग्राही बादशाह के समय में हुए हैं, जिनमें से कई ख़ास इसी व्यक्ति के आश्रित थे । स्वयं इस बादशाह ने तथा बीजापूर के बादशाह ने भी इस सुन्दर समय में कविता की है । हिन्दू कवियों की भी संख्या इस समय बहुत बढ़ी थी । इस परम-सन्तोषजनक उन्नति का एक मात्र कारण अकबर ही न था, परन्तु अन्य कारणों में इसका प्रोत्साहन भी एक प्रधान कारण था और

मुसलमानों में कविता-प्रचार का अकबर बहुत ही बड़ा कारण था। अकबर के पीछे संवत् १७९० पर्य्यन्त मोग़ल साम्राज्य का समय समझना चाहिए। इस समय में उपर्युक्त उत्तम कवियों की गणना में ९ कवि हैं, जिससे प्रकट है कि यद्यपि मुसलमानों में अन्य भाषाओं का प्रेम अब भी चला जाता था पर वह कम हो चला था। अकबर के समय में तानसेन, ख़ानख़ाना, रसखान और मुबारक उत्तम कवि थे और इस काल में आलम, शेख़, महबूब और रसलीन यद्यपि वैसे न थे पर तो भी अच्छे कवि थे। संवत् १७९० से अद्यपर्य्यन्त मुसलमानों की अवनति होती आई है और अवनति के साथ उनका अन्य विद्याओं का प्रेम भी बहुत कम हो गया, यहाँ तक कि इस समय में केवल चार अच्छे हिन्दी के मुसलमान कवि हुए हैं और उनमें भी परमोत्तम एक भी न था। इन ३४ कवियों में कुतबन शेख़, जायसी, उसमान और नूरमोहम्मद ने देवताओं से सम्बन्ध न रखनेवाली प्रेम-कथाओं की चाल हिन्दी में चलाई। हिन्दू-कविगण जब ऐसी कथायें लिखते थे तब धार्म्मिक विचारों से किसी देवकथा का डोर प्रायः अवश्य लिये रहते थे, पर मुसलमानों का धर्म्म-कथाओं से कोई सम्बन्ध न था, सो उन्होंने कोरी प्रेमकथाओं के उत्तम वर्णन किये। हिन्दू-कविगण ने भी कई वैसे ही ग्रन्थ बनाये पर अधिकता से नहीं। मुसलमान कवियों में जायसी, ख़ानख़ाना, रसखान, मुबारक, आलम, शेख़ और रसलीन भाषा-काव्य के आचार्य गिने जाते हैं, यद्यपि काव्य-प्रौढ़ता में वह ख़ानख़ाना (रहीम) और रसखान की समता

नहीं कर सके हैं। ख़ानख़ाना ने नीति अच्छी कही है और रसखान, शेख़ तथा आलम प्रेमी कवि थे। इस उपर्युक्त वर्णन में अकबर के काल तक के सब कवि आ गये हैं, परन्तु उसके पीछे के केवल प्रधान प्रधान कवि ही लिखे गये हैं। अकबर काल के पीछे वाले अप्रधान कवियों का भी सूक्ष्म कथन अब यहाँ किया जाता है। इनमें से ४१ कवियों का समय ज्ञात है और शेष का अद्यापि हमें विदित नहीं।

नाम	कविता-काल संवत् में	विवरण
(१) अहमद	१६९६	... स्फुट काव्य।
(२) कारे बेग	१७००	... ,,
(३) रज्जबजी	१७००	... दादूदयाल के शिष्य, सर्वाङ्गी ग्रन्थ रचा।
(४) क़ाज़ी क़दम	१७०६ के पूर्व	... साखी ग्रन्थ।
(५) हुसैन	१७०८	... इनके छन्द कालिदास-हज़ारा में हैं।
(६) दाराशाह	१७१०	... दोहा-स्तव-संग्रह रचा। यह शाहजहाँ के बड़े पुत्र थे।
(७) मीर रुस्तम	१७३५	... इनके छन्द कालिदास-हज़ारा में हैं।
(८) ज़ैनुद्दीन मोहम्मद	१७३६	... स्फुट काव्य। हमने इनका केवल एक छन्द पीठ का देखा है जो उत्तम है।

नाम	कविता-काल संवत् में		विवरण
(९) दानिशमन्द ख़ाँ	१७३७	...	औरङ्ग़ज़ेब के कृपापात्र।
(१०) आसिफ़ ख़ाँ	१७३८	...	—
(११) करीम	१७५४ के पूर्व	...	इनका नाम सूदन की नामावली में है।
(१२) मुहम्मद	१७६०	...	—
(१३) अब्दुलजलील बिल-ग्रामी	१७६५	...	औरङ्ग़ज़ेब के दरबार में थे।
(१४) रहीम	१७८० के पूर्व	...	ख़ानख़ाना से इतर।
(१५) आदिल	१७८५	...	स्फुट काव्य।
(१६) आज़म ख़ाँ	१७९६	...	शृंगारदर्पण ग्रन्थ।
(१७) तालिब शाह	१८००	...	खड़ी बोली मिश्रित काव्य।
(१८) मीर अहमद बिलग्रामी।	१८००	...	—
(१९) रसनायक (तालिब अली बिलग्रामी)	१८०३	...	—
(२०) यूसुफ़ ख़ाँ।	१८२०	...	रसिकप्रिया व सतसई की टीका।
(२१) नवाज़ज़ोलाह बिलग्रामी	१८३०	...	—

नाम	कविता-काल संवत् में		विवरण
(२२) किशवर अली	१८३७	...	सारचन्द्रिका।
(२३) काज़िम अली	१८५८	...	सिंहासनबत्तीसी।
(२४) मिरज़ा मद-नायक बिलग्रामी	१८६०	...	अच्छे गवैया तथा सुकवि।
(२५) नवाब हिम्मत बहादुर	१८६०		—
(२६) सैयद पहाड़	१८८४ के पूर्व	...	रससार।
(२७) ईसवी	१८८९ के पूर्व	....	टीका सतसई।
(२८) आज़म	१८९० के पूर्व	...	षट्ऋतु तथा नखशिख पर उत्तम काव्य किया।
(२९) क़ासिम शाह	१८९९	...	कथा हंस-जवाहिर।
(३०) हाजी	१९१७ के पूर्व	...	प्रेमनामा।
(३१) बख़तावरख़ाँ	१९२२	...	बिजावर के रहने वाले। सुन्नीसार व धनुषसमैया रचे।
(३२) ख़ान	१९२५ के पूर्व	...	—
(३३) अलीमन	१९३३	...	—
(३४) लतीफ़	१९३४	...	—
(३५) ज्ञान अली	१९५६ के पूर्व	...	सियवर-केलि पदावली।
(३६) मीर (सैयद अमीर अली)	वर्त्तमान	...	देवरी कलांवाले।

नाम	कविता-काल संवत्	विवरण
(३७) हफ़ीज़ुल्ला ख़ाँ	वर्तमान	... कई संग्रह तथा स्फुट छन्द रचे।
(३८) पीर (पीर मोहम्मद)	,,	... डरदौली सीतापुर।
(३९) सैयद छेदा शाह	,,	... पैाहार, कानपूर।
(४०) मोहम्मद अमीर ख़ां	,,	... आगरा।
(४१) मुंशी ख़ैराती ख़ाँ	,,	... देवरी सागर।

अज्ञात समय के कवि।

(१) अलहदाद
(२) आरिफ़
(३) आसिया पीर
(४) इज़दानी
(५) इन्शा
(६) क़ाज़ी अकरम फ़ैज़
(७) ख़ान आलम
(८) ख़ान मुलतान
(९) ख़ान सुलतान
(१०) ग़ुलामी
(११) जानजानाँ
(१२) ज़ुल्क़रनैन
(१३) तेग़अली (बदमाशदर्पण ग्रन्थ)
(१४) दीनदरवेश
(१५) नजबी
(१६) नबी (नखशिख)
(१७) नयाज़
(१८) निशात
(१९) पंथी (मिर्ज़ा रोशन ज़मीर)
(२०) फ़ज़ायल ख़ां
(२१) फ़रीद
(२२) मियाँ
(२३) मीरन (नखशिख)
(२४) मीर माधौ
(२५) मुराद
(२६) रसिया (नजीब ख़ाँ)
(२७) रहमतुल्ला
(२८) रंगखानि
(२९) वजहन
(३०) वहाब (बारहमासा खड़ी बोली में परम प्रसिद्ध है।)

(३१) वाजिद (अरेला)
(३२) वाहिद
(३३) साहेब
(३४) सुलतान
(३५) शाह महम्मद
(३६) शाह शफ़ी
(३७) शाह हादी
(३८) शेख़ गदाई
(३९) शेख़ सलीमन
(४०) हाशिम बीजापुरी
(४१) हिम्मत ख़ाँ
(४२) हुसैन मारहरी
(४३) हुसैनी

इन उपर्युक्त ४१ कवियों में, जिनका समय दिया गया है, १५ कवि ऐसे हैं जो अकबर काल के पीछे संवत् १७९० पर्य्यन्त हुए; अर्थात् उस समय तक जब तक कि मुग़ल राज्य भारत में स्थिर था। इनमें केवल दाराशाह ग्रैार दानिशमंद ख़ाँ इतिहास-प्रसिद्ध पुरुष हैं, परंतु इनमें परमोत्तम कवि एक भी नहीं हुआ। शेष कवियों में २० व्यक्ति मोग़ल राज्य के पीछे हुए, जिनमें मिर्ज़ा मदनायक गान-शास्त्र में परम पटु थे। कविता में किसी की भी रचना उत्कृष्ट नहीं कही जा सकती। साधारणतया आज़म की कविता कुछ अच्छी है। शेष ६ कवि इस समय वर्तमान हैं। इनमें सिवाय मीर ग्रैार अमीर के कोई भी सुकवि नहीं कहा जा सकता।

अज्ञात काल के ४६ कवियों में वहाब का बारहमासा प्रशंसनीय है, परन्तु शेष कवियों का भाषा-साहित्य में विशेष नाम नहीं है ग्रैार न उनकी रचना ही देखने में आती है। किसी प्रकार उनके नाममात्र प्राप्त हो सके हैं। वर्तमान समय में केवल ६ मुसलमान कवियों के होने से प्रकट होता है कि आज कल मुसलमानों में

हिन्दी-प्रेम घट रहा है और यदि यही दशा स्थिर रही तो कदाचित् दुःख के साथ यह भी देखने में आवे कि जायसी, अकबर, रहीम, रसखान आदि महानुभावों के वंशधरों में एक भी हिन्दी-प्रेमी शेष न रह जावे। सब कलाओं की ओर ध्यान देना और सब विद्याओं में योग्यता प्राप्त करना विशेष उन्नतिशील जाति का धर्म्म है। महमूद ग़ज़नवी के समय से यहाँ मुसलमानों की उन्नति का प्रारंभ हुआ और उसी समय से उनमें हिन्दी-प्रेमी भी उत्पन्न हुए। हुमायूं के समय तक मुसलमानों की धीरे धीरे उन्नति होती गई और उस समय तक उनमें हिन्दी-प्रेम भी कुछ कुछ बढ़ता ही गया। अकबर के समय से मुसलमानों ने यकायक बड़ी प्रचंड उन्नति की। उसी समय उनमें हिन्दी-प्रेम की मात्रा बहुत ही बढ़ गई और उस समय कितने ही परमोत्तम मुसलमान कवि हुए। कुल ११८ मुसलमान कवियों में सर्वोत्कृष्ट कवि और प्रेमी इसी समय हुए। औरंगज़ेब के पीछे से उनमें एक भी हिन्दी का सुकवि नहीं हुआ, यद्यपि अकबर के पीछे भी हिन्दी ने बहुत ही सन्तोषजनक उन्नति की और अब तक कर रही है। आशा है कि भविष्य में हमारे मुसलमान भाई अपने ऊपर से यह आक्षेप दूर कर अपने अकबरी काल के पूर्वपुरुषों का अनुकरण कर के उत्तरोत्तर विद्यानुराग का परिचय देंगे।

छठा पुष्प।

हिन्दी-लिखित पुस्तकों की खोज (सं० १९६८)।

सब से प्रथम संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का काम सरकार ने सन् १८६८ ईसवी में लाहौर-निवासी पण्डित राधाकृष्ण के प्रस्ताव पर प्रारम्भ किया। सन् १८९५ ई० में काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की प्रार्थना पर एशियाटिक सुसाइटी, बंगाल, ने हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज प्रारम्भ की और प्रायः ६०० पुस्तकों का पता लगाया भी गया, परन्तु सुसाइटी ने फिर यह काम बिलकुल छोड़ दिया, यहाँ तक कि खोजी हुई ६०० पुस्तकों के नाम भी उसने प्रकाशित न किये। सभा ने भारत गवर्नमेंट तथा प्रान्तीय गवर्नमेंट से भी इस विषय पर पत्र-व्यवहार किया, और प्रान्तीय सरकार ने शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर को यह आज्ञा भी दी कि संस्कृत-ग्रन्थों के साथ हिन्दी के ग्रन्थों की भी खोज हो, पर इसका फल सन्तोष-जनक नहीं हुआ। मार्च १८९९ ई० में सभा ने फिर प्रान्तीय सरकार से इस विषय पर लिखा-पढ़ी छेड़ी, जिसका फल यह हुआ कि सरकार ने यह काम सभा को ही सौंप दिया और इसके व्यय के निमित्त ४००) रु० वार्षिक मंज़ूर किया, जो कुछ दिनों के पीछे ५००) रु० कर दिया गया। सभा ने १९०० से यह काम प्रारम्भ किया और सभा की ओर से ९ वर्ष तक इसे बाबू श्यामसुन्दर-

दास ने बड़ी योग्यता और परिश्रम से सम्पादित किया। तदनन्तर उनके कश्मीर में नियुक्त हो जाने के कारण अवकाशाभाव से उन्हें यह काम छोड़ना पड़ा और १९०९ ई० से यह मुझे (श्याम-विहारी मिश्र) को सौंपा गया। बाबू साहब ने खोज की नौ रिपोर्टें और मैंने दो लिखी हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने १९०६ से १९०८ के बाबत एक त्रैवार्षिक रिपोर्ट भी लिखी। इनमें से प्रथम छः रिपोर्टें सरकार ने पूरी पूरी प्रकाशित कर दीं, परन्तु पीछे से यह निश्चय हुआ कि वार्षिक रिपोर्टों का मर्म्म मात्र प्रकाशित किया जाया करे और प्रति तीसरे वर्ष तीन वर्षों की खोज का हाल पूर्ण रूप से प्रकाशित हो। बाबू साहब की लिखी हुई त्रैवार्षिक रिपोर्ट अभी तक सरकार प्रकाशित नहीं कर सकी है।

खोज में प्रत्येक पुस्तक के विषय में निम्न बातें लिखी जाती हैं:—

(१) पुस्तक का नाम।

(२) किस वस्तु पर वह लिखी है, अर्थात् काग़ज़, भोजपत्र, ताम्रपत्र या किस चीज़ पर?

(३) पृष्ठों का आकार।

(४) प्रति पृष्ठ में कितनी पंक्तियाँ हैं?

(५) कुल पुस्तक के (अनुष्टुप) श्लोकों के बराबर आकार में है?

(६) पुस्तक देखने में कैसी जान पड़ती है? अर्थात् पुरानी या नई, फटी हुई या अच्छी, पूरी अथवा अपूर्ण?

(७) किन अक्षरों में पुस्तक लिखी है?

(८) पुस्तक कब बनाई गई थी ?

(९) पुस्तक कब लिखी गई थी ?

(१०) पुस्तक किसके पास है ?

(११) अँगरेज़ी में विवरण ।

(१२) आदि और अन्त से उदाहरण ।

(१३) विषय ।

(१४) हिन्दी में विवरण ।

केवल आदि और अन्त के उदाहरण देने में यह गड़बड़ पड़ता था कि कभी कभी उत्तम पुस्तकों के आदि और अन्त के छन्द परमोत्तम नहीं होते हैं अथवा इसकी विपरीत दशा होती है, सो उन पुस्तकों की उत्तमता या न्यूनता ऐसे उदाहरणों से प्रकट नहीं होती थी । इसी प्रकार गद्य के ग्रन्थों में भी कभी कभी आदि तथा अन्त में दोहे होते हैं, सो यह नहीं ज्ञात होता था कि वे ग्रन्थ गद्य के हैं या पद्य के । इन कारणों से हाल में यह निश्चय किया गया कि मध्य के भी कुछ उत्तम भाग उदाहरण में लिखे जावें ।

सभा की ओर से एक महाशय वैतनिक एजंट भी हैं, जो सब कहीं घूम घूम कर खोज का काम किया करते हैं । उनसे अब यह भी कह दिया गया है कि जहाँ तक सम्भव हो, सभा के लिए उत्तम हस्तलिखित ग्रन्थ एकत्रित करने का भी प्रयत्न करें । पहले भी यह काम कुछ कुछ होता था और काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ने ग्रन्थमाला में जो ग्रन्थ निकाले हैं, उनमें बहुत से इसी

प्रकार एकत्रित किये गये थे। अब ऐसे ग्रन्थ विशेष रूप से एकत्र करने का प्रयत्न होगा। इस स्थान पर बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि बहुतेरे लोग शायद यह समझते हैं कि सभा खोज के काम से कुछ लाभ उठाती है। ऐसे और अनेक अन्य विचारों से वह लोग इस काम में ठीक सहायता नहीं देते और अपने पास के ग्रन्थ दिखाने में बड़ी आनाकानी करते हैं। "आज हमको .फुरसत नहीं, और दिन आइएगा," "आज हमें बाहर जाना है," "आज हमारी तबीयत अच्छी नहीं," इत्यादि इत्यादि अनेक बहाने करके बहुतेरे लोग सभा के एजंट को बेकाम बार बार भ्रमाया करते हैं और सैकड़ों नख़रों के बाद ग्रन्थों की नोटिस लेने देते हैं। हम यह नहीं चाहते कि अपना काम छोड़ कर लोग सभा के ही काम में एजंट के साथ लग जाँय, पर हमको विश्वास हो गया है कि बहुतेरे सज्जन केवल बहाने करके ग्रन्थ दिखाने से जी चुराते हैं। एजंट ने हमसे स्वयं ऐसा कहा है, तथा उनके रोज़नामों में विस्तृत विवरण देख कर सदा ही हमें यह बातें विदित होती रहती हैं। सभा के एजंट उसके एक मेम्बर ही हैं और उनके कथन के सत्य होने में हमें कुछ भी सन्देह नहीं, क्योंकि हमने कई बार उसकी जाँच भी की और सदा उसे ठीक पाया। हमने इस स्थान पर यह सब इस कारण लिख दिया है कि यदि हिन्दी के प्रेमी और विद्वानगण अपने अपने स्थानों में और उनके आस पास सभा की इस विषय में समुचित सहायता करने की कृपा करें तो काम इससे बहुत अधिक हो और व्यय कम पड़े। हमें आशा है कि हिन्दी-प्रेमी-मात्र हमारी इस विनती पर ध्यान देंगे। सभा को

सरकार से इस काम के लिए ५००) वार्षिक सहायता मिलती है, पर प्रायः प्रति वर्ष सभा को इससे अधिक व्यय करना पड़ता है, यहाँ तक कि अर्थाभाव के कारण हाल में सभा को एजंट के वेतन में १०) मासिक की कमी करनी पड़ी है, अर्थात् अब उनको ४०) के ठौर केवल ३०) मासिक दिया जाता है। पर प्रायः सदा ही सफ़र करनेवाले ऐसे काम के लिए कि जिसमें कुछ अँगरेज़ी से परिचित और हिन्दी में अच्छी योग्यता रखनेवाले पुरुष की आवश्यकता हो, कोई उपयुक्त मनुष्य इतने कम वेतन पर मिलना कठिन है। एजंट महाशय सभा के मेम्बर हैं और हिन्दी-प्रेम के कारण काम करते जाते हैं। तात्पर्य्य यह कि सभा इस कार्य से कुछ भी लाभ नहीं उठाना चाहती और न कभी उसने लाभ उठाया है, वरन उलटा बहुत सा धन अपनी ओर से व्यय कर दिया है। हमें आशा है कि इस ओर हिन्दी-प्रेमीगण ध्यान देंगे।

कुछ महाशय ऐसे भी हैं जो अपने यहाँ के हस्तलिखित ग्रन्थ गुप्त रखना ही उत्तम समझते हैं। कतिपय लोग तो लोभवश ऐसा करते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि यदि किसी प्रसिद्ध प्रति की नोटिस या प्रतिलिपि हो गई तो उन की पुस्तक देखने लोग कम आवेंगे और उस पर न्यौछावर कम होगी। पर अधिकांश सज्जन इस डर से अप्राप्य ग्रन्थ-रत्नों को प्रकाशित नहीं करना चाहते कि कहीं वे "अनधिकारियों के पास न पहुँच जाँय!" ऐसे सज्जनों से हमारी सविनय प्रार्थना है कि ऐसा करने से वे अपना नाम न होने देने के अतिरिक्त उन ग्रन्थकारों के ऊपर बड़ा अत्याचार करते हैं, जिनके ग्रन्थ उनके यहाँ आ पड़े हैं! एक तो

जैसे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने श्रीचन्द्रावली नाटिका लिखने में कहा है, अनधिकारी लोग वैसे ग्रन्थों को पढ़ें एवं समझेंहींगे काहे को? श्रैार दूसरे यदि श्री तुलसीदास जी, श्री सूरदासजी, श्री स्वामी हितहरिवंशजी, इत्यादि महात्माश्रों की रचनाएँ इसी भाँति छिपा कर रख ली जातीं तो आज दिन उन्हें कौन जानता? उनके नाम सूर्य्यचन्द्रवत् हिन्दी-संसार में क्यों कर देदीप्यमान होते? श्रैार उनकी पीयूषवर्षिणी वाणी से हम लोगों जैसे अधम पुरुषों का कैसे हित होता? हमारी समझ में जितने कुछ उत्तम ग्रन्थ ठौर ठौर छिपे रक्खे हों उन सबका प्रकाशित हो जाना ही ठीक है। आशा है कि साहित्य-प्रेमीगण लोगों को इस विषय में समझावेंगे श्रैार उत्साह देंगे। बहुत स्थानों पर पोथियों के सुरक्षित रहने का उत्तम प्रबन्ध नहीं है श्रैार पुस्तकाध्यक्ष के जीवनकाल में ही अथवा उसके पश्चात् ग्रन्थ-रत्नों के नष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी दशा में क्या ही उत्तम हो यदि ऐसे महाशय अपने संचित ग्रन्थ सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित रहने के लिए दे देवें, जिससे उनके श्रैार ग्रन्थकारों के नाम अचल हो जायँ! बहुतेरे उत्तम ग्रन्थ इस भाँति प्रकाशित हो जावेंगे श्रैार हिन्दी का भी उपकार होगा। महाकवि सेनापति जी ने चोरी के डर से अपनी कविता छिपा डाली थी। यथा—

"सुनौ महाजन चोरी होति चारि चरन की
तातें सेनापति कहै तजि डर लाज को।
लीजियो बचाय ज्यों चुरावै नहिँ कोई सौंपी
वित्त कैसी थाती मैं कवित्तन के व्याज को" ॥

इसका परिणाम यह हुआ कि जब १९१० की सरस्वती पत्रिका में हमने उनकी रचनाओं पर आलोचना छपवाई, तब एक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र को आश्चर्य्य हुआ था कि ऐसा उत्तम कवि कैसे इतने दिनों छिपा पड़ा रहा ? हम को तो आश्चर्य्य यह है कि ऐसे कवियों की रचनाएँ अब तक कैसे बनी रहीं ? निदान प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी का कर्त्तव्य है कि यथाशक्ति उत्तम छिपे हुए ग्रन्थों को विदित करता जाय ।

अब ग्यारह वर्ष से हिन्दी-हस्तलिखित पुस्तकों की खोज हो रही है और इतने दिनों में ही अनेक अज्ञात कवियों का पता चल चुका है, अनेक जाने हुए ग्रन्थकारों की अज्ञात पुस्तकें मिली हैं, अनेक कवियों के समय ठीक ठीक निश्चित हो गये हैं, अनेकों के विषय में नई नई बातें विदित हुई हैं, अनेक उत्तम ग्रन्थ शुद्धता-पूर्वक प्रकाशित हो गये, और इसी भाँति बहुत कुछ जानने योग्य सामग्री का पता चल चुका है, और आगे का काम सावधानी से चल रहा है। विस्तार-भय से अधिक न लिख कर कुछ विशेष बातें नीचे दी जाती हैं। जिन महानुभावों को अधिक जानने की इच्छा हो, वे प्रकाशित रिपोर्टों को गवर्नमेण्ट प्रेस, इलाहाबाद, से मँगा कर देखें। हमारी समझ में यदि सरकार कृपया इन रिपोर्टों का मूल्य कम कर दे तो अति उत्तम हो। जितना मूल्य अभी है उसका आधा मूल्य ठीक होगा।

१—चन्द बरदाई के पृथ्वीराज रासो की कई प्रतियाँ यत्र तत्र प्राप्त हुईं और इसका बड़ा संतोष-दायक परिणाम यह हुआ कि काशी-नागरीप्रचारिणी सभा कई साल से रासो का एक उत्तम

सटीक संस्करण प्रकाशित कर रही है। आशा है कि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित हो जायगा*। इस ग्रन्थ के विषय में विद्वानों में बहुत कुछ वादविवाद हुआ है; क्योंकि कतिपय महाशयों का यह मत है कि रासो एक जाली ग्रन्थ है, जिसे बहुत दिन पीछे किसी ने चन्द के नाम से बना डाला; परन्तु अधिकांश विद्वानों ने इसे ठीक चन्दकृत माना है। हमने अपने 'हिन्दी-नवरत्न' में, जिसे हाल ही में प्रयाग की 'हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक-मण्डली' ने प्रकाशित किया है, सविस्तर इसका चन्दकृत होना यथा साध्य सिद्ध किया है।

२—गोस्वामी तुलसीदास जी की रामायण की भी अनेक प्रतियाँ देखने में आईं और उस ग्रंथ-रत्न का भी एक परम शुद्ध संस्करण इण्डियन प्रेस, प्रयाग, द्वारा प्रकाशित हो गया। मलिहाबाद, ज़िला लखनऊ, में जो गोस्वामी जी की लिखी हुई रामायण का होना कहा जाता है, वह ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि स्वयं मैं (शुकदेवविहारी मिश्र) ने उस प्रति को देखा है और उसमें गङ्गा-अवतरण-वाला क्षेपक मिला! गोस्वामी जी के अक्षरों से भी (जो विवादरहित हैं) इसके अक्षर नहीं मिलते। शायद इसी कारण पुस्तकाध्यक्ष जी ने उसे बाबू श्यामसुन्दरदास जी आदि को दिखाया तक नहीं।

३—लालकृत छत्रप्रकाश जैसा उत्तम ग्रन्थ छिपा पड़ा था सो भी प्रकाशित हो गया। इस के जोड़ के ग्रन्थ बहुत नहीं मिल सकते। केशवकृत वीरसिंह देव-चरित्र नामक नया ग्रन्थ मिला है।

* यह पूरा ग्रन्थ अब छप चुका है।

४—अब तक औपन्यासिक काव्य-ग्रन्थों (Romantic poems) में से केवल जायसी की पद्मावत प्रसिद्ध थी, पर खोज से ऐसे और ग्रन्थ भी मिले हैं, यथा लक्ष्मणसेन की पद्मावत (संवत् १५१६ में रचित), ढोलामारू की कथा (१६०७), क़ुतुबन की मृगावती (१५६०), नूरमुहम्मद की इन्द्रावत, क़ासिमशाह-कृत हंसजवाहिर, शेख़ नबी-कृत ज्ञानदीप, इत्यादि ।

५—महाराजा सावंतसिंह (उपनाम नागरीदास जी) कृष्णगढ़ाधिपति के कई ग्रन्थ और उनकी बहिन श्रीमती सुन्दरि कुँवरि की रचनाओं का पहले पहल पता लगा है ।

६—विहारी सतसई की कुछ प्राचीन प्रतियों में उनका एक बड़ा ही उपकारी दोहा नहीं मिला है—

"सम्वत् ग्रह शशि जलधि छिति, छठि तिथि बासर चन्द ।
चैत मास पख कृष्ण में पूरन आनँदकन्द ॥"

जिससे कुछ विद्वानों का ऐसा विचार हुआ है कि यह दोहा बिहारी-कृत है ही नहीं । हमारी समझ में यह विचार ठीक नहीं, क्योंकि एक तो इसकी रचनाशैली बिहारी से बिलकुल मिलती है, (हम नहीं समझते कि इसके विरुद्ध कुछ महाशयों ने कैसे लिखा है); दूसरे अनेक प्राचीन प्रतियों में यह दोहा पाया जाता है, यदि दो चार में छूट रहा तो कोई आश्चर्य्य नहीं; और तीसरे बिहारी की अन्य जानी हुई बातों से जो समय उनका स्थिर हुआ है उससे इस दोहे में लिखे हुए संवत् (१७१९) से कोई विरोध नहीं पड़ता । अन्त में यदि मान भी लिया जाय कि उक्त दोहा बिहारी-कृत नहीं है, तो भी कोई सन्देह नहीं कि उसमें दिया हुआ समय

ठीक ही है। तब अवश्य ही किसी ऐसे व्यक्ति ने उसे लिख दिया होगा कि जिसे सत्‌सई के समाप्त होने का समय विदित होगा। बिहारी ने अपने दोहों को ग्रन्थरूप में अवश्य ही नहीं बनाया, पर अन्त में उन्होंने अपने उत्तमोत्तम दोहों को ग्रन्थरूप में कर दिया था। इसमें भी सन्देह नहीं प्रतीत होता। इस विषय पर हमारा 'हिन्दी-नवरत्न' देखिए।

गोलोकवासी बाबू राधाकृष्णदास जी ने अपने "कविवर बिहारी लाल" में यह लिखा है कि बिहारीजी सनाढ्य मिश्र कवि केशवदास के पुत्र थे; पर यह बात मान्य नहीं है। खोज में हरि-सेवक कवि-कृत "कामरूप की कथा" नामक एक ग्रन्थ मिला है, जिसमें कवि ने अपना वंश यों लिखा है—कृष्णदत्त, काशिनाथ, केशवदास, परमेश्वरदास, दास, हरिसेवक। यदि बिहारी-लाल जी इस वंश में होते तो इतने बड़े कवि का नाम हरिसेवक अवश्य लिखता। वल्लभ जी भी इसी वंश में हुए थे, पर बिहारी-लाल के सामने उनकी गणना ही नहीं हो सकती। खोज से बिहारी के एक चौबे वंशधर कवि भी मिले हैं।

७—जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह-कृत केवल एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ (भाषा-भूषण) अब तक विदित था, पर खोज से सात और ग्रन्थों का पता लगा। ऐसे ही महात्मा गोरखनाथ, कबीर, रैदास, प्राणनाथ, इत्यादि के कई एक ग्रन्थ मिले हैं। गोरखनाथ जी के ग्रन्थों को देख कर और उनके विषय में अन्य भाँति की गवेषणा करके बाबू श्यामसुन्दरदास ने उनका समय

१४ वीं ईसवी शताब्दी स्थिर किया है। इसी भाँति कबीरदास जी का मृत्युकाल संवत् १४९७ और १५०७ के बीच में निश्चित हुआ है।

८—आज़मगढ़ में एक महाशय के यहाँ बारहवीं शताब्दी की एक पुस्तक सुनी जाती है, पर उन्होंने उसे अब तक दिखलाया भी नहीं! अनेक बहानों से वे बात टाल जाते हैं। देखें कब सफलता होती है।

९—भूपति कवि कृत भागवत पुराण का अनुवाद प्राप्त हुआ है, जो संवत् १३४४ में बनाया हुआ कहा जाता है। थोड़े दिन हुए जोधपुर के मुंशी देवीप्रसाद जी ने 'सरस्वती' में लिखा था कि भूपति का समय सत्रह सौ चवालीस है, पर इसमें हमको सन्देह होता है कि मुंशी जी ने जिस उर्दू वाली प्रति से यह बात निकाली है उसमें कदाचित् तेरह के ठौर सत्रह भ्रम से लिख गया हो, अथवा उन्होंने ही भूल से और का और पढ़ लिया हो, क्योंकि उर्दू की लिखावट में १३ के ठौर सत्रह पढ़ लेना कोई बड़ी बात नहीं है। इसका ठीक निबटेरा तब हो सकेगा जब संवत् १३४४ व १७४४ दोनों के पंचांग बनाकर देखा जाय कि कौन से वर्ष में "मार्गशीर्ष सुदी ११" "बुधवार" को पड़ती है, क्योंकि जिस प्रति का नोटिस सन् १९०२ ईसवी की खोज की रिपोर्ट में लिखा गया है, उसमें यह तिथि और दिन लिखे हैं। इसका अनुसन्धान करके हम निश्चय-पूर्वक फिर कभी लिखेंगे; अभी हमारी समझ में उर्दू वाली प्रति के सामने हिन्दीवाली अधिक मान्य है। यदि यह बात ठीक है, तो भागवतपुराण बोपदेव जी का बनाया

नहीं हो सकता है, क्योंकि उनका समय भूपति जी से प्रायः मिलता-जुलता पाया जायगा और पुराने समय में यह असम्भव था कि कोई ग्रन्थ दस बीस पचास वर्ष में ही इतना नामी हो जाता कि उसके अनुवादक प्रस्तुत हो जाते।

१०—लल्लूलाल-कृत एक कोश का पता चला है, जिसमें ३००० अँगरेज़ी शब्द हिन्दी व उर्दू अर्थ-सहित लिखे हैं। इसी भाँति अन्य अनेक उत्तम ग्रन्थ मिले हैं, जिनका हाल लिखने से लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा। विदित हुआ है कि राजपूताने में ईसवी बारहवीं और सोलहवीं शताब्दियों के बीच में चारण और बन्दीजनों ने अनेक ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थ रचे हैं। उक्त प्रान्त में समुचित प्रकार से खोज होने पर उनका अवश्य ही पता चलेगा, जिससे भारतवर्ष के इतिहास-विषयक बहुत सी अमूल्य सामग्री प्राप्त होने की आशा की जा सकती है।

इस सम्बन्ध में यह सूचित कर देना आवश्यक है कि हमारी प्रान्तिक सरकार ने अभी यह कहा है कि संयुक्तप्रान्त मात्र के भीतर जो खोज का काम किया जाय उसीके लिए वह सहायता दे सकती है, पर हमको दृढ़ विश्वास है कि ऊपर की बात जान कर, और इस विचार से कि देश भर में इस खोज के होने पर अनेकानेक प्रकार के विद्या-सम्बन्धी लाभ प्राप्त होंगे, हमारी विवेकी सरकार इस काम को बन्द न होने देगी। यदि किसी कारण प्रान्तीय सरकार इस प्रान्त के बाहरवाले काम के लिए धन व्यय करना उचित न समझे, तो इसमें सन्देह नहीं कि उस के द्वारा भारत-सरकार से अवश्य ही सहायता मिल सकेगी।

अब तक खोज में जो पुस्तकें मिली हैं वे अधिकांश में १७ वीं, १८ वीं और १९ वीं शताब्दियों में लिपि-बद्ध हुई हैं। केवल थोड़ी सी पुस्तकें १६ वीं शताब्दी में लिखी हुई पाई जाती हैं। अधिकांश ग्रन्थ देवनागरी में ही लिखे पाये जाते हैं, पर कोई कोई कैथी और मारवाड़ी मिश्रित अथवा गुरुमुखी लिपियों में भी यत्र तत्र मिलते हैं। खोज में जो ग्रन्थ मिलते हैं उनमें से उत्तम ग्रन्थों के नोटिस लिये जाते हैं और जिन ग्रन्थों के नोटिस पहले लिये जा चुके हों, अथवा जो बिल्कुल शिथिल व बेकाम हों, उनको या तो छोड़ दिया जाता अथवा परिशिष्ट में नोट कर लिया जाता है।

यह विदित ही है कि विक्रमीय १६ वीं, १७ वीं और विशेषतः १८ वीं शताब्दी में हिन्दी के उत्तमोत्तम कवि वर्त्तमान थे। गद्य में यों तो चिट्ठी, परवाने इत्यादि पृथ्वीराज के समय से मिलते हैं, पर उसके प्रथम लेखक महात्मा गोरखनाथजी हुए। उनके पश्चात् गोस्वामी विट्ठलनाथजी एवं गोकुलनाथ जी ने गद्य-ग्रन्थों की रचना १७ वीं शताब्दी में की। लोगों का विचार था कि सदल मिश्र और लल्लूलाल खड़ी बोली में गद्य के प्रथम लेखक हैं, पर १७ वीं शताब्दी (संवत् १६८०) में जटमल ने गोराबादल की कथा इसी में लिखी थी, और १८ वीं विक्रमीय शताब्दी में सूरति मिश्र ने भी बैताल-पच्चीसी नामक गद्य-ग्रन्थ रचा था। इनके बहुत दिनों पीछे संवत् १८६० के आस पास लल्लूलाल व सदल मिश्र हुए। फिर भी कहना ही पड़ता है कि वास्तव में हिन्दी-गद्य का विकाश राजा लक्ष्मणसिंह राजा शिवप्रसाद और बाबू हरिश्चन्द्र के समय से ही हुआ।

कुल मिलाकर ११ वर्ष की खोज से प्रायः ३२०० हस्तलिखित पुस्तकों की जाँच हुई, जिनमें प्रायः २२०० ग्रन्थों के नोटिस लिये गये। इनके रचयिताओं में से प्रायः १३०० कवियों का पता चला है, जिनमें केवल दो (चन्द और जल्ह) बारहवीं शताब्दी में हुए, दो (नरपति नाल्ह और भूपति) १३ वीं में, दो (नारायणदेव और गोरखनाथ) १४ वीं में, और ७ (कबीर, दामा, रैदास, धर्मदास, नानक, लालसा और विष्णुदास) १५ वीं में थे। सोलहवीं शताब्दी से कवितातरंगिनी का स्रोत ही फूट निकला और उसकी अटूट धारा बह चली। अतः १६ वीं शताब्दी वाले ८४ कवियों द्वारा रचित ग्रन्थों के नोटिस लिये गये, १७ वीं के १७५, १८ वीं के १७१ और १९ वीं के २८७। इनके अतिरिक्त प्रायः ४५० कवियों का समय विदित न हो सका। काम बराबर हो रहा है। अब यह लेख बहुत बढ़ गया, इससे खोजविषयक चक्र के साथ हम इसे समाप्त करते हैं।

———

सातवाँ पुष्प

हिन्दी के मुख्य ग्रन्थ (सं० १९७१)।

हमारा भारतवर्ष एक बड़ा ही प्राचीन देश है और इसीलिए इस में समय समय पर ऐसी ऐसी उत्कृष्ट भाषायें भी प्रचालित हो कर लुप्त भी हो गईं कि जिन के साहित्य-ग्रन्थ अनेकानेक वर्त्तमान उत्कृष्ट भाषाओं तक के ग्रन्थों से गणना और उत्तमता में बहुत आगे बढ़े हुए हैं। यहाँ पुरानी संस्कृत, संस्कृत, पहली प्राकृत, दूसरी प्राकृत उपनाम पाली और तीसरी प्राकृत नामक भाषायें समय समय पर प्रचलित हो कर सिवा संस्कृत के और सब लुप्त हो गईं। इन सब में अच्छे अच्छे साहित्य-ग्रन्थ निर्मित हुए। पाली भाषा महाराजा अशोक के समय में चलती थी। इसी में भगवान बुद्ध देव के धर्म्म-ग्रन्थ भी लिखे गये थे। तीसरी प्राकृत के समय पर मागधी, शौरसेनी, अर्द्ध-मागधी, महाराष्ट्री, गुर्जर आदि कई विभाग हो गये। इन्हीं विभागों के विकास होते होते भारत की वर्त्तमान भाषाओं के जन्म हुए। बिहारी-भाषा मागधी से बनी, अवधी अर्द्ध-मागधी से और व्रज-भाषा शौरसेनी से। ये प्राकृत भाषायें समय के साथ बदलती हुई अब इन इन रूपों में आ गईं हैं। हमारी हिन्दी का जन्म संवत् ७०० के लगभग हुआ। इसके प्रथम ग्रन्थ का सं० ७७० लिखा है और कहा जाता है कि अवन्ती-निवासी पुष्प अथवा पुंड कवि ने इस अलंकार-ग्रन्थ को दोहों में बनाया।

हिन्दी-भाषा के बिहारी (पूर्वी), अवधी ग्रैार व्रजभाषा नामक तीन प्रधान विभाग माने गये हैं। हमारी समझ में राजपूतानी तथा पंजाबी भाषाओं का ठेठ पश्चिमी नामक एक ग्रैार प्रधान विभाग होना चाहिए। इन के साथ अब खड़ी बोली भी हिन्दी का एक परम प्रधान अंग हो गई है। हिन्दी के मुख्य उपविभागों में मैथिली, मगही, भुजपुरी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, उर्दू, राजपूतानी, कन्नौजी, बुन्देली, बांगरू, दक्षिणी आदि भाषायें हैं। इनके अतिरिक्त हिन्दी के अरुणोदय काल में प्राकृत मिश्रित भाषा का प्रयोग हुआ था, जो अब तक कभी कभी युद्ध काव्य में व्यवहृत होती है।

हिन्दी का साहित्य-काल सं० ७७० से ले कर अब तक १२०० बर्षों पर फैला हुआ है। इस के आदिम विभाग में काव्य-ग्रन्थ बने तो प्रचुरता से, जैसा कि चन्द-कृत रासो के देखने से ज्ञात होता है, किन्तु अब उन का मिलना ऐसा कठिन है, कि उनका अभाव सा ही समझना चाहिए। हमने अपने साहित्य-इतिहास-ग्रन्थ में इस द्वादश शताब्दियों के समय को आठ भागों में विभक्त किया है, अर्थात्—

विभाग	समय
पूर्व प्रारम्भिक	७७०—१३४३
उत्तर प्रारम्भिक	१३४४—१४४४
पूर्व माध्यमिक	१४४५—१५६०
प्रौढ़ माध्यमिक	१५६१—१६८०
पूर्वालंकृत	१६८१—१७८९

विभाग	समय
उत्तरालंकृत	१७९०—१८९०
परिवर्त्तन	१८९१—१९२५
वर्त्तमान	१९२६—अब तक।

पूर्व प्रारम्भिक काल में प्राकृतमिश्रित हिन्दी की प्रधानता रही, किन्तु उत्तर प्रारम्भिक समय में ब्रजभाषा, अवधी, राजपूतानी, खड़ी और पूर्वी भाषाओं का प्रयोग स्थान स्थान पर होता रहा, किन्तु प्रधानता किसी को न मिली। पूर्व माध्यमिककाल में ब्रजभाषा, अवधी, पूर्वी और पंजाबी भाषाओं की व्यवहारप्रचुरता इसी क्रम से रही। प्रौढ़ माध्यमिक काल में महाप्रभु वल्लभाचार्य्य और चैतन्य द्वारा उत्तरी भारत में वैष्णवता की बड़ी प्रधानता हो कर कृष्णभक्ति की गरिमा हुई। इधर अयोध्या की वैष्णवता, महात्मा रामानन्द, तुलसीदास आदि के प्रभाव से अवध में रामभक्ति ने प्रधानता पाई। इस काल में भक्ति काव्य का ही महत्त्व रहा था। इन कारणों से कृष्णभक्त कवियों में ब्रजभाषा की और रामभक्त रचयिताओं में अवधी की प्रधानता रही और यही दो भाषायें इस समय मुख्य रहीं। ब्रज से सम्बन्ध रखने वाले कविगण संख्या और उत्तमता में इधरवाले कवियों से गोस्वामीजी के अतिरिक्त श्रेष्ठतर थे। इसीलिए ब्रजभाषा की अवधी से भी अधिक महिमा स्थिर हुई। पूर्वालंकृत काल में ब्रजभाषा की प्रधानता और भी बढ़ी और अवधी भाषा स्थिर रहने पर भी उससे दब गई। उत्तरालंकृत काल में ब्रजभाषा और अवधी की तो प्रायः यही दशा रही, किन्तु खड़ी बोली का

भी प्रभाव लल्लूलाल आदि के साथ कुछ कुछ बढ़ने लगा। परिवर्त्तन काल में अवधी भाषा की प्रधानता जाती रही और ब्रजभाषा के साथ खड़ी बोली की महिमा हुई। वर्त्तमान काल में ब्रजभाषा की भी प्रधानता लुप्तप्राय होगई और खड़ी बोली का साम्राज्य है। यह दशा हमारे यहाँ प्रधान भाषाओं की है।

इनके अतिरिक्त उपभाषाओं में उर्दू और बुंदेलखण्डी प्रधान हैं। उर्दू फ़ारसी, अर्बी आदि का अवलम्ब लेकर फ़ारसी अक्षरों में लिखी जाने लगी और मुसलमानों की प्रधान भाषा हो गई। इन कारणों से उसका हिन्दी से सम्पर्क छूटता हुआ देख पड़ता है। हिन्दी के अन्य विभागों में वह खड़ो बोली की सहायक है। खड़ी बोली से यदि संस्कृत के शब्द निकाल निकाल कर उसमें साधारण बोल चाल के शब्द रख देवें, तो वह शुद्ध उर्दू से मिल जावे। शुद्ध उर्दू उसे कहेंगे जिससे फ़ारसी, अरबी आदि विदेशीय भाषाओं के शब्द निकाल दिये जावें और जिसकी साधारण देशज शब्दों द्वारा कलेवर-पूर्ति हो। बुंदेलखण्डी का प्रयोग उसी देश में होता चला आया है। हिन्दी के बहुत से अच्छे अच्छे कविगण बुंदेलखण्डी थे, जैसे स्वयं गोस्वामी तुलसीदास, केशवदास, पद्माकर आदि। फिर भी यह भाषा उपविभागों में इस कारण से रक्खी गई है कि स्वयं इसी के कविगण ने अपनी रचनाओं में इस के कुछ शब्दों का व्यवहार तो अवश्य किया है, किन्तु प्रधानता अवधी या ब्रजभाषा को दी है। स्थानीय भाषाओं का प्रयोग प्राचीन काल में पूर्ण-रूपेण

होता रहा, किन्तु अँगरेजी राज्य के साथ ऐक्य का प्रभाव देश में बढ़ा, जिससे स्थानीय भाषाओं का चमत्कार फीका पड़ गया और लोगों को सार्वदैशिक भाषा की आवश्यकता समझ पड़ी। खड़ी बोली ऐसी ही भाषा है। इसी लिए गद्य में तो इसका पूर्ण साम्राज्य फैल गया और पद्य में भी फैलता जाता है। अब तक मोटे प्रकार से गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग रहा है, कथा-प्रसंग में अवधी का और शेष साहित्य-विषयों में ब्रज-भाषा का। ब्रजभाषा में श्रुति-माधुर्य्य की विशेषता से हमारी भाषा में सौन्दर्य्य-वर्द्धन बहुत हुआ। अवधी में चमत्कार ब्रज-भाषा से कुछ कम है, किन्तु लोकप्रिय कथा प्रासंगिक ग्रन्थों में विशेषता से प्रयुक्त होने के कारण जनता में इसका अच्छा आदर रहा है। जन-समुदाय में साधारण ग्रन्थों द्वारा इसका चलन ख़ूब रहा है। खड़ी बोली में आज कल श्रुति-कटु-दूषण कुछ विशेष है, किन्तु ऐक्य वर्द्धन के कारण यह आदरणीय है। समय पर सुकवियों द्वारा प्रयुक्त होकर इसके निर्दोष हो जाने की भी आशा है।

भाषाओं का वर्णन यहीं समाप्त करके अब हम पुस्तकों के ऊपर विचार करते हैं। हिन्दी में हज़ारों पुस्तकें अमुद्रित हैं, सो प्रधान पुस्तकों का वर्णन निश्चयात्मक नहीं हो सकता। बहुत सी अज्ञात पुस्तकें ऐसी बढ़िया हैं कि उनको प्रधान न कहना घोर अन्याय होगा। फिर भी सामान की कमी के कारण किसी विषय पर विचार ही न करने का संकल्प पंडित-समाज उचित नहीं मान सकता। हमारे मिश्रबन्धुविनोद में सैकड़ों क्या

हज़ारों ऐसी पुस्तकों के कथन हैं, जिन्हें हमने अब तक नहीं देखा है। उनमें से बहुतेरी प्रधान पुस्तकें हो सकती हैं। अतः हम यह नहीं कहते कि इस लेख में सभी प्रधान पुस्तकों का कथन है। हम इतना ही कह सकते हैं कि इस में किसी अप्रधान ग्रन्थ का वर्णन नहीं है।

हमारे परम प्रधान ग्रन्थों में रासो, रामचरित-मानस, रामचन्द्रिका, भक्तमाल, सूरसागर, सतसई, भूषण-ग्रन्थावली, शब्दरसायन, कंठाभरण, भाषाभारत, चन्द्रावली और शिवसिंह-सरोज की गणना की जा सकती है, और इनमें भी रामचरित-मानस, सूरसागर, रामचन्द्रिका और सतसई प्रधान हैं। इन सब ग्रन्थ-रत्नों में कवियों ने वह चमकती हुई साहित्य-गरिमा भर रक्खी है कि जिसे निरीक्षण करके दृष्टि में चकाचौंध लग जाता है। प्रधान ग्रन्थों में कई अन्य ग्रन्थ भी हैं, जिनका संसार ने भी यथोचित आदर किया है। हम ग्रन्थों का वर्णन भी उपर्युक्त आठ समय-विभागों के अनुसार करेंगे।

पूर्व प्रारम्भिक काल का चन्दकृत रासो ही प्रधान ग्रन्थ है। इसमें कवि ने महाराजा पृथ्वीराज का भारी वर्णन किया है। इसकी भाषा प्राकृत मिश्रित है और इसमें युद्ध मृगया और शृंगार के वर्णन प्रधानतया किये गये हैं। वर्णन-पूर्णता में चन्द महर्षि वाल्मीकि के पथ का अनुयायी है। इस महाकवि के ढंग पर बीसलदेव रासो, परमाल रासो, हम्मीर रासो आदि अनेकानेक ग्रन्थ समय समय पर बने। उत्तर प्रारम्भिक काल में न तो कोई प्रधान कवि हुआ और न ऐसा ग्रन्थ ही बना।

पूर्व माध्यमिक काल में विद्यापति, कबीरदास, बाबा नानक और वल्लभाचार्य्य नामक प्रधान महात्मा या कवि हुए। विद्यापति ने बिहारी भाषा में कई उत्कृष्ट ग्रन्थ रचे जिनमें पदावली, पारिजात-हरण और रुक्मिणी-परिणय प्रधान हैं। हिन्दी में पहले नाटककार यही हैं। इनकी रचना बड़ी ही सजीव, श्रुतिमधुर, तल्लीनता-पूर्ण और उमंग-वर्द्धिनी है। महात्मा कबीरदास के प्रायः ५० ग्रन्थ हैं। उनमें से बीजक, साखी और सबद प्रधान समझ पड़ते हैं। कबीर ने बहुत उत्तमता और सफ़ाई से खरी बातें बहुत अच्छी कही हैं। इनकी साधारण बातों में ज्ञान भरा है। आपने रूपकों, दृष्टान्तों, उत्प्रेक्षाओं आदि से धर्म्म-सम्बन्धी ऊँचे विचारों और सिद्धान्तों को साधारण वर्णनों में सफलता-पूर्वक व्यक्त किया है। इन की उलटवांसी परम प्रसिद्ध है। महात्मा नानक बाबा ने इसी समय में ग्रन्थ साहब से जगतप्रसिद्ध धर्म-ग्रन्थ का निर्माण किया। इस ग्रन्थ-रत्न की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है। महाप्रभु वल्लभाचार्य्य ने कोई प्रधान ग्रन्थ नहीं रचा, किन्तु इन के प्रोत्साहन से हिन्दी को बड़ा लाभ पहुँचा। इन महात्माओं के ग्रन्थों से उत्तरीय भारत में वैष्णवता का बल ख़ूब बढ़ा। इन के कारण ऋषिवत् महात्माओं तक में हिन्दीप्रेम जागृत हुआ।

प्रौढ़ माध्यमिक काल में उपर्युक्त ऋषि प्रोत्साहन के फल हिन्दी में प्रकट हुए। इस समय में गोस्वामी सूरदास, तुलसीदास, नन्द-दास, केशवदास, बलभद्र, दादू दयाल, रहीम, जायसी, नाभादास आदि भारी भारी कवि हुए, जिन के उत्कृष्ट ग्रन्थों से हिन्दी का शिर अब तक ऊँचा है। महात्मा सूरदास-कृत सूरसागर सचमुच

एक समुद्र है। इस में सभी प्रकार के वर्णन परम रुचिर भाषा एवं भावयुक्त कविता में भरे पड़े हैं। सूरसागर का आकार आज कल की प्रतियों में चार या पाँच हज़ार भजनों का है, किन्तु कहते हैं, कि सूरदास ने इस में सवा लक्ष भजन रचे थे। इसमें मोटे प्रकार से भागवत की कथा कही गई है, किन्तु प्रधानतया व्रजवासी कृष्ण का जाज्वल्यमान वर्णन है। कथा को सर्वाङ्गपूर्ण कहने में यह महात्मा महर्षि वाल्मीकि की समता करता है। जो वर्णन इन्होंने पूर्णता से कर दिया है, उनका रूप सामने खड़ा होगया है। इनकी भक्ति वात्सल्य और सख्य भाव की थी। सूरसागर शुद्ध ब्रजभाषा में कहा गया है। इसमें उपमा, रूपक, स्वभावोक्ति, नखशिख, प्रबंधध्वनि एवम् अन्य काव्याङ्गों का बहुत अच्छा सन्निवेश है। अपने प्रिय विषयों का वर्णन इस महात्मा ने ऐसा सांगोपांग किया कि उन बातों का पूर्ण स्वाद पाठक को बिना उन्हें देखे ही मिल जाता है। इस गुण में आपका सामना करने वाला सिवा वाल्मीकि के और कोई भी कवि नहीं है। इस प्रकार के वर्णन बाललीला, माखनचोरी, ऊखलबन्धन, रासलीला, कृष्ण-मथुरागमन और उद्धव-संवाद में मिलेंगे। वर्णनपूर्णता, साहित्यगौरव, बारीकबीनी, रंगों का सम्मिश्रण एवं तत्प्रभाव, भावगरिमा आदि की सूरसागर में अच्छी बहार है। इसमें भक्ति-गाम्भीर्य्य के साथ ऊँचे विचारों, प्रकृतिनिरीक्षण, एवं मानवशील-गुणावलोकन के अनुभव ख़ूब मिले हैं। सूरसागर के पढ़ने से मनुष्य में उच्च भावों का ही संचार होगा। इस ग्रन्थरत्न से हिन्दी में श्रीकृष्णचन्द्र के शृंगारमय वर्णन करने की चाल

अवश्य पड़ी, किन्तु वैष्णवों में हिन्दी-प्रेम ऐसा बढ़ा कि भाषा-भंडार खूब भर गया।

गोस्वामी तुलसीदास का सर्वप्रधान ग्रन्थ रामचरितमानस है, जो हिन्दी-भाषा का भी सर्व-प्रधान ग्रन्थ है। इसमें गोस्वामीजी ने रामचन्द्र की कथा सात कांडों में कही है। जिस विषय को इन्होंने उठाया है, उसी को पूर्ण गौरव के साथ परम चमत्कारिणी रीति से कहा है। तुलसीदास ने सभी विषयों को पूर्ण सफलता के साथ लिखा है। रामायण में भी बालकांड और विशेषतया अयोध्याकांड बड़े ही उत्कृष्ट हैं। उनके अन्य ग्रन्थों में विनयपत्रिका, कवितावली और कृष्णगीतावली प्रधान हैं। इन उपर्युक्त चारों ग्रन्थों में गोस्वामी जी ने चार भिन्न भिन्न प्रकार वाले कवियों के समान रचना की है और सब में इन्हें सफलता प्राप्त हुई है। मानस द्वारा संसार का जो असीम उपकार हुआ है उसके वर्णन करने का प्रयत्न असाध्य-श्रम है। राजाओं के महलों, मजूरों के झोपड़ों और ऋषियों की पर्णकुटियों में इसका समान सत्कार है। जिस भाषा में अन्य ग्रन्थ न होकर केवल सूरसागर और रामचरितमानस होते, वह भी संसार की सब से श्रेष्ठ भाषाओं वाली श्रेणी में स्थान पाने की योग्यता अवश्य रखती। मानस आज भारत के करोड़ों मनुष्यों के लिए वेद, क़ुरान, बाइबुल, कथा, कहानी, नावेल, धर्मशास्त्र सभी कुछ हो रहा है।

विनयपत्रिका में देवता-सम्बन्धी विनतियों की अच्छी बहार है और कृष्णगीतावली में श्रीकृष्ण का उच्चाशयपूर्ण वर्णन चित्त प्रसन्न कर देता है। कवितावली में सवैया एवं घनाक्षरी

छन्दों में रामयश कथित है। इसके छन्द भी परम मनोहर हैं। इसमें कवि-सम्बन्धी अनेक आत्मीय कथनों से और भी चमत्कार आगया है। मानस से दोहा चौपाइयों में अवधी भाषा द्वारा कथा प्रासंगिक ग्रन्थ रचने की परिपाटी पड़ी है।

महाकवि केशवदास के ग्रन्थों में रामचन्द्रिका तथा कविप्रिया प्रधान हैं। कविप्रिया द्वारा इस महाकवि ने सब से प्रथम रीति-काव्य के अनेक अंगों का आचार्य्यता-पूर्ण उत्कृष्ट वर्णन किया है और रामचन्द्रिका में बहुत से प्रकाशों (अध्यायों) द्वारा रामचन्द्र की कथा अनेकानेक उत्कृष्ट छन्दों में कही गई है। यह ग्रन्थ ऐसा मनोरंजक है कि इसके पढ़ने में जी कभी नहीं ऊबता है। जैसे रामचरितमानस द्वारा दोहा चौपाइयों में कथा-प्रासंगिक ग्रन्थ-रचना की चाल चली, वैसेही रामचन्द्रिका के ढंग पर विविध छन्दों में कथा-सम्बन्धी ग्रन्थ हिन्दी में बनने लगे। यह बड़ाही पांडित्य-पूर्ण एवं काव्याङ्गयुक्त ग्रन्थ है।

महात्मा नन्ददास ने कई उत्कृष्ट ग्रन्थ रचे जिन में रास-पंचाध्याई प्रधान है। इस में बहुत ही बढ़िया रास कथन है। मलिक मोहम्मद जायसी कृत पद्मावत भी प्रौढ़ माध्यमिक काल का प्रधान ग्रन्थ है। इसमें चित्तौर के राजा रतनसिंह का विवाह रानी पद्मावत के साथ होना कहा गया है और उसके कारण जो युद्ध हुए हैं उनके भी वर्णन हैं। इस ग्रन्थ में भी महर्षि वाल्मीकि का वर्णन-पूर्णतावाला गुण लाया गया है। जायसी ने मुसल्मान होकर भी हिन्दू देवी देवताओं का श्रद्धास्पद वर्णन करके अपनी उदारता दिखलाई है। रहीम ने कई उत्कृष्ट ग्रन्थ रचे हैं, जिनमें

सतसई प्रधान है। ये महाशय अकबर शाह के मन्त्री और सारे भारत के सेनापति थे। फिर भी इन्हों ने अपनी उदारता से हिन्दी में साहित्य-रचना की, जो सर्वतोभावेन प्रशंसित है। इनकी कविता में उदारता-पूर्ण उच्चाशय भावों, नीति के चटकीले चुटकुलों और खरी कहावतों का अच्छा मज़ा है। दादूदयाल की बानी और सबद प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं और दादूपन्थी लोगों में ये परमपवित्र समझे जाते हैं। बलभद्र कृत नखशिख बड़ा ही गम्भीर ग्रन्थ है। नरोत्तमदास ने सुदामाचरित्र नामक छोटे ग्रन्थ में वह चमकती हुई काव्य-छटा भर रक्खी है, जिसे देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। नाभादास का भक्तमाल एक बड़ा ही उपकारी ग्रन्थ है। इसमें अच्छे अच्छे महात्माओं के ऐतिहासिक कथन हैं। पूर्वालंकृत काल में भाषा के अलङ्कारों का प्राधान्य हिन्दी में रहा। यह प्राधान्य उत्तरालंकृत काल में और भी बढ़ा। पूर्वालंकृत काल में सेनापति, चिन्तामणि, बिहारी, भूषण, मतिराम, देव, सुखदेव आदि परम प्रधान कवि हुए। जैसे प्रौढ़ माध्यमिक काल गोस्वामी सूरदास तथा तुलसीदास से जाज्वल्यमान है, वैसे ही इस समय को देव ने प्रतिभा दे रक्खी है। इन्हों ने ५२ या ७२ ग्रन्थ रचे जिनमें से २६ का नाम हम ने हिन्दी-नवरत्न में लिखा है। इनमें से शब्दरसायन सर्वोत्कृष्ट है, और रस-विलास, देव-चरित्र, प्रेमचन्द्रिका, सुखसागरतरंग, देवमायाप्रपंच नाटक आदि अनेकानेक परमप्रधान ग्रंथरत्न हैं। शब्दरसायन में काव्यरीति का बहुत उत्कृष्ट वर्णन है। हिन्दी-रसिकों के लिए बड़ी लज्जा की बात है कि अब तक यह ग्रन्थरत्न प्रकाशित भी नहीं हुआ है।

इसका समझना भी बहुत कठिन है। काव्यरीतिज्ञ महाशयों को चाहिए कि इस की एक अच्छी टीका अवश्य बनावें। रसविलास साद्यन्त परम चामत्कारिक ग्रन्थ है। इसमें जातियों एवं अन्य काव्याङ्गों के बड़े ही मनोहर छन्द हैं। देवचरित्र में श्रीकृष्ण की कथा सूक्ष्म रीति से किन्तु बड़े मनोहर छन्दों में कही गई है। प्रेमचन्द्रिका में कवि ने प्रेम के भेद और उपभेद बड़े ही मनोहर और उचित प्रकार से कहे हैं। इसमें प्रेमाधिक्य के छन्द भी बढ़िया हैं। सुखसागरतरंग में स्वयं देव ने अपनी समस्त कविता का एक भारी संग्रह नायिकाभेद के ग्रन्थस्वरूप में लिखा है। इसका एक छन्द भी शिथिल नहीं है। देवमायाप्रपंच नाटक में महामोह आदि का रूपकयुक्त अच्छा वर्णन है। देव कवि के छन्द बड़े ही बढ़िया हैं और भाषा बड़ी ही रुचिर है। इनके बराबर सालंकार तथा उत्कृष्ट भाषा लिखने में हिन्दी का कोई भी अन्य कवि समर्थ नहीं हुआ है। इन्होंने तुकांत भी बड़े ही मनोहर रक्खे हैं, बड़े बड़े विशेषणों एवम् लोकोक्तियों की अपनी कविता में अच्छी छटा दिखलाई है और सौगन्धैं भी ख़ूब खिलाई हैं। नायिकाओं के वर्णनों में इन्होंने स्थान स्थान पर तसवीरें सी खींच दी हैं। देव जी ने ऊँचे ख़यालात भी ख़ूब बाँधे हैं और अमीरी ठाठ सामान का वर्णन इन के बराबर कोई भी नहीं कर सका है। इन्हों ने उपमायें बहुत ही विलक्षण दी हैं और इनके रूपक बहुत अच्छे बने हैं। देवजी रचित ग्रन्थों के कारण भाषा-कवियों में शब्दालंकारों का प्रेम बहुत बढ़ गया।

सेनापति ने कवित्तरत्नाकर नामक एक परमोत्कृष्ट ग्रन्थ रचा। इस में पांच तरंग हैं, जिन में रूपक, श्रृंगार, षट् ऋतु, रामायण और भक्ति के रोमांचकारी वर्णन हैं। इस कवि ने बड़ी अनूठी रचना की है और रूपक, श्लेष तथा भक्ति का अच्छा चमत्कार दिखलाया है। अपनी रचना में अधिक अलंकार लाने का इन्होंने विशेषतया प्रयत्न किया और प्रत्येक स्थान पर अपने पाठकों को मानो हृदय खोल कर दिखला दिया है। चिन्तामणि कृत कविकुल-कल्पतरु एक प्रसिद्ध रीति-ग्रन्थ है। इस का विद्वन्मंडली में सदैव अच्छा मान रहा है। माड़वार के महाराजा यशवन्तसिंह ने भाषा-भूषण नामक छोटा सा दोहाओं में अलंकार-ग्रन्थ बनाया, जिसे अलंकार जिज्ञासु पहले पढ़ते हैं। इसमें उदाहरण और लक्षण साफ़ हैं।

महाकवि बिहारीलाल ने जगत्प्रसिद्ध सतसई ग्रन्थ बनाया। इस में केवल ७१९ दोहा और सोरठा हैं, किन्तु इन्हीं थोड़े से छन्दों में इस कवि ने वह साहित्य-छटा भर दी है कि मानो पियाले में समुद्र भरा है। सतसई में कोई क्रमबद्ध वर्णन नहीं किया गया है, परन्तु इस में कितने ही विषय आ अवश्य गये हैं। इन की बोल-चाल बहुत ही स्वाभाविक तथा इबारत आराई बहुत ही उत्कृष्ट है। इन्हों ने यमक तथा अन्य अनुप्रासों का बहुत प्रयोग किया है और श्रृंगार के कोमल वर्णन करने पर भी यह कविरत्न ज़ोरदार भाषा लिखने में समर्थ हुआ है। इन्हों ने काव्यांग बड़े ही प्रकृष्ट कहे हैं और रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि बड़ी चमत्कारयुक्त लिखी हैं। बिहारी ने रंगों के मिलाव वाले वर्णन बड़े ही विशद किये हैं, तथा

प्रकृति-निरीक्षण का फल इन के बहुत से छन्दों में देख पड़ता है। मानुषीय प्रकृति का वर्णन सतसई में बड़ा ही उत्तम, सत्य और हृदयग्राही है। इसमें चोज़ बहुत ही अच्छे हैं। सतसई में सुष्ठ छन्दों की मात्रा बहुत अधिक है। यह बड़ा ही मनोहर और चित्ताकर्षक ग्रन्थ है। इसकी अनेक टीकायें बनी हैं और इसी के ढर्रे पर अनेकानेक सतसई ग्रन्थ बने हैं।

मतिराम कृत रसराज और ललितललाम बड़े प्रकृष्ट ग्रन्थ हैं। भावभेद तथा अलंकार-जिज्ञासु इन्हें बहुधा पढ़ते हैं। देवजी की भाषा के पीछे हिन्दी-साहित्य भर में मतिराम की भाषा सर्वप्रधान है। इन की रचना प्रसाद-पूर्ण, साफ़ और सर्वांगसुन्दर है। भूषण-ग्रन्थावली वीरकाव्य की एक अनमोल उदाहरण है। जातीयतावर्द्धक ऐसा उत्कृष्ट दूसरा ग्रन्थ हमारे यहाँ नहीं है। भूषण ने भारत मुखोज्ज्वलकारी महाराज शिवाजी और छत्रसाल के पवित्र चरित्रों का वर्णन किया है। महाराजा शम्भुनाथ सुलंकी ने नखशिख बहुत ही अच्छा रचा है। कुलपति मिश्र कृत रसरहस्य अनेक काव्याङ्गों का उत्कृष्ट वर्णन करता है। यह एक बड़ा ही आचार्य्यता-पूर्ण कुछ कठिन ग्रन्थ है। सुखदेव कृत वृत्तविचार का छन्द विषय पर प्रमाण माना जाता है। वृन्द कृत सतसई में नीति अच्छी कही गई है और श्रीपति मिश्र कृत साहित्यसरोज रीति का एक बड़ा ही प्रमाणनीय ग्रन्थ है। सूरति मिश्र ने बिहारी कृत सतसई की एक अनमोल छन्दोबद्ध टीका रची। छत्र-कृत विजयमुक्तावली कथा-काव्य की एक उत्कृष्ट पुस्तक है। इस समय के कथा-प्रासंगिक कवियों में मऊ बुँदेलखंड वाले लाल कवि एक

बड़े ही प्रशंसनीय रचयिता थे। आप कई युद्धों में स्वयं सम्मिलित थे। इस कारण से युद्ध का आप को अच्छा अनुभव था और युद्ध-काव्य के लिए आप एक बड़े ही उचित लेखक थे। आपने छत्र-प्रकाश नामक एक अनमोल ग्रन्थ द्वारा अपने इस युद्ध-सम्बन्धी अनुभव से संसार को लाभ पहुँचाया है। इस ग्रन्थ में केवल दोहा चौपाइयों द्वारा रचना की गई है, किन्तु फिर भी इसमें उस उद्दं-डता, स्वभावोक्ति, तल्लीनता आदि का समावेश है कि ग्रन्थ पढ़कर रोमाञ्च हो जाता है। इसमें चम्पतिराय और तत्पुत्र महाराजा छत्र-साल के पूजनीय चरित्रों के परमोत्कृष्ट वर्णन हैं। ग्रन्थ बड़ा ही रोचक और अनुभवपूर्ण है। ब्रजविलास में साधारण दोहा चौपा-इयों में सूरसागर के आधार पर कृष्णचरित्र कथित है। इसकी साहित्य-गरिमा साधारण है, किन्तु ग्रन्थ लोकप्रिय बहुत है और रामायण की भाँति देश में ख़ूब प्रचलित है। इस की कथा-रोच-कता और सरलता ही इसके भारी प्रचार के कारण हैं।

उत्तरालंकृत काल में भाषा अधिक अलंकृत हुई और कवियों की संख्या एवं उत्तमता में बहुत अच्छी वृद्धि हुई, किन्तु परमोत्तम कवियों का प्रौढ़ माध्यमिक एवं पूर्वालंकृत काल की अपेक्षा कुछ अभाव सा रहा। इस समय के काव्य-रीति-रचयिता कवियों में दास, सोमनाथ, रघुनाथ, दूलह, बैरीसाल, मनीराम मिश्र और परताप मुख्य हुए और कथाप्रासंगिक कवियों में सूदन, मंचित, मधुसूदनदास, सरयूप्रसाद, गोकुलनाथ, गोपीनाथ तथा मणिदेव। स्फुट विषयों के रचयिताओं में इस समय भूप गुरुदत्तसिंह, गिरिधर कविराय, बोधा, रामचन्द्र, सीतल, पद्माकर और चन्द्रशेखर

मुख्य हैं, तथा लल्लूलाल और सदल मिश्र वर्त्तमान शैली के गद्य-लेखक थे।

दासकृत काव्यनिर्णय में रीति-काव्य ख़ूब कहा गया है। इसका प्रचार रीति-पठन में बहुत है। सोमनाथ कृत रसपीयूष-निधि शुद्धतर एवं काव्य-निर्णय से बहुत साफ़ रीति-ग्रन्थ है। इसके पढ़ने से मनुष्य आचार्य्य हो सकता है, किन्तु यह ग्रन्थ अभी तक अमुद्रित है और संसार में इसका यथोचित चलन नहीं हुआ है। रघुनाथ ने रसिकमोहन ग्रंथ में अलंकारों का विषय बहुत ही साफ़ कर दिया है और दूलह ने कविकुल-कंठाभरण में इसी विषय का सूत्रवत् वर्णन किया है। बैरीसाल ने भी भाषा-भरण में अलंकार के विषय को ख़ूब साफ़ किया है। मनीराम मिश्र पिंगल विषय के सूत्रकार से हैं। इनकी छन्द छप्पनी में यह विषय अच्छा समझाया गया है। जो वर्णन अन्य कवियों ने एक एक अध्याय में किये हैं, वे इन्होंने एक एक छन्द से ही पूर्णतया समझा दिये हैं। प्रताप ने व्यङ्ग्यार्थ-कौमुदी में व्यंग्य का विषय ख़ूब विद्वत्ता-पूर्ण रीति से समझाया है। इसकी कविता भी परम प्रकृष्ट है और भाषा-चमत्कार बहुत ही सराहनीय है।

कथा-प्रासंगिक कवियों में सबसे अधिक प्रशंसनीय इस समय में गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव ही हुए। इस त्रिमूर्ति ने प्रचुर श्रम द्वारा संस्कृत-महाभारत का उत्कृष्ट पद्यमय उलथा किया, जिस से हिन्दी-ज्ञाताओं का बड़ा भारी उपकार हुआ। इस भारी ग्रन्थ में सभी प्रकार के वर्णन आ गये हैं और इन कवियों ने उन सबको

सफलतापूर्वक निभाया है। इन के पीछे मंचित बुँदेलखण्डी बड़ा ही उत्कृष्ट कवि हो गया है। इसकी कविता कृष्णायन गोस्वामी जी कृत रामायण के ढर्रे पर चली है और उत्तमता में भी कई अंशों में उसका सामना कर सकती है। सूदन कवि-कृत सुजानचरित्र भी एक अनमोल कथा-प्रासंगिक ग्रन्थ है। मधुसूदनदास-कृत रामाश्वमेध साधारण श्रेणी का एक भारी ग्रन्थ है, किन्तु रोचक होने से प्रचलित ख़ूब है। सरयूप्रसाद कृत धर्माश्वमेध एक श्रेष्ठतर और गुरुतर ग्रन्थ है, किन्तु अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है।

स्फुट विषय के रचयिताओं में अमेठी के राजा गुरुदत्तसिंह उपनाम भूप वर्णनीय हैं। आप की दोहों में सतसई बिहारी-कृत सतसई की कई अंशों में समता करती है। इस के भी दोहे बड़े ही मार्के के हैं। गिरिधर की कुंडलियाओं में ऐसा कुछ चमत्कार है और वह स्वभावोक्ति की बहार पाई जाती है कि हिन्दी-संसार में इनका बड़ा ही मान है और ये छोटे बड़े सभी की ज़बान पर रहती हैं। बोधा एक बड़े ही प्रेमी पुरुष थे। इनके इश्क़नामा और विरहवारीश बड़े भाव पूर्ण ग्रन्थ हैं। रामचन्द्र पंडित ने केवल ६२ छन्दों की चरणचन्द्रिका बनाई है, किन्तु इसी में अपना काव्य नैपुण्य सर्वतोभावेन प्रकट कर दिया है। इस ग्रन्थ-रत्न की जितनी प्रशंसा की जाय, सब थोड़ी है। सीतल ने गुलज़ारचमन आदि चार चमनें खड़ी बोली भाषा में लालबिहारी की प्रशंसा में रचीं। ये महाशय एक महन्त थे और लालबिहारी को ईश्वर मानते थे। इनकी रचना बड़ी ही चटकीली और भाव-पूर्ण है। पद्माकर महाशय अनुप्रास के बड़े ही प्रेमी थे। इनके

जगद्विनोद, गंगालहरी, प्रबोध-पचासा आदि ग्रन्थ बहुत लोकमान्य हैं। इनमें कोई बड़े ऊँचे दर्जे का साहित्य-चमत्कार नहीं है, किन्तु अनुप्रास-बाहुल्य से ये लोकप्रिय बहुत हैं। चन्द्रशेखर वाजपेयी-कृत हम्मीरहठ वीर काव्य का एक अच्छा नमूना है। लल्लूलाल-कृत प्रेम-सागर और सदल मिश्र-कृत नासकेतोपाख्यान प्राचीन और वर्तमान प्रणालियों के राज़ीनामे हैं। इनमें कथायें प्राचीन प्रथा की कही गई हैं, किन्तु भाषा खड़ी बोली है जो ब्रजभाषा को कुछ कुछ लिये हुए है। अतः उत्तरालंकृत प्रकरण से वर्त्तमान प्रणाली के गद्य का आरम्भ हो चला था।

परिवर्त्तन प्रकरण में महाराजा मानसिंह अयोध्यानरेश, राजा शिवप्रसाद, बाबा रघुनाथदास, राजा लक्ष्मणसिंह और महर्षि दयानन्द प्रधान कवि अथवा लेखक थे। महाराजा मानसिंह कृत शृंगारलतिका एक बड़ा ही अनुप्रासपूर्ण चामत्कारिक ग्रन्थ है। राजा शिवप्रसाद ने पाठशालाओं के योग्य बहुत सी पुस्तकें रचीं, जिनमें गुटके प्रधान हैं। इन्होंने पहले पहल शुद्ध खड़ी बोली का गद्य में प्रयोग किया, किन्तु खिचड़ी हिन्दी आप के अधिक पसन्द थी। बाबा रघुनाथदास रामसनेही ने विश्रामसागर नामक एक बड़ा ग्रन्थ रचा, जो साधारण होने पर भी रोचक कथाओं के कारण बहुत प्रचलित है। राजा लक्ष्मणसिंह ने शकुन्तला नाटक का शुद्ध हिन्दी में अनुवाद किया। इनकी रचना ने इस समय अच्छी ख्याति पाई। महर्षि दयानन्द सरस्वती इस समय के बड़े ही पूज्य, शुद्ध-चरित, और अत्यन्त सबल शीलगुण के मनुष्य थे। आपने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि कई ऐसे

ऐसे अनमोल ग्रन्थ रचे हैं जो प्रलय पर्य्यन्त हिन्दी का नाम स्थिर रक्खेंगे। यदि किसी समय हिन्दी लुप्त भी हो जायगी, तो इन ग्रन्थरत्नों के कारण वह संसार में सहस्रों मनुष्यों द्वारा पढ़ी जावेगी। किसी प्रधान मत के धर्म्मग्रन्थों का किसी भाषा में होना उस भाषा का गौरव होता है। यही गौरव महर्षि दयानन्द ने स्वयं गुजराती होकर भी हिन्दी को प्रदान किया। उनका और आर्य्य-समाजियों का यह ऋण हिन्दी पर सदैव बना रहेगा।

वर्त्तमान काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सहजराम, शिवसिंह, प्रतापनारायण, देवकीनन्दन खत्री, साधुशरणप्रसाद, ठाकुर गदाधरसिंह, कविराजा मुरारिदान, शिवनन्दनसहाय, श्यामसुन्दरदास आदि प्रधान लेखक हुए हैं या हैं। भारतेन्दु जी की नाटकावली बहुत उत्कृष्ट है। नाटकों में भी सत्यहरिश्चन्द्र, चन्द्रावली, नील देवी, भारतदुर्दशा और प्रेमयोगिनी ग्रन्थ बहुत ही अच्छे बन पड़े हैं। इन की रचनाओं में प्रेम, हास्य और देशहित बहुत पाये जाते हैं और स्वभावोक्ति की भी उनमें अच्छी बहार है। सहजराम कृत सुदामाचरित्र रामायण के ढर्रे का एक अच्छा ग्रन्थ है। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने सरोज ग्रन्थ रचकर हिन्दी-संसार का असीम उपकार किया। उसके द्वारा प्रायः ८०० कवियों के हाल एवं नाम स्थिर हो गये। प्रतापनारायण मिश्र ने हास्यपूर्ण कई उत्कृष्ट ग्रन्थ रचे। देवकीनन्दन खत्री ने चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्तासन्तति, भूतनाथ आदि उत्कृष्ट उपन्यास लिखकर हिन्दी में उपन्यासों की एक अनूठी चाल चलाई। साधुशरणप्रसाद ने भारतभ्रमण नामक एक भारी ग्रन्थ रचकर यात्रियों, द्रष्टाओं आदि का बड़ा उपकार

किया है। इसमें साहित्य-स्वाद कुछ भी नहीं है किन्तु ग्रन्थ बड़ा उपकारी है। ठाकुर गदाधरसिंह-कृत चीन में तेरह मास श्रौर रूस-जापान-युद्ध बड़े ही उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। इनमें देश-हित कूट कूट कर भरा है। मुरारिदान ने जसवन्तजसोभूषण नामक भारी ग्रन्थ द्वारा अलंकार का विषय साफ़ कर दिया। बाबू शिवनन्दनसहाय ने कई अच्छी जीवनियाँ लिखी हैं, जिनमें हरिश्चन्द्र की जीवनी ख़ूब बनी है। बाबू श्यामसुन्दरदास ने हिन्दी के लिए बड़ा श्रम किया है। इनका हिन्दी-शब्दसागर बड़ा ही उपकारी ग्रन्थ बन रहा है।

आजकल भाषा में अनेकानेक सुलेखक अच्छा श्रम कर रहे हैं श्रौर आशा है कि उनके परिश्रम से अच्छे अच्छे ग्रन्थ बनेंगे। हमारे लेखकों को आत्मनिर्भरता श्रौर विचार-स्वतन्त्रता पर ध्यान रखना चाहिए श्रौर ईर्षा द्वेष से बच कर यथार्थभाषी बनने पर सदैव कटिबद्ध रहना चाहिए।

आठवाँ पुष्प।

हिन्दी का महत्त्व*(सं० १९६९)।

यह एक बड़ा ही गम्भीर विषय है, जिस पर छोटा और बड़ा, हर प्रकार का लेख लिखा जा सकता है। मुझे आज्ञा मिली है कि इसी गहन विषय पर आप लोगों के सम्मुख अपने विचार उपस्थित करूँ। इस विस्तीर्ण पांडित्य-पूर्ण विषय पर यदि किसी पंडित को कुछ कथन करने की आज्ञा मिलती, तो वह आज आप लोगों के सामने वह वह उच्च विचार उपस्थित करता कि आप भी प्रसन्न हो जाते। जान पड़ता है कि आप की इच्छा आज पांडित्य-पूर्ण लेख सुनने की नहीं है, प्रत्युत बाल-क्रीड़ा देखने की है, तब न आपने बालकों के समान ही ज्ञान-धारी मुझ ऐसे अल्पज्ञ को यह सेवा सौंपी है। अतः बड़ों की आज्ञा शिरोधार्य समझ कर "निज पौरुष परमान ज्यों मशक उड़ाहिँ अकास" के अनुसार यह लेख आप लोगों की सेवा में समर्पित करता हूँ।

हिन्दी के विचार में भाषा और वर्ण दोनों का कथन आता है। भाषा में साहित्य मुख्य है; अतः हम उसी से इस लेख का आरम्भ करते हैं। साहित्य अथवा काव्य का शुद्ध लक्षण क्या है, इस विषय पर पंडितों का मत अब तक सर्वसम्मति से किसी ओर नहीं

---

* यह लेख पं० शुकदेवविहारी मिश्र ने लखनऊ की एक सभा में पढ़ा था।

झुक सका है। फिर भी बहुमत का झुकाव इस ओर समझ पड़ता है कि "काव्य वह वाक्य है जिसके शब्द, अर्थ या दोनों से अलौकिकानन्द प्राप्त हो"। साहित्य के गद्य, पद्य और नाटक नामक तीन विभाग हैं। बहुत से लोग गीतों का एक चौथा विभाग सा मानते हैं, विशेषतया पाश्चात्य महाशय गण। विषय के अनुसार गद्य, पद्य और नाटक में यह भेद है कि गद्य में विचारों का भावों से बहुत आधिक्य रहता है, पद्य में ये दोनों प्रायः सम भाव से रहते हैं और गीतों में भावों का आधिक्य विशेषता से हो जाता है। विषय के अनुसार देखने से पद्य और गीतविभाग पृथक् पृथक् हो जाते हैं, किन्तु वास्तव में ये मिले हुए हैं और गीत भी पद्य का ही एक भाग है। गद्य के उपविभाग थोड़े ही से हैं, किन्तु पद्य के बहुत अधिक। नाटक के उपविभाग गद्य से अधिक हैं। नाटक को बहुधा दृश्य काव्य कहते हैं और गद्य एवं पद्य को श्रव्य काव्य।

हमारे यहाँ संस्कृत एवं भाषा दोनों में काव्य के दश अंग माने गये हैं। इसीलिए बहुधा लोग दशांग काव्य-ज्ञाता इत्यादि का कथन किया करते हैं। काव्य के अंगों का जिस उत्कृष्टता और विस्तार के साथ कथन हमारे यहाँ है, वैसा अन्यत्र स्वप्न में भी नहीं पाया जायगा। अँगरेज़ी भाषा में मेटानिमी, सेनेकडकी, सिमिली, मेटाफ़र आदि दस ही पाँच काव्यांगों का कथन बहुत समझा गया है किन्तु हमारे यहाँ एक एक अंग के अनेकानेक उपांग कहे गये हैं, यहाँ तक कि भावभेद के अन्तर्गत केवल नायिकाभेद के ३८४ उपभेद कथित हैं। इस दशांग-वर्णन को हमारे यहाँ रीति-वर्णन कहते हैं। इसके अंग ये हैं—पदार्थनिर्णय, पिंगल, गणागण, गुण-दोष,

दोषोद्धार, भाव, रस, वृत्ति, पात्र और अलङ्कार । पदार्थनिर्णय में शब्दों और वाक्यों के शुद्ध अर्थ लगाने में जिन जिन शक्तियों और विचारों की आवश्यकता होती है उनका कथन है । इसमें अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, ध्वनि और तात्पर्य्य प्रधान हैं । इनमें से प्रथम तीन विशेषतया शब्दों के सहारे पर चलती हैं और अन्तिम दो वाक्यों के । इन शक्तियों से कोष से कोई सरोकार नहीं । कोष जानने पर भी मनुष्य बिना इनकी सहायता के शुद्ध अर्थ नहीं लगा सकता । इनमें से भी एक एक के अनेकानेक भेदान्तर हैं । जो महाशय व्यंजना और ध्वनिभेद को भली भाँति समझ लेवें, वे भाषा-काव्य-प्रणाली के अच्छे ज्ञाता समझे जायँगे ।

पिंगल में मेरु, पताका, मर्कटी, नष्ट, उद्दिष्ट, और प्रस्तार एक प्रकार से गणित-शास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं । इनके द्वारा गणित के कई भाग नये नियमों से सिद्ध होते हैं । किन्तु इन सबका जानना पिंगलज्ञान के लिए आवश्यक नहीं है । हमारे यहाँ छन्दों की संख्या अनन्त है । अन्य भाषाओं में दस बीस प्रकार के छन्द बहुत समझे गये हैं, किन्तु हमारे यहाँ सैकड़ों प्रकार के छन्द प्रस्तुत हैं और सैकड़ों नये छन्द पिंगल में कथित नियमों से बनाये जा सकते हैं । छन्द का विषय हमारे यहाँ बहुत परिपूर्ण है और अनेक आचार्य्यों ने इसी का कथन किया है । इनमें से सुखदेव मिश्र, मनीराम मिश्र, और दास प्रधान हैं । अन्य आचार्य्यों ने भी विस्तारपूर्वक यह विषय कहा है ।

गणागण-विचार बहुत कम भाषाओं में पाया जायगा । इस में नर काव्य वाले छन्दों के आदि में प्रथम तीन और प्रथम छः अक्षरों पर विचार करके उनके देवताओं के अनुसार फलाफल सोचा जाता है । वास्तव में इस विषय का धर्म्म से विशेष सम्बन्ध है और काव्य से थोड़ा । जो लोग इस विषय के धर्म पर विश्वास नहीं रख सकेंगे, वे इसे अनावश्यक समझेंगे । किन्तु काव्य को धर्म्म से मिला कर सब अड़चनों से बचाते हुए उसे निभा ले जाना थोड़ी बुद्धिमत्ता की बात नहीं है । गुणों में अट्ठारह गुण प्रधान माने गये हैं और हमारे साहित्य पर विचार करने से ज्ञात होगा कि इनका समावेश कवियों ने बहुतायत से किया है । अन्यभाषाओं में भी ये पाये जायँगे, किन्तु इस आधिक्य से नहीं । दोषों का भी वर्णन हमारे यहाँ बहुत अधिकता से हुआ है, यहाँ तक कि बहुत सूक्ष्मदर्शिता से देखने पर बहुत कम छन्द ऐसे मिलगे जिन में कोई भी छोटा या बड़ा दोष न स्थापित किया जा सके । कुलपति मिश्र ने दोषों का वर्णन अच्छा किया है । दोषोद्धारों का भी कथन हमारे यहाँ बहुतायत से हुआ है । भावभेद, रसभेद, और अलङ्कार हमारी रीति-काव्य के जीव हैं । इन्हीं पर उसका गौरव बहुतायत से अवलम्बित है । ध्वनि-भेद और इनका जानने वाला रीति का पूर्णज्ञ कहा जा सकता है । इन्हीं के विषय में गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि—

आखर अरथ अलंकृत नाना ।
छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना ॥

भाव भेद रस भेद अपारा।
कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥
तौन बिबेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहौं लिखि कागद कोरे॥

भाव के षट् उपभेद हैं, अर्थात् स्थायी, अनुभाव, विभाव, सात्विक, संचारी और हाव। इन्हीं का सांगोपांग अध्ययन करने से एक अनभिज्ञ भी समझ सकता है कि कोई भाव किस प्रकार से उठ कर स्थिर होता, किस के सहारे से, किस मौक़े पर, उसके अनुगामी क्या क्या होते हैं और उसका प्रत्यक्ष फल देह पर क्या देख पड़ता है? इस प्रकार से भाव के अंकुरित होने से उसके पूर्णरूपेण दृढ़ हो जाने तक का वर्णन आचार्य्यों ने भावभेद, और रस भेद में कर दिया है। इनके जान लेने से एक साधारण मनुष्य भी काव्यरचना कर सकता है। कम से कम एक साधारण कवि को भी जान पड़ेगा कि किन वर्णनों के पीछे कैसे वर्णन होनें चाहियें। इनका जानने वाला सहज ही में किसी कवि के साहित्य-ज्ञान का पता लगा सकता है। यदि वह कवि उचित रीति से पूर्वापर क्रम से वर्णन करता चला जायगा, तो उसकी रचना में रसपूर्ण होते जावेंगे और सुप्रबंध गुण एवं स्वभावोक्ति की अधिकता होगी; अन्यथा भावोदय और भावशान्ति साथ ही साथ कहे जायँगे, जिससे रचयिता की शक्तिहीनता का पता लगेगा। इसी भाँति रस-शत्रु और रस-मित्र को जान लेने से मनुष्य जान सकता है कि कैसे वर्णनों का साथ कथन होना स्वाभाविक है और कैसों का नहीं? भावभेद और रसभेद के विस्तीर्ण वर्णन स्वभावोक्ति

एवं सुप्रबन्ध गुण के बड़े ही अच्छे पोषक हैं। इनको जानने से एक अज्ञ भी प्रकृति के अनुकूल वर्णन कर सकेगा।

अलंकार काव्य-शरीर के अलंकारों के समान हैं। इसके जानने से साहित्य में स्वभावोक्ति-सम्बन्धिनी पूर्णता तो नहीं आवेगी, किन्तु उसका चमत्कार बहुत बढ़ जायगा। अलंकार शब्द और अर्थ-सम्बन्धी होते हैं। शब्दालंकारों से भाषा का चमत्कार बढ़ता है और अर्थालंकारों से अर्थ-सम्बन्धी चमत्कार की वृद्धि होती है। कुल मिलाकर सौ से ऊपर अर्थालंकार हैं और सात या आठ शब्दालंकार। इनके अतिरिक्त सात आठ परांग हैं, जिनकी गणना अलंकार और रस दोनों में हो सकती है। अर्थ वाले अलंकारों में से बहुतों में एक एक के कई उपभेद हैं। केवल असम्भव हमारे यहाँ छः प्रकार का कहा गया है। यही दशा अनेकानेक अन्य अङ्गों की है। अलङ्कार, रस, भाव आदि पर सैकड़ों हज़ारों ग्रन्थ हमारे यहाँ वर्त्तमान हैं, जिनके पढ़ने से विदित होता है कि हमारे कवियों ने कितना प्रचुर बुद्धि-बल व्यय करके हज़ारों ग्रन्थ रचे हैं। एक एक छन्द पर दस दस प्रकार के भाव सोचे जा सकते हैं और एक एक छन्द के अर्थ लगाने से सात सात आठ आठ पृष्ठ लिखने से भी सब प्रकार के साहित्य-गुण नहीं दिखलाये जा सकते हैं। वृत्ति और पात्र-विचार रस-विचार से बहुत कुछ मिलते हैं।

साहित्यरचना और तद्गुणग्रहण, इन दोनों बातों में हमारे यहाँ प्रचुर परिश्रम हुआ है। रचना में जैसे जैसे ऊँचे विचार लाये गये हैं वैसे ही साहित्याचार्य्यों ने दूसरों की रचनाओं में दिखलाने

में भी श्रम किये हैं । बहुत सी टीकायें हमारे आचार्य्यों ने पद्य में भी रची हैं ।

हम गद्य, पद्य और नाटक नामक साहित्य के तीन भाग ऊपर कह आये हैं । इन तीनों के विषय में यहाँ कुछ इतिहाससम्बन्धी घटनायें भी कहना उचित समझ पड़ता है । वास्तव में पद्य का इतिहास हमारे यहाँ साहित्य ही का इतिहास है, क्योंकि पद्य की मात्रा आनुषंगिक दृष्टि से इतनी अधिक है कि गद्य और नाटक उसके किसी अंश में भी नहीं आते हैं । इस कारण से हम नाटक और गद्य का सूक्ष्म इतिहास पहले कह कर फिर पद्य का इतिहास-सम्बन्धी कुछ चमत्कारिक भाग दिखलाने का प्रयत्न करेंगे ।

नाटक का प्रादुर्भाव हमारी कविता में पहले पहल बिहारी कवि शिरोमणि विद्यापति ठाकुर से हुआ । रास-मंडलियाँ भी एक प्रकार से नाटक ही खेलती हैं और इनका प्रचार व्रज में अच्छा रहा है, किन्तु फिर भी नाटक का प्रादुर्भाव वहाँ से न हो कर विहार से हुआ । विहार ही की ओर हिन्दी-नाटकों ने बल पाया और शेष हिन्दीभाषी देशों में न उनका विशेष प्रचार हुआ और न निर्माण ही आधिक्य से किया गया । विद्यापति ठाकुर ने पारिजातहरण और रुक्मिणीपरिणय नामक दो नाटक-ग्रन्थ रचे । आपका रचनाकाल संवत् १४४५ के निकट है । आप के पीछे कई बिहारी कवियों ने नाटक रचे और वे अब तक रच रहे हैं; किन्तु इस ओर फिर भी नाटकों का प्रचार नहीं हुआ । महाकवि केशवदास ने विज्ञानगीता नामक एक नाटक-ग्रन्थ रचा, किन्तु

फिर भी यह पूर्ण नाटक नहीं है। इन का रचनाकाल संवत् १६४८ से ७४ तक चलता है। महाकवि देव जी ने देवमायाप्रपंच नाटक नामक एक परमोत्कृष्ट ग्रन्थ रचा, किन्तु यह भी पूर्ण नाटक नहीं है। ये ग्रन्थ प्रबोधचन्द्रोदय के ढंग पर हैं। प्रबोधचन्द्रोदय के हमारे यहाँ कई अनुवाद हुए, किन्तु कोई भी बहुत उत्तम नहीं बना। वास्तव में वह संस्कृत में भी एक साधारण ग्रन्थ मात्र है।

देवजी ने संवत् १७४६ से १८०० के लग भग तक रचना की। इनके पीछे भी बहुत दिनों तक अच्छे नाटक नहीं बने। इधर आकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने कई परमोत्कृष्ट नाटक-ग्रन्थ रचे। इनमें से कुछ ग्रन्थ शेक्सपियर के ग्रन्थों तक का पूरा सामना करते हैं। इसी समय के पीछे और इस से कुछ पहले भी अनेक सुकवियों ने अनेकानेक उत्कृष्ट नाटक रचे, यहाँ तक कि इस समय प्रायः सौ डेढ़ सौ नाटक-ग्रन्थ हमारे यहाँ हो गये हैं, जिनमें बहुतेरे अच्छे भी हैं।

गद्य तो भाषा के जन्म से ही लिखा और बोला जाता था, किन्तु प्राचीन गद्य के उदाहरण इस समय बहुत नहीं मिलते। सबसे पुराने गद्य के उदाहरण महाराजा पृथ्वीराज और उनके बहनोई रावल समरसिंह के समय के मिलते हैं। ऐसे नौ उदाहरण प्राचीन ताम्रपत्रों पर से काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने खोज निकाले हैं। किन्तु ये उदाहरण साहित्य के न होकर साधारण गद्य के हैं। सबसे पहले गद्य-साहित्यनिर्माता प्रसिद्ध महात्मा गोरखनाथ हैं, जिन्होंने जगत्प्रसिद्ध गोरखपन्थ चलाया। आपका रचनाकाल संवत् १४०७ के लगभग है, सो इसी संवत् में हमारे

गद्य काव्य ने हरिगुणगान के साथ जन्म ग्रहण किया। इनके पीछे गंगा भाट नामक एक कवि ने अकबर शाह के समय में चन्द-छन्दबरनन की महिमा नाम्नी खड़ी बोली के गद्य में एक पुस्तक रची और सं० १६८० में जटमल नामक कवि ने खड़ी बोली के गद्य में गोरा बादल की कथा बनाई।

इन गद्यलेखकों के अतिरिक्त सं० १६०० के लगभग प्रसिद्ध महात्मा वल्लभाचार्य्य के पुत्र विट्ठल जी ने शृंगाररसमंडन नामक ब्रजभाषा गद्य का एक ग्रन्थ रचा और इनके पुत्र गोकुलनाथजी ने दो बड़े ग्रन्थ ब्रजभाषा गद्य में बनाये। इनके पीछे तुलसीदास, केशवदास, देव, दास आदि अनेकानेक सुकवियों के गद्य वाले उदाहरण मिलते हैं, किन्तु इनके गद्य-ग्रन्थ नहीं हैं, केवल उदाहरण देख पड़ते हैं। इस समय से अनेकानेक टीकाकारों ने ब्रजभाषा गद्य में भारी भारी कवियों के उत्कृष्ट ग्रन्थों की टीकायें रची हैं। इस प्रकार के बहुत से प्राचीन ग्रन्थ देख पड़ते हैं। सूरति मिश्र ने संवत् १७६७ में ब्रजभाषा गद्य में बैतालपचीसी नामक ग्रन्थ रचा। इसी प्रकार के कुछ अन्य ग्रन्थ भी बनाये गये, किन्तु फिर भी गद्य काव्य का अच्छा प्रचार नहीं हुआ।

समय पाकर जब अँगरेज़ी राज्य यहाँ फैला और पठन-पाठन की प्रणाली ने उन्नति पाई, तब पाठशालाओं के लिए गद्य-ग्रन्थों की आवश्यकता हुई। ऐसी दशा में गद्य-ग्रन्थों का अभाव सा देख कर सरकार ने सं० १८६० में लल्लूलाल तथा सदल मिश्र से और पीछे से राजा शिवप्रसाद से अच्छे गद्य-ग्रन्थ बनवाये। उन दोनों कवियों ने खड़ी बोली के साथ ब्रजभाषा का

भी थोड़ा बहुत संसर्ग रक्खा; किन्तु राजा साहब ने पहले पहल शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग किया। उनके पीछे राजा लक्ष्मणसिंह ने श्रेष्ठतर भाषा में रचना की और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने गद्य की महिमा आर्य्यसमाज और अपने पुनीत ग्रन्थों से और बढ़ाई।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय से वर्त्तमान गद्य का प्रारम्भ होता है। इन्होंने बहुत अच्छा गद्य लिखा और नाटकों तथा पत्र-पत्रिकाओं द्वारा इस का बहुत विशद समादर एवं प्रचार बढ़ाया। इनकी भाषा उचित संस्कृतांश लिये हुए ख़ूब मज़े की थी। पीछे से लेखकों ने संस्कृत के शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग बढ़ाया और वे अब भी बढ़ाते जाते हैं। संस्कृत-शब्दों का अधिक बढ़ना बहुत से लोग इस कारण से पसन्द नहीं करते हैं कि उनके कारण से हिन्दी गूढ़तर होती जाती है और उसे एक दूसरी भाषा का आश्रय लेना पड़ता है, क्योंकि यद्यपि संस्कृत एक आर्य्य भाषा है, तथापि हिन्दी के लिए एक भिन्न भाषा अवश्य है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी को गौरव संस्कृत से ही प्राप्त हुआ है और भविष्य में भी हो सकता है। कुछ लोगों का यह भी मत है कि हिन्दी को सार्वदेशिक भाषा बनाने के लिए विशेष संस्कृताश्रय आवश्यक है, क्योंकि एकदेशीय शब्दों के आधिक्य से बंगाली, मदरासी, महाराष्ट्र, गुर्जर, पंजाबी आदि महाशय हिन्दी को नहीं समझ सकेंगे, किन्तु यदि उसमें संस्कृत-शब्दों का प्राधान्य रहेगा, तो लोग उसे अधिक सुगमता से समझ लेंगे, अथवा कम से कम उसका भाव हृदयंगम कर लेंगे।

हिन्दी का सब से बड़ा गौरव यह है कि यह भाषा सारे हिन्द की एक प्रकार से राष्ट्रभाषा अथवा लिंगुवा फ्रेंका है। इसकी सीमायें बंगाली, मदरासी, महाराष्ट्री, गुर्जर, राजपूतानी, पंजाबी, कश्मीरी, नैपाली आदि सभी भाषाओं से मिलती हैं और यद्यपि वे सब भाषायें एक दूसरी से नितान्त पृथक् हैं, तथापि हिन्दी से वे सब कुछ कुछ मिलती हैं। अतः हिन्दी उन सब के लिए राज़ी-नामा या मिश्रणस्थल है। यदि कोई एक भाषा सारे भारत के लिए सार्वदेशिक भाषा हो सकती है, तो वह अवश्यमेव हिन्दी है; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। हमारे अक्षर भी भारत के शेष सभी अक्षरों से श्रेष्ठतर हैं। अक्षरों के लिए चार बातें मानी गई हैं, अर्थात् सामर्थ्य, सरलता, त्वरालेखन-उपयोगिता और सुन्दरता। इन चारों बातों का सार इसी क्रमानुसार है। अक्षरों के लिए सब से अधिक आवश्यक गुण सामर्थ्य है, अर्थात् वर्णमाला में यह शक्ति होनी चाहिए कि वह मनुष्यों द्वारा व्यवहृत सब प्रकार की ध्वनियों को सफलतापूर्वक लिख सके, और प्रत्येक ध्वनि के लिए उसमें एक ही चिह्न हो, सीन, स्वाद, से, की भाँति अनेक नहीं। अनेक चिह्नों में जिज्ञासु भ्रमवश नहीं जान सकता कि वह कब किसका प्रयोग करे। यह गुण हमारी वर्णमाला में पूर्णता से है। उर्दू में सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जो शुद्धता-पूर्वक लिखे ही नहीं जा सकते। ऊधव शब्द लिख कर उर्दू में उसे अनेकानेक प्रकार से पढ़ सकते हैं। यही दशा अँगरेज़ी आदि पाश्चात्य भाषाओं की है।

सामर्थ्य के पीछे सरलता भी वर्णों के लिए आवश्यक है। यदि ध्वनियों के लिए चिह्न ऐसे पेंचदार हों कि उनका स्मरण

रखना ही कठिन हो, तो उनका सीखना दुर्घट होने से उनसे लाभ कम होगा। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमारे वर्णों में सरलता देशी और विदेशी सभी वर्णों से अधिक है। त्वरा-लेखन-उपयोगिता और सुन्दरता में कुछ कुछ विरोध पड़ता है, क्योंकि जो चिह्न जल्दी लिखा जावेगा वह श्रमहीन तथा सुन्दर नहीं होगा। सुन्दर चिह्न बिना अधिक समय लगाने के नहीं बन सकता। रोज़ाना कारबार के लिए शीघ्रता विशेष आवश्यक है और चिरकाल रक्खे जाने वाले लेखों के लिए सुन्दरता एक प्रशंसनीय गुण है। हमारे यहाँ वर्णों के शिरों पर रेखा केवल सुन्दरता के लिए लगाई गई है, अन्यथा इसका कोई प्रयोजन नहीं। भ, म, घ, ध, आदि में थोड़ा अन्तर डाल देने से बिना शिरोभाग की रेखा के भी काम चल सकता है। यही रेखा हमारे वर्णों की सुन्दरता बढ़ाती और शीघ्रलेखन-शक्ति को घटाती है। आज कल कामकाज की वृद्धि से शीघ्रता भी एक आवश्यक गुण हो गया है। इन कारणों से पंडित-समाज का विचार है कि साधारण रोज़ाना लेखों में शिरोभाग की रेखा न लिखी जाय, किन्तु चिरकाल स्थिर रखने वाले लेखों तथा छपी हुई पुस्तकों में इसका स्थिर रखना आवश्यक है। इस प्रकार हमारी वर्णमाला में त्वरालेखन-उपयोगिता और सुन्दरता दोनों स्थिर रहेंगी।

उपर्युक्त कथन में यह सिद्ध नहीं किया गया है कि हिन्दी अक्षरों में सामर्थ्य, सरलता, त्वरालेखन-उपयोगिता और सुन्दरता भारतवर्ष में प्रचलित शेष सभी वर्णमालाओं से अधिक है; वरन् यह बात मान

ली गई है। इसके सिद्ध करने के लिए एक भारी लेख की आवश्यकता है। ऐसा एक लेख हमने लिखा है और वह छपने गया है। यहाँ दिग्दर्शन की भाँति वर्णमाला के लिए आवश्यक गुण दिखलाये गये हैं। हिन्दी में इन गुणों का होना प्रमाणित होने के लिये देश के सभी अक्षरों को नागराक्षरों से मिलाना होगा। जो लोग सब अक्षरों को जानते हैं अथवा पा सकते हैं, वे जानेंगे कि शिरोभाग की रेखा छोड़ देने से नागराक्षरों की सरलता और त्वरालेखन-उपयोगिता और अक्षरों से बढ़ जाती है।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि भारत में राष्ट्रलिपि और राष्ट्र-भाषा होने की योग्यता हिन्दी के अक्षर और भाषा दोनों में है। इसमें एक यह भी बहुत बड़ा गुण है कि इसके अक्षर और भाषा अन्यान्य अक्षरों और भाषाओं के सामने बहुत अधिक देश और जन-संख्या में प्रचलित हैं। इनकी प्राचीनता भी सबसे बहुत अधिक है और हिन्दीसाहित्य भारत के अन्य साहित्यों से गुणों एवं पूर्णता में बहुत बढ़ा हुआ है।

ऐसी दशा में यह प्रश्न उठता है कि जब यह भाषा सब प्रकार से राष्ट्रीयता के योग्य है, तब इसका शब्दभण्डार एवं उसका उपयोग ऐसा क्यों न बनाया जाय कि अन्य देशों के निवासी पंडित-गण इसे समझें, अर्थात् इसमें संस्कृत के अधिकाधिक शब्द क्यों न लाये जावें ? इस प्रश्न को इस भाँति कहने पर सभी लोग इसका उत्तर, 'हाँ' में देना चाहेंगे। माननीय बाबू शारदाचरण मित्र ने ऐसा ही कहा भी है। किन्तु इसी के साथ ही इससे भी अधिक महत्ता का दूसरा प्रश्न उठता है, और वह यह है कि, क्या अन्यदेशीय कुछ

पंडितों के समझने योग्य करने के लालच से हम हिन्दी को ऐसा बनाना चाहते हैं कि उसी के देशों वाले साधारण जनसमुदाय उसे न समझ सकें, अर्थात् वह विदेशियों को सुगम और स्वदेशियों को दुर्ज्ञेय हो जावे? इन कारणों से हमारा मत है कि हिन्दी की ऊँची शैली वाली और महत्तायुक्त पुस्तकों में संस्कृत-मिश्रित भाषा लिखी जा सकती है; किन्तु साधारण पुस्तकों में साधारण एवं शुद्ध हिन्दी लिखनी चाहिए। ऊँची श्रेणी की पुस्तकों में भी प्रबन्धध्वनि, रस, अलङ्कार आदि अनेकानेक चमत्कार लाकर उत्तमता की वृद्धि होनी चाहिये, केवल संस्कृत-वृद्धि से नहीं। भारतेन्दु बाबू हरिचन्द्र के पीछे गद्योन्नति अच्छी हुई और अनेकानेक विषयों की अच्छी अच्छी पुस्तकें हमारे यहाँ रची गईं। अब हमारा गद्य-भंडार कृश नहीं है और दिनों दिन उन्नति कर रहा है। हमारा प्राचीन साहित्य पद्य ही है। हिन्दी का पहला ग्रन्थ पुष्य बन्दीजनकृत एक अलङ्कारों का ग्रन्थ है, जिसमें दोहाओं द्वारा वर्णन है। कहते हैं कि यह संवत् ७७० में बना। इससे हिन्दी भाषा की उत्पत्ति संवत् ७०० के लगभग समझ पड़ती है। उस समय से अब तक के साहित्य काल को हमने अपने इतिहास-ग्रन्थ में आठ मुख्य भागों में विभक्त किया है। उनके नाम ये हैं:—

पूर्व-प्रारम्भिक हिन्दी (संवत् ७००—१३४४), उत्तर-प्रारम्भिक हिन्दी (१३४५—१४४४), पूर्व-माध्यमिक हिन्दी (१४४५—१५६०), प्रौढ़-माध्यमिक हिन्दी (१५६१—१६८०), पूर्वालंकृत हिन्दी (१६८१—१७९०), उत्तरालंकृत हिन्दी (१७९१— १८८९),

परिवर्त्तन-कालिक हिन्दी (१८९०—१९२५) और वर्त्तमान हिन्दी (१९२६—अब तक)।

पूर्व प्रारम्भिक काल में थोड़े से ही कवि हुए, जिनमें चद्र और जल्हन प्रधान थे। इस समय में हिन्दी का प्राकृत भाषा से कुछ कुछ सम्बन्ध था। चन्द हमारे यहाँ का मानो चासर या वाल्मीकि है। इसने परम प्राचीन कवि होने पर भी युद्ध, श्रृंगार और मृगया के बहुत बढ़िया वर्णन किये और अनेकानेक अनमिल विषयों को भी सफलतापूर्वक व्यक्त किया। इसके रासो ग्रन्थ में वर्णन-पूर्णता और विषय-बाहुल्य के अच्छे चमत्कार देख पड़ते हैं।

उत्तर-प्रारम्भिक काल में महात्मा गोरखनाथ प्रधान कवि थे। इनके द्वारा समादृत हो कर हिन्दी ने ब्राह्मणों एवं पंडितों में भी मान पाया और समय पर बड़े बड़े ऋषियों तथा महाराजाओं ने इसका स्वच्छ समादर किया, यहाँ तक कि उन्होंने स्वयं उसमें साहित्य-रचना की और सैकड़ों कवियों को आश्रय प्रदान किया। ऋषि-समादर एवं राज-मान हिन्दी का बहुत बड़ा सैाभाग्य रहा है। इतने राजाओं और ऋषियों ने किसी अन्य भाषा में साहित्यरचना न की होगी। राजाओं ने हमारे कवियों को पुरस्कार भी बहुत भारी दिये, यहाँ तक कि एक एक छन्द पर छत्तीस छत्तीस लाख रुपयों के दान हुए हैं। पूर्व-माध्यमिक काल में विद्यापति और कबीरदास बड़े ही अच्छे कवि हुए और महात्मा रामानन्द ने हिन्दी को अपनाया। विद्यापति ने साधारण बोल-चाल में ही वह अलैाकिक काव्यछटा दिखलाई, जिससे पाठक का मन मुग्ध हो जाता है। कबीरदास ने भी रोज़ाना बोलचाल ही में

अकथनीय साहित्य-सौन्दर्य्य भर दिया है। इनकी उलटवाँसी बहुत प्रसिद्ध और आदरणीय हैं। महात्मा कबीरदास की रचनाओं में यद्यपि तुलसीदासजी की सी भक्ति-प्रगाढ़ता नहीं देख पड़ती है, तथापि उनमें सभी जगह सदुपदेश भरे हैं और साधारण घटनाओं के सहारे से इन्होंने बड़े बड़े दार्शनिक सिद्धान्त दिखलाये हैं। इनकी रचनाओं में अनोखापन ख़ूब है और वे सभी स्थानों पर खरी हैं। महात्मा वल्लभाचार्य्य और चैतन्य महाप्रभु ने इसी समय उत्तरी भारत में वैष्णवता द्वारा भक्ति-तरंगिणी की अटूट धारायें प्रवाहित कीं। वल्लभाचार्य्य से हिन्दी-साहित्य को बहुत बड़ा लाभ पहुँचा। इन के कारण से अनेकानेक ऋषियों ने भजनों द्वारा कृष्ण-यश का समय पर गान किया।

प्रौढ़-माध्यमिक काल में सैकड़ों सुकवि हुए, किन्तु उन में भी महात्मा सूरदास, हित-हरिवंश, नन्ददास, तुलसीदास, केशवदास, मीराबाई, जायसी, नरोत्तमदास, गंग, तानसेन, हरिदास, रहीम, रसखान, वीरबल, सुन्दरदास, घासीराम आदि बड़े बड़े कवि हुए।

महात्मा सूरदास के शरीर में मानो स्वयं वाल्मीकि ने दूसरा शरीर ग्रहण किया था। इन्होंने सैकड़ों विषयों का सांगोपांग विस्तार-पूर्वक कथन किया और जिसका वर्णन किया, उसकी तसवीर सी सामने खड़ी कर दी। वर्णन-पूर्णता में वाल्मीकि को छोड़ कर कोई भी कवि इस महात्मा की बराबरी नहीं कर सकता। ऐसा सजीव वर्णन प्रायः कोई भी कवि नहीं कर सका। यदि जी लगा कर इन का कृष्ण-बालचरित्र एक बार पढ़िए तो

बहुत काल तक चित्त से खेलती हुई बालक की तसवीर नहीं हटती। यही दशा अन्य वर्णनों की भी है। इनकी रचना कोरी रचना नहीं समझ पड़ती, वरन् उससे सजीवपन भासित होने लगता है और चित्त में उसका नाटक सा ऐसा अंकित हो जाता है कि महीनों तक भुलाये नहीं भूलता। कारण यह है कि इन्होंने पूर्ण तल्लीनता के साथ वर्णन किया है। जिस विषय का इन्होंने कथन किया है, उससे इन्हें पूर्ण सहानुभूति थी। उसी को इन्होंने अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना रक्खा था। जो कुछ ये कहते थे, वही इनके चित्त में था। इसी कारण से इनकी रचना सच्ची बनती थी। महात्मा हितहरिवंश ने भी इसी प्रकार की चमकती हुई रचना की है, किन्तु वह मात्रा में थोड़ी है। महात्मा नन्ददास, मीराबाई और हरिदास भी उत्कृष्ट भक्त कवि थे।

महात्मा तुलसीदास की भक्ति-प्रगाढ़ता सूरदास से भी बढ़ी हुई समझ पड़ती है। इन्होंने समस्त संसार को राममय देखा और वर्णन किया। हर पदार्थ और हर व्यक्ति के वर्णन में इनकी अखंड भक्ति टपकती है। मिथिला, दंडक, लंका, अयोध्या आदि जिन स्थानों में इन्होंने राम का पदार्पण कहा, वहाँ उनका कथन न करके उनके सहारे से राम का ही तदनुसार कथन किया। परम प्रगाढ़ भक्ति के साथ साहित्य के अनेकानेक अंगों और विषयों को उत्तमतापूर्वक व्यक्त करने में गोस्वामीजी ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। इनकी सब रचना प्राकृतिक, यथोचित और अनमोल है। रहीम ने नीति बहुत उत्तम कही है और सुन्दरदास तथा रसखान ने भक्ति के हृदय-ग्राही कथन किये हैं।

घासीराम की अन्योक्ति और नरोत्तमदास की साधारण घटनाओं वाले उत्कृष्ट कथन चित्त को चुरा लेते हैं। केशवदास की रचनाओं में आचार्य्यता और पांडित्य, दोनों का अच्छा चमत्कार है। इसमें बहुज्ञता की मात्रा ख़ूब है। इस समय में अनेकानेक उत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनके कथन स्थानाभाव से नहीं हो सकते।

पूर्वालंकृत काल से अलंकृत भाषा का प्रचार बढ़ा। हिन्दी भाषा जितनी श्रुतिमधुर है उतनी शायद अन्य कोई भी न होगी। पदलालित्य और अनुप्रास हिन्दी के प्रधान गुणों में हैं। अलंकृत काल में भाव-गाम्भीर्य्य और भाषा-सौन्दर्य्य दोनों की हमारे यहाँ बहुत अच्छी उन्नति हुई।

पूर्वालंकृत काल में सेनापति, बिहारी, भूषण, मतिराम, देव और लाल नामक बड़े ही उत्कृष्ट कवि हुए। इन के प्रवीण हाथों में हिन्दी की भाव और भाषा-सम्बन्धी उन्नति कमाल को पहुँच गई। सेनापति ने भक्ति, श्लेष और अनुप्रास का बहुत अच्छा चमत्कार दिखलाया। इन्होंने स्वयं बहुत ही ठीक कहा है कि इनकी रचना अमृत-धारा के समान बहती है और अलंकारों से पूर्ण है। वे कहते हैं—

मूढ़न को अगम सुगम एक ताको जाकी
तीखन बिमल बिधि बुधि है अथाह की।
कोई है अभंग कोई पद है सभंग सोधि
देखे सब अंग सम सुधा परवाह की॥
ज्ञान के निधान छन्द कोष सावधान जाकी
रसिक सुजान सब करत हैं गाहकी।

सेवक सियापति को सेनापति कवि सोई
जाकी द्वै-अरथ कविताई निरबाह की ॥ १ ॥
दोष सों मलीन गुनहीन कविताई है
तो कीने अरबीन परबीन कोई सुनिहै ।
बिनु ही सिखाये सब सीखिहैं सुमति जोपै
सरस अनूप रस रूप यामैं धुनि है ॥
दूषन को करि को कवित्त बिनु भूषन को
जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुर मुनि है ।
राम अरचत सेनापति चरचत दोऊ
कबित रचत याते पद चुनि चुनि है ॥ २ ॥

राखति न दोषै पोषै पिगंल के लच्छन को
बुध कवि के जो उपकंठहि बसति है ।
जो पै पद मन को हरष उपजावत हैं
तजै को कुनर जौन छन्द सरसति है ॥
अच्छर हैं बिसद करत ऊखै आपुस मैं
जाते जगती की जड़ताऊ बिनसति है ।
मानो छबिताकी उदवति सबिता की
सेनापति कबिताकी कबिताई बिलसति है ॥ ३ ॥

जो प्रशंसा सेनापति ने अपने छन्दों की लिखी है वही वास्तव में हिन्दी-कविता की है। हमारे यहाँ का साहित्य वास्तव में इन्हीं गुणों से युक्त है। उदाहरण के लिए सेनापति के चार छन्द यहाँ लिखे जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु ।

वृष को तरनि तेज सहसौ करनि तपै
ज्वालनि के जाल बिकराल बरसत है ।
तचति धरनि जग झुरत झुरनि सीरी
छाँह को पकरि पंथी पंछी बिरमत है ॥
सेनापति नेक दुपहरी ढरकत होत
धमका बिषम जो न पात खरकत है ।
मेरे जान पौन सीरे ठौर को पकरि कोनो
घरी एक बैठि कहूँ छाँहें बितवत है ॥ १ ॥

इस में कवि ने शब्दों ही द्वारा जेठ बैसाख की उष्णता का पूरा कथन कर दिया है ।

वर्षा ।

सेनापति उनये नये जलद सावन के
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोय कै ।
सोभा सरसाने न बखाने जात केहूँ भाँति
आने हैं पहार मनो काजर के ढोय कै ॥
घन सों गगन छप्यो तिमिर सघन भयो
जान्यो न परत मानो गयो रबि खोय कै ।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम जानि
मेरे जान याही ते रहत हरि सोय कै ॥ २ ॥

निवृत्ति मार्ग ।

महा मोह कन्दनि मैं जकत जकन्दनि मैं
दिन दुख दन्दनि मैं जात है बिहाय कै ।

सुख को न लेस है कलेस सब भाँतिन को
सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै ॥
आवै मन ऐसी घर बार परिवार तजौं
डारौं लोक लाज के समाज बिसराय कै ।
हरिजनपुंजनि मैं वृन्दाबन कुंजनि मैं
बैठि रहौं कहूँ तरवर तर जाय कै ॥ ३ ॥
केतो करौ कोय पैये करम लिखोय ताते
दूसरी न होय मन सोय ठहराइये ।
आधी ते सरस बीति गई है बरस अब
दुज्जन दरस बीच रस न बढ़ाइये ॥
चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित
सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइये ।
चारि बरदानि तजि पाय कमलेच्छन के
पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये ॥ ४ ॥

जान पड़ता है कि ये महाशय किसी मुसलमान या सरकार के नौकर थे, सो कमलेक्षण विष्णु को छोड़ कर म्लेक्षों के सेवक बनना बुरा कह गये हैं ।

बिहारी ने दोहों में बड़े ही बारीक विचार लिखे हैं और भूषण ने जातिप्रेम और जातीयता का चित्र खड़ा कर दिया है। साथ ही साथ आपने वीरकाव्य भी अद्वितीय किया। मतिराम की भाषा-मनोहरता और भावपूर्णता एवं सबलता बहुत ही सराहनीय है। देव कवि की भाषा बहुत ही अलंकृत और भाव बड़े ही ऊँचे हैं। इनका सामना सूर और तुलसी को छोड़ कर भाषा में दूसरा नहीं

कर सकता। ये तीन कवि ऐसे हैं जो कालिदास, भवभूति, शेक्सपियर, होमर, वरजिल आदि का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। हमारे त्रिदेव की भाँति ये तीनों कवि हिन्दीसाहित्य में हैं। लाल ने केवल दोहा-चौपाइयों में वीरकाव्य बहुत उत्कृष्ट किया है, जो देखते ही बन आता है। इस पूर्वालंकृत काल में अनेकानेक परमोत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनके नाम तक लिखने से लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा। उत्तरालंकृत काल में दास, भूप गुरुदत्तसिंह, रघुनाथ, सूदन, बोधा, गोकुलनाथ, रामचन्द्र, बेनी प्रवीन, प्रताप, पद्माकर आदि बड़े बड़े भारी और सबल कवि हुए। इन्होंने भाँति भाँति के ग्रन्थों से हिन्दी-साहित्य-भंडार को पूर्णता दी। इस समय भाषारमणीयता की ओर और भी अधिक ध्यान रहा।

परिवर्त्तन काल में कोई भी बहुत बड़ा कवि नहीं हुआ, किन्तु रचनाशैली में समयानुसार परिवर्त्तन हुआ। प्राचीन समय में आनन्दप्रदान तथा शिक्षा के लिए कविता होती थी, किन्तु लोकोपकार की ओर हमारे कवियों का ध्यान विशेषता से नहीं गया। परिवर्त्तन काल में इस देश में अँगरेज़ी राज्य फैला, जिससे जीवन-होड़ (struggle for existence) की उचित परिपाटी हमारे यहाँ दृढ़ हुई और दिनों दिन होती जाती है। इस कारण लोकोपकारी विषयों से भी काव्य का सम्बन्ध हुआ और इस नये प्रकार की कविता का भी प्रचार हो चला। इसी के साथ गद्य ने भी स्वाभाविक रीति से बल पाया।

वर्त्तमान काल में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र सर्वोत्कृष्ट कवि हुए। इनकी रचनाओं में प्राचीनता और नवीनत्व दोनों का मिश्रण था।

इन्होंने लोकोपकारी विषयों को भी लेकर देशभक्ति का मान बढ़ाया और श्रृंगार, हास्य तथा वीर रसों की भी सोहावनी कविता की। इनके पीछे खड़ी बोली का अच्छा प्रचार हुआ और कविता में भी उसका मान बढ़ रहा है। इस समय हमारे यहाँ उचित शिक्षाप्रद सत्य घटना-पूर्ण उपन्यासों, सामाजिक सुधार और देशभक्तिपूर्ण उपदेशप्रद नाटकों तथा ऐतिहासिक विषयों से पूर्ण महाकाव्यों की पद्य में आवश्यकता है। अब तक केवल हमें ३७५० हिन्दी-कवियों का पता लग चुका है, जिनका वर्णन हमने अपने हिन्दी काव्य के इतिहास-ग्रन्थ में किया है। हिन्दी में सभी विषयों पर हज़ारों ग्रन्थ प्रस्तुत हैं, किन्तु उनमें से बहुत ही अधिक अप्रकाशित हैं।

सारांश यह कि, हिन्दी एक प्राचीन भाषा है, इसका फैलाव भारत की सभी भाषाओं से अधिक है, यह राष्ट्र-भाषा होने के योग्य है, इसकी वर्णमाला सर्वोत्कृष्ट है इसका साहित्य भाषा, भाव और ग्रन्थबाहुल्य में अद्वितीय है और सैकड़ों प्रकार के ग्रन्थ इसमें भरे पड़े हैं। इसकी काव्यरीति बड़ी ही पुष्ट और सुवर्णित है। भाषा-माधुर्य्य इसका बहुत बड़ा गुण है। यह सब प्रकार के सौन्दर्य्य से पूर्ण है और सरकारी राज्य के आरम्भ से इसमें लोकोपकारी विषय भी आ रहे हैं। बहुत बड़े कवियों का इसमें अच्छा बाहुल्य है और यदि यह एम० ए० तक पढ़ाई जाय, तो भी दस बीस वर्षों के लिए पाठ्य ग्रन्थ नये नये तो हम ही बतला सकते हैं।

यह एक ऐसा भारी विषय है कि इस पर कोई चाहे जितना लिखता हुआ चला जाय। इसमें उदाहरण-बाहुल्य से लेख की चमत्कार-वृद्धि होती, किन्तु समयाभाव से हमने उदाहरण न देकर

और कवियों के विषय में प्रायः कुछ भी न कह कर यहाँ हिन्दी के महत्त्व का दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। यदि उदाहरण देकर उसके गुण दिखलाये जायँ तो एक एक छन्द पर कई कई पृष्ठ लिखने पड़ें। ऐसे दो चार उदाहरण हमने मिश्रबन्धुविनोद की भूमिका में दिखलाये हैं, और यदि अवकाश मिला तो किसी टीका-वाले ग्रन्थ में और लिखेंगे। इस स्थान पर इतना ही कह देना हम यथेष्ट समझते हैं कि जिन्हें उत्कृष्ट काव्य के कुछ उदाहरण देखने हों वे महाशय हिन्दी-नवरत्न के पृष्ठ नं० २६, ४७, ५१, ६१, ६५, (तुलसी) (सूर) १५९, (देव) १७६, १८५, २०५, (विहारी) २२८, २२९, २३२, २३३, २३६ (गँवारी), २३७, २४१, (भूषण) २६३, २६४ २६५, (केशव) २८०, (मतिराम) ३०९, ३११, (चन्द) ३४२ से, हरिश्चन्द्र ३७८ से ४ पृष्ठ का अवलोकन करें।

नवाँ पुष्प ।

वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य * (सं० १९७०)।

हमारे यहाँ काव्य शब्द से केवल पद्य काव्य का आशय नहीं निकलता, जैसा कि अँगरेज़ी शब्द प्वैट्री से है। यहाँ गद्य और पद्य दोनों में काव्य हो सकता है। हिन्दी भाषा की उत्पत्ति संवत् ७०० के लगभग हुई, परन्तु उस समय की रचनायें अब हस्तगत नहीं होतीं। सबसे प्रथम की रचना जो अब मिलती है और जिसे काव्य भी कहना चाहिए, वह महाकवि चन्दबरदाई-कृत पृथ्वीराज-रासो है। इस ग्रन्थ में बहुत कर शृङ्गार तथा युद्ध के वर्णन हैं। इस में वीर और शृङ्गार रसों का अच्छा चमत्कार है।

हम ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में संवत् ७०० से लेकर अब तक का साहित्य-काल आठ विभागों में बाँटा है। संवत् १५६० तक महात्मा सूरदास का रचना-काल नहीं प्रारम्भ हुआ था। अतः इस समय तक पूर्व-प्रारम्भिक काल (७००—१३४३), उत्तर-प्रारम्भिक काल (१३४४—१४४४) और पूर्व-माध्यमिक काल (१४४५—१५६०) माने गये हैं। १५६१ से गोस्वामी तुलसीदास के मरणकाल १६८० तक प्रौढ़-माध्यमिक काल माना

* यह लेख हिंदी-साहित्यसभा लखनऊ के एक अधिवेशन में जो ११ अक्तूबर १९१३ को हुआ था, पढ़ा गया था, और भागलपूर के साहित्य-सम्मेलन में भी इसे पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र ने पढ़ा था।

गया है। इसके पीछे १७९० तक पूर्वालंकृत काल, १८८९ पर्य्यन्त उत्तरालंकृत काल, १९२५ तक परिवर्त्तनकाल और १९२६ से अब तक वर्त्तमान काल चलते हैं। इन समयों के नाम इनकी भाषाओं का भी कुछ दिग्दर्शन कराते हैं। वर्त्तमान समय के गुण-दोष जानने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है, कि इन समयों वाली भाषाओं की दशाओं का संक्षेप में कुछ कथन कर दिया जाय।

पूर्व-प्रारम्भिक समय में भाषा प्राकृत-मिश्रित थी और वीर, शृंगार एवं कथा-विभागों का प्राधान्य रहा, परन्तु ये कथायें विशेषतया धर्म्म-सम्बन्धिनी न थीं। उत्तर-प्रारम्भिक काल में कवियों ने भाषा को प्राकृत से छुटकारा देना चाहा, या यों कहें कि देश से प्राकृत भाषा का साम्राज्य बिल्कुल उठ गया। फिर भी, जैसा कि स्वाभाविक था, कोई एक भाषा प्राकृत के स्थान पर न जम सकी और लोगों ने ब्रज, अवधी, राजपूतानी, खड़ी और पूर्वी भाषाओं में रचना की, परन्तु यह विशेषता ब्रजभाषा को अवश्य मिली कि अपनी अपनी प्रान्तिक भाषाओं के साथ कवियों का उसकी ओर भी कुछ कुछ झुकाव देख पड़ा। इस समय वीर, शृंगार, शान्ति और कथा प्रासंगिक रचनाओं का प्राधान्य रहा और कथा-विभाग ने धर्म्मकथाओं से सम्बन्ध जोड़ा एवं राज-यश-कीर्त्तन से उसका सम्बन्ध शिथिल पड़ा। गद्य काव्य का भी आरम्भ इसी काल में हुआ और महात्मा गोरखनाथ पहले ब्राह्मण कवि थे, जिन्होंने हिन्दी को भी अपनाया। इनके पूर्व वाले कवि-गण ब्रह्म भट्ट थे और कुछ मुसल्मान। पूर्व माध्यमिक-काल में ब्रज, अवधी, पूर्वी और पंजाबी भाषाओं का प्राधान्य रहा और

शान्ति, कथा तथा नाटक-विभागों में रचना विशेष हुई । इस समय में हिन्दी ने अच्छी उन्नति की और उसमें विद्यापति ठाकुर तथा कबीरदास जैसे सुकवि हुए । इस काल में ब्रज-भाषा का बल बढ़ चला और धार्म्मिक विषयों की प्रतिभा देदीप्यमान हुई ।

प्रौढ़-माध्यमिक काल से हिन्दी की उन्नति बहुत ही सन्तोष-दायिनी हुई । इस समय में धार्म्मिक पुनरुत्थान के साथ वैष्णवता का बल बहुत बढ़ा और महात्मा वल्लभाचार्य्य, चैतन्य महाप्रभु, हितहरिवंश, रामानन्द और हरिदास की शिक्षाओं के प्रभाव हिन्दी भाषा के पूर्ण उन्नायक हुए । इस प्रकार वैष्णवता का भाषा-साहित्य से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया और धार्म्मिक रचनाओं ने हिन्दी को भारी प्रभा प्रदान की । वैष्णवता का सम्बन्ध मथुरा और अयोध्या से विशेष था । मथुरावासी कवियों ने अधिकता से भजनों द्वारा ब्रजभाषा में कृष्ण-यश-गान किया और अयोध्या वालों ने कथा-प्रासंगिक ग्रन्थों में अवधी भाषा द्वारा राम-यश गाया । इनमें दोहा-चौपाइयों की विशेषता थी । माथुर कवियों में सूरदास सर्वप्रधान थे और इधर तुलसीदास । परन्तु इन दोनों महात्माओं को छोड़ कर उधर (माथुर) के कवियों और उनकी प्रणाली को अनेकानेक परमोत्कृष्ट कवियों द्वारा बड़ी ही सहायता मिली और अवधी भाषा का प्रताप ब्रजभाषा के सामने बहुत मन्द रहा । माथुर वैष्णवता के साथ कृष्ण-यश-गान की प्रथा ने बहुत भारी बल पाया और साहित्य-प्रथानुयायी अन्य सुकवियों ने उसी का अनुसरण किया, जिस से आगे चल कर शृंगारी विषयों की इतनी भरमार हुई कि अन्य साधारणतया रुचिकर एवं लोकोपकारी

विषयों की कुछ भी सन्तोषकारिणी उन्नति न हो सकी। यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसे विषयों का हमारे यहाँ अभाव है, परन्तु आनुषंगिक दृष्टि से इन की बड़ी ही मन्द दशा है। इस समय के द्वितीयार्द्ध में अकबर के राजत्वकाल में स्थिर की हुई शान्ति ने वैष्णवता के साथ हिन्दी को पूरा लाभ पहुँचाया और उसका अच्छा विकास हुआ।

पूर्वालंकृत काल में भारत में वीरता का अच्छा प्रादुर्भाव हुआ और चिरविमर्द्दित हिन्दुओं ने बल पकड़ कर चिर-स्थापित मुसल्मानी राज्य का ध्वंस किया। ऐसी दशा में वीर काव्य का बाहुल्य स्वाभाविक था और वह हुआ भी, परन्तु दृढ़तापूर्वक संस्थापित शृङ्गार काव्य का बल कुछ भी शिथिल नहीं हुआ। प्रौढ़ माध्यमिक काल में शृङ्गार, शान्ति और कथा-विभागों का बल था, परन्तु इस काल में वीर, शान्ति और रीति-विभागों का प्राधान्य हुआ। उस समय में ही भाषा बहुत अच्छी उन्नति कर चुकी थी, सो इस काल में कवियों ने उसे अनुप्रासादि भाषालंकारों से विभूषित करने का विशेष ध्यान रक्खा, जिस से उसकी छटा और भी बढ़ गई। उस समय ब्रजभाषा के साथ अवधी का भी कुछ कुछ बल था, परन्तु इस अलंकृत काल में ब्रजभाषा का बल और भी बढ़ा और अवधी का घट गया।

उत्तरालंकृत काल में अवधी ने कुछ उन्नति की और खड़ी बोली का भी कुछ कुछ प्रचार हुआ। इस में शृङ्गार और रीति-विभागों का बल बहुत ही बढ़ा, तथा कथा ने भी फिर प्रबलता ग्रहण की। परिवर्त्तन-काल में अवधी भाषा दब गई और ब्रज

भाषा के साथ खड़ी बोली की प्रबलता हुई। इस में शृंगार का बल कुछ घट गया और गद्य ने प्रबलता पाई। इस में प्राचीन और नवीन विचारों में नोंक झोंक सी रही, क्योंकि अब अँगरेज़ी राज्य हो जाने से देश के साथ पाश्चात्य सांसारिक लाभप्रदायक नये विचारों का पदार्पण भाषा-साहित्य में भी हो रहा था। वर्त्तमान काल में गद्य और कथा-विभागों का बहुत बल है, तथा शान्ति, स्फुट और नाटक-विभागों की भी कुछ प्रबलता है। अब लेखकों ने लोकोपकारी विषयों की ओर भी बहुत अच्छा ध्यान दिया है और लाभकारी पुस्तकों के अनुवाद भी हमारे यहाँ बहुतायत से हो रहे हैं। सूक्ष्म रीति से हमारे साहित्य की उत्पत्ति से अद्य पर्य्यन्त यह दशा रही है। इस पर ध्यान देने से आज की एकत्रित विद्वन्मंडली को आगे कहे जाने वाले गुण-दोषों के समझने एवं उनके कारण जानने में विशेष सुभीता होगा।

वर्त्तमान साहित्य प्राचीन काव्य से तीन परम प्रधान बातों में भिन्न है, अर्थात् खड़ी बोली-प्रचार, गद्य-गौरव और लोकोपयोगी-विषय-समादर। ये तीनों बातें वर्त्तमान साहित्य को ख़ूब ही गौरवान्वित करती हैं। इन तीनों भेदों का प्रादुर्भाव हमारी भाषा में अँगरेज़ी राज्य के कारण हुआ है। पूर्वीय और पाश्चात्य देशों में बहुत दिनों से संसारीपने की शिथिलता एवं प्रबलता का मुख्य भेद रहा है। हमारे यहाँ दया और संसार की असारता के भावों का बहुत दिनों से उचित से बहुत अधिक साम्राज्य रहा है। यहाँ दीन को देख कर उसे दान देने की इच्छा ऐसी बलवती रही कि उचितानुचित का विचार दाताओं के ध्यान से

निकल सा गया। उन्होंने प्रायः यह नहीं सोचा कि दीन मनुष्य के दैन्य के कारण उसी के दुर्गुण हैं अथवा कुछ और। इस प्रकार कुपात्रों का दान हमारे यहाँ बहुत प्रचलित होगया, जिससे देश के द्रव्योत्पादक बल को भारी हानि पहुँची। देश के लिए वही दान लाभकारी है, जिससे भविष्य के द्रव्योत्पादक बल की वृद्धि हो। कुपात्रों को इतना बहुतायत से दान मिला कि हमारे यहाँ जीवन-होड़ का उचित बल कभी नहीं हुआ, जिससे धनोपार्ज्जन में कमी हो कर देश में अवनति आगई और जातीय बल खोकर हम दानी लोग भी पतित और नीच हो गये। यही दशा बहुत करके स्याम, चीन, बरमा, लंका, जापान आदि सभी पूर्वीय देशों की हुई। जापान ने तो अपनी दशा सुधार ली, परन्तु अन्य देश अब तक अधःपतित दशा में हैं। भारत में अँगरेज़ी प्रताप से अब समुचित उन्नति हो रही है, यद्यपि हम लोगों की कादरता से उसमें अभी सन्तोषदायिनी शीघ्रता नहीं है।

वर्त्तमान साहित्य-प्रणाली के गुण-दोषों में मुख्यता इसी उपर्युक्त कादरता के अभाव अथवा अस्तित्व पर निर्भर है। लोकोपकारी विषयों को आदर देने वाली नवीन प्रथा का स्थिर हो जानाही एक बहुत बड़ा उत्साहप्रद कार्य्य है। जैसी देशदशा होगी, वैसीही कविता भी स्वभावतः होगी। प्राचीन काल में जीवन-होड़ (struggle for existence) की निर्बलता से लोकोपकारी विषयों की ओर हमारे कविजन का विशेषतया ध्यान नहीं गया, यद्यपि यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि अन्य बातों में उन्होंने साहित्य-गरिमा पूर्णता को पहुँचा दी। इस समय

उन्नायक दल के लेखकों की रचनायें विशेषतया इन्हीं विषयों से भरी रहती हैं, यद्यपि ब्रजभाषा के अनेकानेक कविजन अब तक प्राचीन प्रथा पर ही चलते हैं और उपर्युक्त नवीन भावों का आदर अज्ञान अथवा विचारशून्यता से नहीं करते। इस समय भी प्राचीन प्रथानुयायी कवियों की गणना अधिक है, परन्तु उनकी संख्या दिनों दिन घटती जाती है और नवीन प्रथानुयायी कवियों की गणना अच्छी शीघ्रता से बढ़ रही है। इन बातों पर विचार करने से चित्त परम प्रसन्न होता है। गद्य काव्य से ब्रजभाषा का प्रयोग अब बिल्कुल उठ गया है और पद्य से भी उठता जाता है। गद्योन्नति अधिकतर अवस्थाओं में देशोन्नति की सहगामिनी होती है। गद्य में प्रायः कारबारी विषयों का आधिक्य रहता है, और ऐसे ग्रन्थ तभी लिखे जाते हैं, जब देश में कारबार की प्रचुरता होती है। कारबारी ग्रन्थों के अतिरिक्त दर्शन, रसायन आदि के ग्रन्थ गद्य में पाये जायँगे। ये भी देशोन्नति के साथही चलते हैं। खड़ी बोली की उन्नति ऐक्य के कारण होती है। जब समस्त देश के विविध प्रान्त एक दूसरे से एकपन का भाव बढ़ाते हैं, तभी उन के चित्त में एक भाषा की भी आवश्यकता जान पड़ती है। अधिक दशाओं में सबको पसन्द आनेवाली कोई एक-देशीय भाषा न होगी। सब लोग प्रायः सर्व-व्यापिनी भाषा को ही पसन्द करेंगे। ऐसी भाषा खड़ी बोली ही है। इसी लिए अँगरेज़ी राज्य द्वारा ऐक्य वर्द्धन के साथ ही साथ खड़ी बोली की महिमा बढ़ी और एक-लिपि-विस्तार परिषद ने भारतवर्ष भर में एक लिपि जारी करने का शुभ प्रयत्न किया और कर रहा है।

अँगरेज़ी के नवागत भावों ने जातीयता-वर्द्धन में अच्छी सहायता दी, जिससे मातृभूमि-माहात्म्य, भ्रातृ-प्रेम, ऐक्य आदि विषयों पर साहित्य-रचना होने लगी है, जो वर्त्तमान समय के उन्नत विचारों का अच्छा परिचय देती है। प्राचीन समय में कवियों ने भक्ति, हिन्दूपन आदि पर समय समय पर ध्यान दिया और इन विषयों पर कवितायें भी प्रचुरता से बनीं, विशेषतया भक्ति-पक्ष पर। फिर भी उस समय जातीयता के अभाव ने भारतवर्ष भर को एक समझने वाले विचारों को नहीं उठने दिया और इसलिए देशहित-सम्बन्धी साहित्य का चलन बिलकुल नहीं हुआ। वर्त्तमान गद्य-महिमा ने लोकोपयोगी विषयों की अच्छी उन्नति की है और दिनों दिन ऐसे ग्रन्थ बनते एवं अनुवादित होते जाते हैं। इन कारणों से केवल हिन्दी पढ़े हुए पाठकों को भी उन्नत विषयों के जानने का सुभीता होगया है। कभी कभी लेखक-गण यह बात भूल से जाते हैं और ग्रन्थ के बीच में अँगरेज़ी शब्दों एवं वाक्यों को बिना अनुवाद किये भी ऐसा लिख देते हैं, मानों सभी लोग अँगरेज़ी जानते हैं। ऐसी दशाओं में अँगरेज़ी कोष्ठक (bracket) या पृष्ठपाद की टिप्पणी (footnote) में लिखना अच्छा है। आज कल लेखक-बाहुल्य से उपयोगी ग्रन्थ-बाहुल्य की भी अच्छी वृद्धि हुई है, जिससे भाषा-ग्रन्थभाण्डार-भरण बहुत उत्तमता से हो रहा है और हुआ भी है। इन बातों से गत तीस पैंतीस वर्षों में विविध उपयोगी विषयों का भाषा-भाण्डार इतना भरा, जितना कि इससे तिगुने समय तक किसी काल में नहीं हुआ। प्रायः २० वर्षों से समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं की भी

अच्छो वृद्धि हुई है । इनसे केवल हिन्दी जानने वालों को विविध भाँति के समाचारों एवं विचारों के जानने का अच्छा सुभीता मिला है । इस में एक भारी दोष भी है कि अधिकतर पत्रों के सम्पादक प्राचीन विचाराश्रयी और बहुधा पूरे पुरानी लकीर के फ़क़ीर होते हैं । इन लोगों के कारण बहुतेरे लोगों के पुराने अशुद्ध विचार हटने के स्थान पर और भी दृढ़ हो जाते हैं । यह दोष पत्र-प्रथा का नहीं है, वरन आज कल के हमारे मानसिक अधःपतन को प्रकट करता है । पत्रों के मालिकों को सम्पादक नियत करने में बहुत सोच विचार करना चाहिए, क्योंकि उनकी थोड़ी सी भूल से हज़ारों भाइयों के विचार गन्दे हो सकते हैं । संवत् १९५७ में हमने साहित्य-प्रणाली के तत्कालीन दोषों पर विचार करने में समस्यापूर्ति के पत्रों की वृद्धि पर खेद प्रकट किया था । हर्ष का विषय है कि अब ऐसे पत्रों का बल बिल्कुल टूट सा गया है ।

वर्त्तमान काल की गद्य-प्रणाली का सूत्रपात लल्लूलाल एवं सदल मिश्र के समय संवत् १८६० में हुआ था और उसकी वृद्धि सितारे हिन्द राजा शिवप्रसाद ने की । येही महाशय (सं० १९११) प्रथम गद्य-लेखक थे कि जिन्होंने शुद्ध खड़ी बोली का गद्य में प्रयोग किया और ब्रजभाषा को बिल्कुल छोड़ दिया । इनके पीछे राजा लक्ष्मणसिंह तथा स्वामी दयानन्द ने श्रेष्ठतर गद्य में रचना की । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय से गद्य ने बहुत ही अच्छो उन्नति की । आज कल के अच्छे अच्छे गद्यलेखक उस समय से भी श्रेष्ठतर भाषा का प्रयोग

करते हैं। भाषा ने उन्नति करते करते अब अच्छा रूप ग्रहण कर लिया है, परन्तु फिर भी एक दोष यह है कि अब तक उन्नत भाषा लिखने में लोग संस्कृत भाषा के कठिन शब्द लिखना ही अलम् समझते हैं, और ऐसे ग्रन्थ लिखने का प्रयत्न नहीं करते कि जैसे अँगरेज़ी के बड़े बड़े लेखक लिखते हैं और बहुत दिनों से लिखते आये हैं। अब तक गद्य में दर्शन, रसायन, विज्ञान, कारबार आदि के ग्रन्थ विशेषता से बने हैं, परन्तु ऊँचे साहित्य-सम्बन्धी गद्य ग्रन्थ बहुत कम देख पड़ते हैं। गद्य में अलङ्कारों, रसों, प्रबन्ध-ध्वनियों तथा अन्यान्य काव्यांगों को लाकर उसे उत्कृष्ट एवं कठिन बनाने का अभी पूरा क्या प्रायः कुछ भी प्रयत्न नहीं हुआ है। आशा है कि इस ओर हमारे लेखक-गण ध्यान देंगे। भाषा गद्य की वास्तविक अवस्था अभी केवल ६० वर्ष की है। इससे उपर्युक्त प्रकार की ऊँची लेखन-शैली की ऊनता अभी उत्साह-विनाशिनी नहीं है, परन्तु लेखकों को इस ओर अब ध्यान अवश्य देना चाहिए।

अब तक हमारे लेखकों ने भाषा के गूढ़ीकरण में संस्कृताश्रय लेना ही आवश्यक जान रक्खा है, परन्तु इस बात पर सदैव ध्यान रखना चाहिए कि अन्य भाषाश्रय किसी भाषा को बड़ी नहीं बना सकता। संस्कृत और भाषा में बहुत दिनों से सम्बन्ध अवश्य चला आता है, परन्तु इसकी वृद्धि भाषा-गौरव-वर्द्धिनी कदापि नहीं हो सकती। जैसे मनुष्यों के लिए आत्मनिर्भरता एक आवश्यक गुण है, वैसे ही वह भाषाओं के लिए भी है। किन्तु आज कल के लेखक इस अनुपम गुण को

भूल कर भाषा को संस्कृत की सेवकिनी बनाना चाहते हैं। शुद्ध भाषा के लिए व्याकरण की आवश्यकता है, परन्तु व्याकरण भाषा का अनुगामी होना चाहिए, न कि भाषा व्याकरण की। जिस भाषा का व्याकरण जैसा ही कठिन और दुर्बोध होगा, उस भाषा का वैसी ही शीघ्रता से पतन होगा; इसी कारण से संस्कृत आर्य्यों की भी मातृभाषा न रह सकी और केवल पुस्तकों में उसका प्रचार रह गया। यही दशा यथासमय प्राकृत की हुई। सर्वसाधारण बिना कुछ विशेषतया पढ़े लिखे दुर्ज्ञेय व्याकरणों के नियमों को हृदयंगम नहीं कर सकते। इसी लिए कठिन व्याकरणों के नियम स्थिर नहीं रह सकते और यदि बढ़ते बढ़ते वे भाषा के अंग हो जाते हैं तो उसका विनाश ही कर देते हैं। आज कल अनेक लेखकों में संस्कृत के नियमों के यथा-सम्भव भाषा में लाने की रुचि बढ़ती देख पड़ती है। संस्कृत में लिङ्ग-भेद ऐसा कठिन है कि अनेक स्थानों पर बिना कोष देखे उसका ज्ञान ही दुस्तर हो जाता है। इन बातों का भाषा में लाना अनुचित है।

हमारी भाषा की श्रुतिमधुरता उसकी एक प्रधान महिमा है। संस्कृत में मिलित वर्णों के आधिक्य से आचार्य्यों ने श्रुतिकटु शब्द बहुत कम माने हैं, परन्तु हमारी भाषा में प्राचीन काल से आचार्य्यों एवं कवियों ने मिलित वर्णों को छन्दों में बहुत कम आने दिया है और बहुत से ऐसे शब्दों को श्रुतिकटु माना है। इसी कारण प्राचीन रचनाओं में कर्कशता का ऐसा अभाव है कि अन्य-भाषा-प्रेमी लोग यदि हमारी भाषा की निन्दा

तक करते हैं, तो भी उसके माधुर्य्य की प्रशंसा अवश्य कर देते हैं। खड़ी बोली के कवियों ने आज कल इस अनुपम गुण को प्रायः बिल्कुल ही विस्मरण कर दिया है। एक तो खड़ी बोली में बिना ख़ास प्रयत्न के श्रुतिकटु आ ही जाता है, और दूसरे ये लोग संस्कृत शब्दानुरागी होने से और भी मिलित वर्णों की भरमार रखते हैं, जिससे खड़ी बोली के छन्दों से श्रुतिमाधुर्य्य का लोप हुआ जाता है।

इस एवं अन्य कारणों से आजकल खड़ी बोली में प्रायः शुष्क-काव्य पाया जाता है और नीरसता का ऐसा समावेश है कि दश पृष्ठों की भी कविता साद्यन्त पढ़ जाना बड़े धैर्य्यवान् व्यक्ति का काम है। वर्त्तमान कविगण प्रायः प्राचीन आचार्य्यों के ग्रन्थ अध्ययन किये बिना साहित्य रचना करने लगते हैं और कुछ लोगों में अहंकार की मात्रा ऐसी बढ़ी हुई है कि वे अपनी शिथिलातिशिथिल रचनाओं के आगे भी नामी आचार्य्यों तक के ग्रन्थों को पुराने, समय-प्रतिकूल और भदेसिल समझते हैं। इन कारणों से वर्त्तमान खड़ी बोली के छन्दों में उच्छृंखलता की मात्रा बहुत आ गई है। खड़ी बोली के कविगण दीर्घान्त छन्दों में भी ह्रस्व शब्द से काम प्रायः लेते हैं और यतिभङ्ग दूषण से भी नहीं बचते। एक तो खड़ी बोली कविता मात्रा में कम है और दूसरे कवियों की उच्छृंखलता से ऐसी नीरस तथा शिथिल बनती है कि प्राचीन प्रथानुयायी उसको बिरहा, पँवारा आदि के ही समान बतला कर उसका उपहास करते हैं। आज-कल की पद्य रचनाओं में शाखाचक्रमण तथा सुप्रबन्धाभाव के

बड़े ही विकट दूषण आ जाते हैं। शाखाचंक्रमण कपियों का एक शाखा से दूसरी शाखाओं पर बार बार कूदने के समान रचना करने को कहते हैं। किसी भाव को लेकर उसे कुछ दूर चलाना चाहिए और उसके सम्बन्धी भावों एवं उपभावों को उसके समीप स्थान देना चाहिए, जिससे रस की पूर्ति हो, न यह कि एक भाव का कथन मात्र करके दूसरे पर कूद जाना। यदि सूर्य्य की किरणों का वर्णन उठाइए तो उनकी मालाओं, संख्या-बाहुल्य, तेज, नेत्रों के चकाचौंध करने का बल, कमल खिलाना, संसार में उष्णता के ह्रास या वृद्धि से ऋतुओं का बदलना, फलों का पकाना, रसों का उत्पन्न करना, संसार की जीवन-वृद्धि आदि अनेकानेक गुणों में से कुछ भी कहे बिना दूसरे भाव पर चट से कूद जाना साहित्य-शक्ति-हीनता का ही प्रमाण देगा। सुप्रबन्ध गुण वर्णन-पूर्णता ही में आता है। जिस कथन को उठावें उसका सांगोपांग कथन कविता-शक्ति का एक अच्छा प्रदर्शक है। यदि किसी में बहुत ऊँचे ऊँचे विचार लाने का बल न भी हो तो केवल सुप्रबन्ध ही से वह सुकवि माना जायगा। आज कल बहुधा लोग न ऊँचे विचार ही लाते हैं और न सुप्रबंध की ओर ही कुछ ध्यान देते हैं। यदि मतिराम की रचना देखी जावे तो विदित होगा कि इस कविचूड़ामणि में कितना अधिक भाव पुष्टीकरण का गुण वर्त्तमान है। इसी कारण से प्राचीन प्रथानुयायी कविगण शिष्यों को रसराज ग्रन्थ सब से पहले पढ़ाते हैं। आज कल सुप्रबन्ध का ऐसा भारी निरादर है कि बहुतेरे विज्ञ लोग भी मतिराम आदि महाकवियों को

साधारण कवि कहने में नहीं हिचकते। सुप्रबन्ध का अभाव एवं शाखाचंक्रमण का समादर अधिकतर वर्त्तमान नये प्रकार के कवियों की रचनाओं को कलङ्कित कर रहा है। इसका मुख्य कारण आचार्य्यों का निरादर एवं साहित्य-रीति की पठन-पाठन-प्रणाली का तिरस्कार है। लोगों को भाषा-साहित्य के विषय में कुछ जान कर तब छन्दरचना आरम्भ करनी चाहिए। बहुत लोग समझते हैं कि संस्कृत-काव्य-प्रणाली जानने से ही वे भाषा-साहित्य के पण्डित कहलाने के योग्य हो जाते हैं। यह भारी भूल है। यदि हमारे आचार्य्यों के रीति-ग्रन्थों का अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि उन्होंने कितना श्रम एवं चातुर्य्य का फल अपनी रीति-रचनाओं में रक्खा है और संस्कृत-रीतियों से भाषा में कितना भेद है?

आज कल पद्य-रचना की बड़ी हीनता है और नवीन विचारों के पाठकों तथा सम्पादकों में बड़ा ही विकराल पद्य-निरादर है। हमीं ने दो तीन घंटों में जो गद्य लेख बिना ख़ास परिश्रम के लिख डाले, उन्हें तो सम्पादकों ने बड़े चाव से प्रकाशित किया और दस दस दिन के प्रयत्नों के फलस्वरूप छन्दों को सम्पादकों ने शील संकोच से काट छाँट कर छापा, यद्यपि उन्होंने गद्य में कहीं एक मात्रा भी नहीं घटाई बढ़ाई। इस पद्य-निरादर से भी खड़ी बोली की महिमा पद्य-काव्य में घट रही है अथवा होने नहीं पाती है। हमारे यहां प्राचीन कवियों ने अधिकतर दशाओं में धार्मिक कथाओं का ही कहना उचित माना। फल यह हुआ कि मेवाड़, जोधपुर, बूँदी, सिरोही, बुन्देलखंड, रीवाँ, दक्षिण आदि में

सैकड़ों महाराज एवं महापुरुष हो गये हैं जिनके गुण-कथन से कवि-शक्ति-स्फुरण एवं जातीयतावर्द्धन हो सकता है, परन्तु इनके वर्णन न प्राचीन प्रथा के कवियों ने किये और न नवीन प्रणाली के लोग करते हैं। हमारे यहाँ पद्य-संबन्धी विषय-बाहुल्य और उसका अनुपयोग देखकर बड़ा शोक होता है। आज कल गद्य-संबन्धी साधारण से साधारण विषयों पर भी लेखकों का ध्यान रहता है, यहाँ तक कि सात आठ सौ गद्य-लेखक आज वर्त्तमान हैं, परन्तु पद्य-लेखकों की संख्या और उनके द्वारा सद्विषयों का सदुपयोग दोनों बड़ी हीनावस्था में हैं। हमारे यहाँ महाकाव्यों का प्रायः अभाव सा है। महाकाव्य ग्रन्थ का लक्षण संस्कृत के ग्रन्थों में दिया है। उसमें सात से अधिक अध्याय हों, किसी महापुरुष का वर्णन और प्रसंगवशातः सागर, नदी, पहाड़, जंगल, प्रातःकाल, सायंकाल आदि प्राकृतिक सुघराइयों के कथन होने चाहिए। ऐसे ग्रन्थ सभी भाषाओं के शृंगार होते हैं। प्राचीन कवियों ने ऐसे ग्रन्थ कुछ कुछ बनाये भी परन्तु वर्त्तमान समय में लोगों का ध्यान इस ओर नहीं है।

प्राचीन काल में तुकान्तहीन छन्दों की रचना बिलकुल नहीं हुई, परन्तु वर्त्तमान समय में इस ओर रुचि देख पड़ती है। ऐसे छन्दों की रचना बहुत लाभदायक और गौरव की बात है। आशा है कि भविष्य में इस विषय की उन्नति होगी।

हमारे प्राचीन प्रथानुयायी कविगण पुराने ढर्रे पर अब भी चले जा रहे हैं। उनमें अधिकांश लोग स्फुट छन्द, शृंगारकाव्य और शृङ्गारपूर्ण षट्ऋतु एवं रीति-ग्रन्थों की रचना अब तक

उचित समझते हैं, विशेष कर नायिका-भेद की। ऐसी रचनायें उचित से बहुत अधिक हो गई हैं और अब इनकी बिल्कुल आवश्यकता नहीं है।

हमारे यहाँ नाटक-विभाग ने भी अब तक समुचित क्या कुछ भी उन्नति नहीं की है। भारतेन्दुजी ने इसको जन्म सा दिया, परन्तु अभी तक इस की कुछ भी उन्नति नहीं हुई है। आशा है कि कविजन इस ओर विशेषतया ध्यान देंगे, ख़ास कर इस कारण से कि नाटकों के उपयोगी विषय और अवर्णित कथायें प्रचुरता से प्रस्तुत हैं। उपन्यास-विभाग की हमारी भाषा में बड़ी ही कमी और साथ ही साथ भरमार है। असम्भव कथायें और अशिक्षाप्रद असत्य घटनायें तो हमारे यहाँ सैकड़ों उपन्यासों में कही गई हैं, परन्तु पाठ-योग्य उचित उपन्यासों की नितान्त ऊनता है। इस ओर हमारे उपन्यास-लेखकों को अवश्य ध्यान देना चाहिए। हमारे हज़ारों महापुरुषों के चरित्र गाये जाने को पड़े हैं। उन पर ऐतिहासिक उपन्यासों के लिखने से वर्त्तमान असम्भव कथाओं का कथन कहीं निकृष्टतर है। फिर प्रत्येक उपन्यास का कोई मुख्य भाव होना चाहिए। उसे हमारे किसी प्रधान अवगुण के हटाने अथवा गुण-प्राप्ति की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना चाहिए। हमारे यहाँ समालोचना-विभाग की भी समुचित उन्नति होनी चाहिए। आजकल की बहुतेरी समालोचनायें ईर्ष्याद्वेषजन्य होती हैं। समालोचना लिखने के लिये आलोच्य विषय से सहृदयता आवश्यक है। इस गुण और अच्छे परिश्रम के अभाव में आलोचनायें ज्योतिःप्रदान के स्थान पर अन्धकार-वर्द्धन से भी बुरा काम करती

हैं, क्योंकि वे कुछ न जानने वाले को मिथ्या ज्ञान प्रदान करती हैं । कोई अज्ञ भी मिथ्याज्ञानाभिमानी से कहीं श्रेष्ठतर है । समालोचना-ग्रन्थ भी अब तक बहुत ही कम बने हैं ।

आज कल के गद्य-लेखकों के सब से बुरे अवगुणों में से चोरी, सीनेज़ोरी, परावलम्बन, विचार-परतन्त्रता, अनात्मनिर्भरता आदि हैं । प्राचीन प्रथा के लेखक पुरानी लकीर के फ़क़ीर हो रहे हैं और नवीन प्रणाली वाले पाश्चात्य नवीन और प्राचीन लेखकों के दास । लेखकों में बहुत अधिक लोग यह भूल गये हैं कि उनके सिरों में भी एक एक दिमाग़ है । प्राचीन-प्रथानुयायी लोग सभी प्राचीन बातों को सिद्ध किया चाहते हैं और नवीन प्रणाली के अवलम्बी प्रायः सभी प्राचीन मतों और लेखकों को प्राचीन अस्थि-पिंजर (old fossils) समझते और पश्चिम के सम्मुख अपने देश के पूर्वजों एवं भाइयों को नितान्त मूर्ख मानते हैं । ये दोनों बातें बिल्कुल अशुद्ध हैं, ऐसा प्रकट है और सभी मानते हैं, यहाँ तक कि उपर्युक्त प्रकार के लेखक भी वचन द्वारा यही कहते हैं और समझते हैं कि वे इसी कथनानुसार चलते भी हैं, परन्तु वास्तव में उनके आचरण उनको उपर्युक्त दो विभागों में से एक में डालते हैं । वे अपने आप को भूले हुए हैं और यहाँ तक भूले हुए हैं कि पराये विचारों एवं सिद्धान्तों को ख़ास अपने ही न केवल कहने, वरन, समझने भी लगे हैं । इस प्रचंड मानसिक रोग (आदत) का निराकरण तभी हो सकता है जब मनुष्य अपने प्रत्येक मत के कारणों पर सदैव विचार रक्खे और समझता रहे कि उन कारणों में से उसके कितने

हैं । यदि कोई शेक्सपियर को तुलसीदास से भी श्रेष्ठतर बतलावे, तो उसे समझना चाहिए कि उसमें उन दोनों के गुण-दोष समझने की पात्रता है या नहीं और उसने उनके समझने का पूरा श्रम भी किया है या नहीं ? यदि इन दोनों प्रश्नों में से एक का भी उत्तर नहीं है, तो उसे उपर्युक्त तुलनाजन्य ज्ञान को अपना मत न समझ कर पराया समझना चाहिए ।

हमारे यहाँ गद्य का प्रचार थोड़े ही दिनों से हुआ है, अतः अभी अनुवादों का बनना स्वाभाविक है । फिर भी अति सर्वत्र वर्जयेत् पर सदैव ध्यान रखना चाहिए ।

हमारे बहुतेरे लेखक अनुवाद अथवा अनुकरण के अतिरिक्त कुछ लिखते ही नहीं और जिस ग्रन्थ को स्वतन्त्र कहते हैं प्रायः उसमें भी औरों से चोरी या सीनेज़ोरी निकल आती है ।

सारांश यह कि आज कल गद्य की उन्नति हुई है परन्तु समुचित नहीं, नाटक-विभाग अभी हीनावस्था में है परन्तु बढ़ता देख पड़ता है, पद्य की अवनति है और लेखकों में प्राचीन भारतीय अथवा नवीन पाश्चात्य-प्रणालियों के अनुसरण में अन्ध-परम्परानुकरण का भारी दोष है ।

—:०:—

दशवाँ पुष्प।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के बीसवें वार्षिक अधिवेशन में सभापति का भाषण* (सं० १९७०)।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का बीसवाँ वार्षिक अधिवेशन सोमवार ता० ४ अगस्त सन् १९१३ को हुआ था। इसका कार्य-विवरण अन्यत्र प्रकाशित है। सभापति पंडित श्यामविहारी मिश्र एम० ए० इस अवसर पर उपस्थित न हो सके। परन्तु उन्होंने सभा के गत २० वर्षों के कार्य पर अपना भाषण लिख भेजा था जो उस दिन सभा में पढ़ा गया और अब यहाँ प्रकाशित किया जाता है।—

प्रिय महाशयो!

बड़े आनन्द का विषय है कि आज हम लोग काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का बीसवाँ जन्मोत्सव मनाने को एकत्रित हुए हैं। सभा ने अभी थोड़े ही दिन हुए एक मंतव्य पास किया है कि उसका गत वर्ष का सभापति वार्षिक अधिवेशन के समय आप लोगों की सेवा में कुछ अवश्य कहे। उसी मंतव्य के आधार पर

---

*यह लेख पं० श्यामविहारी मिश्र की ओर से सभा के वार्षिकोत्सव में पढ़ा गया था।

मैं आप महाशयों का कुछ अमूल्य समय लेने का साहस करता हूँ। ऐसे अवसर पर ऐसा करना किसी कृतविद्य और प्रसिद्ध हिन्दी-तत्त्वज्ञ का काम था और यदि ईश्वर की कृपा से इस दिन गोलोक-वासी पंडितवर मोहनलाल विष्णुलालजी पंड्या वर्तमान होते, तो शायद आप लोग उनका महत्त्व-पूर्ण व्याख्यान सुन कर प्रसन्न होते, क्योंकि गत वार्षिक अधिवेशन में उन्हीं महानुभावजी का चुनाव सभापति के उच्च पद के लिए हुआ था। पर काल की कराल गति से थोड़े ही दिनों पीछे उनका वैकुंठवास हो गया और सभा के शेष अधिकारियों ने मुझ ऐसे अनभिज्ञ को उक्त पद ग्रहण करने पर बाधित किया। मैं अपनी अयोग्यता को भली भाँति जानता था, और वह उक्त अधिकारियों पर भी अवश्य ही विदित थी क्योंकि इसी कारण उन्होंने मुझे आग्रहपूर्वक लिख भेजा कि तुम्हारी इस मामले में एक भी न सुनी जायगी और तुम्हें विवश यह पद स्वीकार ही करना पड़ेगा। अतः मुझे वह आज्ञा शिरोधार्य ही करनी पड़ी। अब आप महाशयों से यही प्रार्थना है कि मेरी भूलों और त्रुटियों को बिसार कर जो दो चार बातें मैं आप लोगों के सम्मुख निवेदन करता हूँ उन्हें सुन लेने की कृपा करें।

इस सभा का जन्म सन् १८९३ के जनवरी अथवा फ़रवरी मास में "कालेज के कतिपय उत्साही विद्यार्थियों" द्वारा हुआ था। "कालेज" से तात्पर्य क्वींस कालेज, बनारस, से है क्योंकि सेंट्रल हिन्दूकालेज का उस समय जन्म तक न हुआ था। उन "उत्साही विद्यार्थियों" में से केवल तीन महाशय ऐसे हैं कि जो आज दिन

तक सभा के सभासद बने हुए हैं और उसकी यथासाध्य सेवा करते जाते हैं। अवश्य ही आप लोगों को उनके शुभ नाम जानने की उत्कंठा होगी, अतः सुनिए। उनमें सबसे पहले सभा के स्तम्भस्वरूप मान्यवर बाबू श्यामसुन्दरदासजी बी० ए० हैं जो सदा ही इस सभा के मानो प्राण बने रहे हैं। इन्होंने सभा का जितना उपकार किया है उतना किसी से अब तक नहीं हो सका है, ऐसा कहने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं होता। सभा ही क्यों वरन मुख्यांश में उसके द्वारा बाबू साहब ने जो सेवा हिन्दी-भाषा एवं नागराक्षरों की कर दिखाई है उतनी शायद भारतेन्दु जी के पीछे दो एक महानुभावों को छोड़ और किसी से भी न बन पड़ी होगी। इन्हीं "उत्साही विद्यार्थियों" में से दूसरे पं० रामनारायणजी मिश्र, बी० ए० हैं जो सभा का सदा से बराबर उपकार और उसकी सेवा करते आये हैं और अब तक कर रहे हैं। तीसरे महाशय का नाम बा० शिवकुमारसिंह है और इनकी हिन्दी-सेवा और इनका उत्साह परम प्रशंसनीय है। इस त्रिमूर्ति का हिन्दी और उसके रसिकों पर भारी ऋण है और हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि इनके नाम हिन्दी के इतिहास में चिर काल तक अचल रहेंगे। ईश्वर इन्हें चिरायु और सुयशी करे।

यद्यपि सभा का वास्तविक जन्म सन् १८९३ के प्रारम्भ में ही हो चुका था, तथापि इसके नियमादि बनने और नियत रूप में हो जाने के कारण इसका जन्म-दिन १६ जुलाई १८९३ माना गया है। कुछ दिनों तक यह इधर से उधर मँगनी के मकानों में होती रही। इसका पहिला अधिवेशन नार्मल स्कूल बनारस में हुआ था।

फिर किराए के मकानों में कुछ काल गुज़र किया गया और अंत को १९०१—०२ में जब कि भाग्यवश मैं भी काशी में ही प्रायः डेढ़ साल तक रहा था, सभा के स्थायी कोष के लिए चन्दा होने लगा और प्रायः तभी से सभा के इस विशाल भवन के बनने का सूत्रपात हुआ कि जिसे आप लोग इस समय सुशोभित कर रहे हैं। तारीख़ १८ फ़रवरी १९०४ को इसे हमारे भूतपूर्व छोटे लाट सर जेम्स ला टूश महोदय ने बड़े समारोह के साथ खोला था और तब से इसमें कई प्रतिभाशाली महानुभाव पदार्पण कर चुके हैं, जैसे कि सर जान हिवेट, श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर, सर कृष्ण गोविन्द गुप्त इत्यादि इत्यादि। इस सभा के संरक्षकों में श्रीमान् महाराजा साहब सिंधिया (ग्वालियर), श्रीमान् महाराजा साहब रीवाँ, श्रीमान् महाराजा गैकवाड़ बहादुर (बरोदा), और श्रीमान् महाराजा साहब बीकानेर हैं तथा हाल में निश्चय किया गया है कि तीन हिन्दी के अन्य प्रेमी महाराज इसके संरक्षकों में सम्मिलित किये जायँ अर्थात् श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर, अलवर, व बनारस। इन बातों से सभा का महत्त्व प्रकट होता है, क्योंकि साधारण सभा-सुसाइटियों में न तो ऐसे भव्य पुरुष ही पदार्पण कर सकते हैं और न ऐसे भारी नृपतिगण उनके संरक्षक होना स्वीकार करेंगे।

अब सभा को स्थापित हुए बीस वर्ष पूरे हो चुके हैं, अतः उचित प्रतीत होता है कि उसके इतने दिनों के संक्षिप्त हाल का आप महाशयों को थोड़े ही में दिग्दर्शन कराने का कुछ प्रयत्न किया जाय। जैसे बीस वर्ष का लड़का युवा पुरुष कहलाने का

अधिकारी हो जाता है, उसी प्रकार जो सभा इतने दिनों सफलता-पूर्वक अपना काम चला कर आगे को और भी अधिक उत्साह के साथ बढ़ रही है, उसे अवश्यही आप लोग समुचित प्रोत्साहन और सहायता देंगे कि जिसमें उसे अपनी मातृभाषा की सेवा जैसे पवित्र कर्तव्य के पालन करने में विशेष कृतकार्यता हो सके।

१—इस सभा के सभासदों की संख्या निरंतर बढ़ती ही आई है और इस बीस वर्ष के बृहद् समय में ऐसा एक साल भी न हुआ कि पहले की अपेक्षा उक्त संख्या में न्यूनता हुई हो। केवल यही नहीं, वरन् सभासदों की गणना प्रत्येक वर्ष बढ़ती ही गई है। प्रथम वर्ष उनकी संख्या ८२ थी और फिर क्रम से प्रति वर्ष १४५, १४७, २०१, २२२, २४७, २७०, २९२, ३९१, ४५८, ५७६, ६६२, ६७७, ६८१, ७०४, ७४२, ७९६, ९९०, १३२२, और १३४१ रही है। इससे स्पष्ट है कि हर साल कुछ न कुछ वृद्धि अवश्य हुई और किसी किसी वर्ष में तो बड़ी ही संतोष-जनक बढ़ती हुई है, जैसे नवें, ग्यारहवें, १८ वें और विशेष करके १९ वें साल, अर्थात् सन् १९०१—०२, १९०३—०४, १९१०—११ और १९११—१२ में। कुल मिला कर २० वर्ष में ८२ से १३४१ सभासद हो जाना सभा के लिए अभिमान और गौरव की बात है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ महाशय केवल चन्दा न देने के कारण समय समय पर इस्तीफ़े दिया करते हैं, पर समझने की बात है कि बिना आय के सभा अपने उद्देश्यों का पालन कैसे कर सकती है? ऐसी दशा में उसके कर्मचारियों को चन्दा के लिए तक़ाज़ा अवश्यही करना पड़ेगा और यदि इसीसे चिढ़ कर कोई इस्तीफ़ा देने दौड़े तो यही कहना

पड़ेगा कि ऐसे महाशयों से सभा का जितना जल्द पिंड छूट जाय उतनाही अच्छा । कभी कभी कोई कोई महाशय मतभेद अथवा अन्य कारणों से भी ऐसा करते हैं, पर इसमें भी सभा विवश है क्योंकि उसकी सारी कार्रवाई अधिक सम्मति पर ही चलती और चल सकती है । यदि आप सभा में न तो कभी आने का कष्ट उठावें और न वार्षिक अधिवेशन तक के लिए किसी मित्र के नाम अपना प्रतिनिधि-पत्र ही भेज कर उसके द्वारा सभा पर अपनी सम्मति प्रकट करने की कृपा करें और फिर भी अपनी इच्छा के प्रतिकूल सभा के किसी सर्वसम्मति अथवा अधिक सम्मति द्वारा निर्धारित कार्य्य से रुष्ट होकर इस्तीफ़ा देने दौड़ें, तो इसमें सभा या किसी व्यक्ति-विशेष का क्या दोष है ? यदि आप मुझे क्षमा करें तो मैं यही कहने का साहस करूँगा कि इसमें आपही के निरुत्साह और अनुचित क्रोध का दोष होगा । कुछ महाशय ऐसे अहंकारी और क्रोधी होते हैं कि यदि वे एक ओर हों और सारी दुनिया दूसरी ओर हो, तो भी डेढ़ अक़्ल वाली कहावत के अनुसार उन्हीं की बात अवश्य ही ठीक मानी जानी चाहिए, नहीं तो वे बिना बिगड़े न रहेंगे । लिदान ऐसी दशाओं में सभा कुछ भी नहीं कर सकती । वह तो यही चाहती है कि उसके सदस्यों की सभी बातें चलें, पर अधिक सम्मति पर चलना उसे अनिवार्य है । आनन्द का विषय है कि सब प्रकार के इस्तीफ़ों और कालगति से अनेक सभासदों के न रहने पर भी उनकी संख्या बराबर बढ़ती ही चली जाती है और आशा है कि दिन दिन उसकी उत्तरोत्तर उन्नति ही होती जायगी । परन्तु इन सब बातों पर भी यह स्मरण रखना

चाहिए कि हिन्दी जाननेवालें की संख्या हज़ारों लाखों पर नहीं वरन करोड़ों पर है और उस हिसाब से हिन्दी की इस मुख्य सभा के सदस्यों की संख्या क्या दस बीस हज़ार भी न होनी चाहिए? यदि प्रत्येक सभासद् यह प्रतिज्ञा करले कि जैसे बनेगा हम सभा के लिए दश नये सदस्य ढूँढ़ निकालेंगे, तो साल ही दो साल के भीतर उनकी संख्या वास्तव में बहुत अच्छी हो सकती है और वैसी दशा में सभा भी वे काम करके दिखला सकती है कि जिनसे हिन्दी का आसन सचमुच ऊँचा हो जाय।

२—सभा के आय-व्यय का हिसाब देखने से वैसा संतोष नहीं होता जैसा कि उसके सभासदों के व्योरे से। प्रथम दो वर्षों का हिसाब रिपोर्टों में नहीं लिखा है और न यह बात ऐसे महत्त्व की है कि उसकी जाँच परताल इस समय की ही जाय, पर इतना विदित है कि दूसरे वर्ष के अंत में प्रायः २६४) की बचत रही थी। उसके पीछे क्रम से प्रति वर्ष के आय-व्यय का व्योरा यों है—

सन् १८९५—९६	आय प्रायः	६८२)	व व्यय प्रायः	६८३)
१८९६—९७	,,	२७५)	,,	४३३)
१८९७—९८	,,	८९५)	,,	५९८)
१८९८—९९	,,	६५२)	,,	६९२)
१८९९—१९००	,,	१६२९)	,,	१२७३)
१९००—०१	,,	२५३२)	,,	२१३९)
१९०१—०२	,,	११२६२) ×	,,	३७३९)
१९०२—०३	,,	७४४०) ×	,,	१३५०५) ×
१९०३—०४	,,	११९७०) ×	,,	१३८२८) ×

१९०४—०५	,,	१०८०६) ×	,,	१२९४८) ×
१९०५—०६	,,	७८११)	,,	८१४१)
१९०६—०७	,,	७८२४)	,,	८६५६)
१९०७—०८	,,	७०८१)	,,	७२२६)
१९०८—०९	,,	१४३६९) ×	,,	९९०६)
१९०९—१०	,,	१०४३५)	,,	९७६६)
१९१०—११	,,	९८१५)	,,	९४८१)
१९११—१२	,,	९७२२)	,,	९९२०)
१९१२—१३	,,	१६४६२) ×	,,	१५९५७) ×

इस व्योरे से विदित होगा कि सन् १९०१—०२ से सभा की आय में अच्छी उन्नति होने लगी और जिन वर्षों में विशेष आय हुई अथवा अधिक व्यय हुआ उन अंकों के सामने गुण का चिह्न (×) लगा दिया गया है। पहले तो स्थायी कोष स्थापित होने के कारण आय में तथा सभा-भवन के बनने से व्यय में विशेषता हुई और १९०८-०९ से हिन्दीकोश (शब्दसागर) के सम्बन्ध में विशेष चन्दा एवं व्यय होना प्रारम्भ हुआ। हर्ष का विषय है कि भवन कई वर्ष हुए पूरा हो गया और शब्दसागर का काम उत्तमता से चल रहा है। सबसे अधिक संतोष की बात यह है कि इस वर्ष बाबू श्यामसुन्दरदास तथा बा० गौरीशङ्करप्रसाद एवं सभा के कुछ अन्य उत्साही सदस्यों और शुभचिन्तकों के उद्योग से सभा को ऋणमुक्त करने के लिए एक विशेष चन्दा हुआ और हो रहा है कि जिस से उसके सिर का प्रायः आठ नौ वर्ष का लदा हुआ

ऋण अब दूर होता देख पड़ता है* । कदाचित् आप लोग यह स्वीकार करेंगे कि जिस सभा ने इतने दिनों से हिन्दी और तद्द्वारा आप लोगों की सेवा का बीड़ा उठा रक्खा है और अपने उद्देश्य में बहुत कुछ कृतकार्यता भी प्राप्त की है उसका केवल ऋण-मुक्त होना ही अलम् नहीं । अब उसका एक स्थायी कोष दृढ़तापूर्वक स्थापित ही हो जाना चाहिए, जो कम से कम एक लाख रुपये का अवश्य हो । ऐसा हो जाने से सभा की जड़ दृढ़ हो जायगी और उसका काम उत्तमता से चलता रहेगा । इतने दिनों में ऋण इत्यादि को छोड़ कर उसकी कुल २० वर्ष की आय डेढ़ लाख रुपया भी नहीं हो सकी है । इस पर विचार करने से हम लोगों को शायद कुछ लज्जा बोध होगी । अस्तु, अब तक जो हुआ सो हुआ, आगे के लिए हमें कटिबद्ध हो जाना चाहिए ।

३—सभा जिस उत्साह से अपना काम करती आई है सो आप लोगों से छिपा नहीं है । पहले ही साल उसके ३६ अधिवेशन हुए और उसके पीछे प्रतिवर्ष क्रम से ३१, २८, १४, २७, २७, २८, ३०, ३१, ३२, ३७, ३३, ३१, २७, ३१,२९, २९, २८, २६, और २४ अधिवेशन हुए । इन में सभा के साधारण अधिवेशन २८१ और असाधारण २९ हुए, तथा प्रबन्धकारिणी समिति के २६७ हुए । इस तरह कुल मिला कर ५७७ अधिवेशन २० साल में हुए, जिसका वार्षिक परता प्रायः २९, अधिवेशनों का पड़ता है, जो कदापि कम नहीं कहा जा सकता । आप लोग देखते होंगे कि हमारे देश में अनेक सभाएँ

---

* यह ऋण अब चुका दिया गया है ।

स्थापित होती रहती हैं, पर छः मास के पीछे उनके अधिवेशनों का पता कठिनता से लगता है। नागरी-प्रचारिणी सभा के कार्य-संचालकों का उत्साह और उनकी कार्य-परायणता का उसके २० वर्ष के निरन्तर अधिवेशनों से ही बहुत कुछ प्रमाण मिल जाता है। इतने दिनों का परता लगाने पर प्रायः हर बारहवें तेरहवें दिन एक अधिवेशन का होना पाया जाना कोई साधारण बात नहीं है और हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि समस्त भारतवर्ष में ऐसी बहुत सभाएँ न निकलेंगी कि जिनकी ऐसी कार्यपटुता सिद्ध हो सके। हमारा आप लोगों से फिर यही सविनय निवेदन है कि उसे और भी कार्यदक्षता प्रदर्शित कर सकने की सामग्री (अर्थात् आवश्यक धन) का प्रबंध आप महाशयों को अवश्य कर देना चाहिए।

४—इसके प्रधान कर्मचारी अधिक नहीं बदलते रहे हैं और नीचे दिया हुआ व्योरा शायद आप लोगों को रुचिकर हो—

सन्	नाम सभापति का	नाममंत्री का
१८९३-९४-९५	बा० राधाकृष्ण दास,	बा० श्यामसुन्दर दास, बी. ए.
१८९५-९६	रायबहादुर पं० लक्ष्मी शङ्कर मिश्र एम ए०	वही
१८९६—९७—९८	वही	बा० राधाकृष्णदास
१८९८—९९—१९००	,,	बा० श्यामसुंदरदास बी. ए.
१९००—०१	पद ख़ाली रहा	वही
१९०१—०२	रा० ब० पं० लक्ष्मीशङ्कर मिश्र एम ए०	
१९०२—०३ से १९०५—०६ तक	महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी	

१९०६—०७	वही	बा० राधाकृष्णदास
१९०७—०८–०९	म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी,	बा० जुगुलकिशोर
१९०९—१०	,,	बा० गौरीशङ्करप्रसाद बी० ए० एलएल० बी०
१९१०—११—१२	म० म० पं० आदित्यराम भट्टाचार्य एम० ए० और पं० गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा	वही तथा पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०
१९१२—१३	पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या (प्रायः ४ मास) बाद को मैं ।	,,

इन महाशयों में से मुझे छोड़ और सभी ने हिन्दी एवं सभा की अच्छी सेवा की है और कतिपय तो हिन्दी के बड़े ही प्रसिद्ध विद्वान्, लेखक और सहायक हो गये एवं आज दिन वर्तमान हैं।

५—यों तो जब से यह सभा स्थापित हुई है, इसने प्रायः उसी दिन से हिन्दी की सभी प्रकार परम प्रशंसनीय सेवा की है और जो जो काम इसने अपने हाथ में प्रारम्भ ही से उठा लिये और जिनका विस्तृत विवरण पहली ही वार्षिक रिपोर्ट में दिया हुआ है, उनकी सूची मात्र देखने से सभा के संस्थापकों का उत्साह पूर्ण रीति से प्रकट हो जाता है, पर जिन विशेष महत्त्व के कामों को सभा ने समय समय पर किया है, तथा उसके विषय में जो अन्य कथनीय बातें हैं, उनका संक्षेप में यहाँ कुछ वर्णन कर देना कदाचित् अनुचित अथवा अप्रसंग न समझा जाय।

(क) नागरी अक्षरों के प्रचार में सभा प्रथम वर्ष ही से प्रयत्न करती आती है। इस सम्बन्ध में उसने कायस्थ व वैश्य कान्फ्रेंसों

में डेपुटेशन भेज कर उन जातियों में इनके समुचित प्रचार कराने की चेष्टा की, तथा सन् १८९८ वाले उस महाप्रयत्न में योग दिया कि जो माननीय पं० मदनमोहन मालवीय और अन्य अनेक प्रतिष्ठित एवं उत्साही महापुरुषों द्वारा हुआ था और जिसके द्वारा गवर्नमेंट को नागरी-प्रचार के लिए बृहद् मेमोरियल एक महा डेपुटेशन द्वारा भेजा गया था, और जिसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९०० में सरकार ने इन प्रांतों की अदालतों व दफ़्तरों में नागराक्षरों का प्रचार कर ही दिया। कई अंशों में इसी सभा के उद्योग से अनेक देशी रियासतों के दफ़्तरों व अदालतों में भी उर्दू के ठौर हिन्दी भाषा और नागरी-अक्षरों का प्रचार हो गया है। सभा के स्थापित होने के चौथे साल कुछ ऐसी चर्चा थी कि शायद उर्दू के स्थान में संयुक्त प्रान्त में रोमन अक्षरों का प्रचार हो जाय पर सभा ने भी इसका विरोध किया और अपने विचार सप्रमाण प्रकाशित किये। अंत को हमारी न्यायशीला गवर्नमेंट ने रोमन का प्रचार करना अस्वीकार कर दिया। इसके थोड़े दिनों पीछे जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, उर्दू के साथ साथ संयुक्त प्रांत में नागरी अक्षरों का प्रचार हो गया। हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यद्यपि हमारी न्यायशीला सरकार ने नागरी-प्रचार की आज्ञा दे दी है, तथापि कतिपय व्यक्तियों, जातियों, और कक्षाओं के विरोध एवं दूसरों के निरुत्साह और लापरवाई से इन अक्षरों का अभी पूरा क्या वरन थोड़ा बहुत भी वास्तविक प्रचार हमारी अदालतों व दफ़्तरों में नहीं हो पाया है। सभा इस कार्य की पूर्ति के लिए यथा-

शक्ति सदा से उद्योग करती आई है और उसकी ओर से कई एक लेखक कतिपय ज़िलों की कचहरियों में लोगों की दरख़ास्तें नागरी में लिखने को नियत हैं तथा इस कार्य के लिए लेखकों का उत्साह बढ़ाने को उसने पारितोषिक भी नियत किये, पर अभी कुछ भी संतोषजनक सफलता दृष्टिगोचर नहीं होती! आशा है कि आप लोग इस कार्य के लिए सभा की समुचित सहायता करेंगे और स्वयं एवं अपने इष्ट मित्रों द्वारा भी इस महत् कार्य के साधन में तत्पर हो जायँगे। इसी सम्बन्ध में सभा ने प्रारम्भ ही से हिन्दी-हस्तलिपि परीक्षा भी स्थापित कर रक्खी है। यह परीक्षा समस्त संयुक्त प्रांत तथा ग्वालियर राज्य में होती है और सभा अनेक विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष पारितोषिक एवं प्रशंसा-पत्र दिया करती है।

(ख) सभा के प्रबंध से ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जन्म हुआ और उसका प्रथम अधिवेशन सभा-भवन में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी के सभापतित्व में अक्तूबर १९१० में बड़े समारोह के साथ हुआ। तब से सम्मेलन के दो और अधिवेशन प्रयाग एवं कलकत्ता में हो चुके हैं और आशा की जाती है कि वे प्रतिवर्ष होते रहेंगे तथा सम्मेलन के उद्योग से हिन्दी की अच्छी सेवा हो सकेगी।

(ग) हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के लिए भी सभा ने प्रथम वर्ष से ही उत्सुकता दिखलाई है और उसी साल सभा ने भारत सरकार एवं गवर्नमेंट पश्चिमोत्तर प्रदेश (अब संयुक्त प्रांत) व पंजाब, तथा एशियाटिक सोसायटी बंगाल को इसके

बारे में प्रार्थना-पत्र भेजे। तभी से सभा इस कार्य के उद्योग में निरंतर लगी ही रही, जिसका परिणाम यह हुआ कि सात वर्ष के पीछे सन् १९०० से हमारी प्रांतिक गवर्नमेंट की सहायता से सभा के ही द्वारा खोज का काम प्रारम्भ हो गया। इस काम से अनेक नवीन कवियों एवं ग्रंथों का पता लगा, बहुतेरे जाने हुए कवियों के अज्ञात ग्रंथ विदित हो गये, अगणित विवाद एवं शंकापूर्ण बातों का निश्चय हो गया, कई ऐतिहासिक बातों का पता चल गया, हिन्दी के कतिपय ऐसे अंग कि जिन्हें लोग निर्मूल अथवा हीन समझते थे परिपूर्ण पाये गये, हमारा बहुत से महत्त्व के विषयों पर अज्ञान दूर हुआ (यथा हिन्दी गद्य कितना प्राचीन है, खड़ी बोली की कविता कब से होती है, इत्यादि), अगणित कवियों के सन् संवत् एवं वृत्तान्तों का ठीक पता चल गया, और ऐसे ही बहुतेरे कार्य सिद्ध हुए और होते जाते हैं। नौ वर्ष तक इस काम को बा० श्यामसुन्दर दास बी० ए० ने बड़ी ही योग्यता और उत्तमता के साथ चलाया और सन् १९०९ से इस का भार मैंने ले रक्खा है। शोक का विषय है कि इस साल से गवर्नमेंट ने अपनी ५००) वार्षिक सहायता रोक दी है, जिससे हम लोग बड़ी फ़िक्र में पड़े हैं, क्योंकि धनाभाव से सभा अपने बाहुबल से इस कार्य को नहीं चला सकती, पर उसकी परमोपयोगिता की ओर दृष्टि देने से उसके बन्द करने का साहस नहीं होता। इस साल का यश तो श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर ने लिया और इस कार्य के लिए ५००) की सहायता देकर श्रीमान् ने उसे बन्द हो जाने से रोक लिया, पर आशा की जाती है कि आगामी वर्ष से हमारी

विद्यारसिक गवर्नमेंट अपनी सहायता फिर से जारी कर देगी, क्योंकि श्रीमान् छोटे लाट साहब ने हाल ही में सभा के अभिनन्दनपत्र के उत्तर में जो कुछ श्रीमुख से भाषण किया है वह अवश्य आशाजनक है। खोज की छः वार्षिक और एक त्रिवार्षिक रिपोर्टें प्रकाशित हो चुकी हैं और दूसरी त्रिवार्षिक रिपोर्ट (१९०९-११) के छपने का प्रबंध हो रहा है। इन रिपोर्टों की विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की है।

(घ) सभा आज कल तीन सामयिक पुस्तकें प्रकाशित करती है। (१) नागरी-प्रचारिणी पत्रिका तीसरे साल से ही निकलती है और इस में बड़े गम्भीर और उत्तम लेख समय समय पर निकले हैं। पहले यह त्रैमासिक थी, पर १९०८—०९ से मासिक कर दी गई है। (२) नागरीप्रचारिणी ग्रन्थमाला १९०१ से निकल रही है और इसमें विशेषतया खोज द्वारा प्राप्त उत्तम ग्रंथ ही छापे जाते हैं। यह त्रैमासिक पत्रिका है। (३) सन् १९१०—११ से एक और त्रैमासिक पत्रिका "नागरीप्रचारिणी-लेखमाला" के नाम से भी निकाली जाती है। सभा अपना वार्षिक विवरण भी प्रकाशित करती है। सभा के अधिवेशनों में व्याख्यान दिये जाते हैं और "सुबोध व्याख्यान" के नाम से सर्वसाधारण के लिए वैज्ञानिक एवं अन्य उपयोगी विषयों पर यथा समय और भी व्याख्यान होते हं, जिन में अकसर जादू (मैजिक) लालटेन इत्यादि द्वारा लोगों का मनोरंजन तथा उनकी ज्ञानवृद्धि करने का प्रयत्न किया जाता है। हिन्दी एवं सभा के विशेष सहायकों और उन्नायकों के चित्र सभाभवन में लटकाये जाते हैं। दो बार अच्छे हिन्दी-लेखकों की

सूचियाँ भी तैयार कराई जा चुकी हैं। नवें वार्षिक विवरण के पृष्ठ २२ व २३ पर हिन्दी के अनेक उत्तम ग्रंथों के नामादि दिये गये हैं, तथा प्रायः हर साल रिपोर्ट में उस वर्ष में प्रकाशित उत्तम ग्रंथों की सूची दे दी जाती है और हिन्दी की दशा पर संक्षिप्त नोट प्रकाशित किया जाता है।

(ङ) सभा ने प्रारम्भ से ही एक पुस्तकालय खोल रक्खा है, जिस में आज दिन प्रायः ६६०० पुस्तकें हिन्दी की तथा कोई ४५० अँगरेज़ी की वर्तमान हैं। इसमें अनुमान एक सौ सामयिक पत्र पत्रिकाएँ भी आया करती हैं। यह पुस्तकालय सर्वसाधारण के लिए भी देर तक सदा खुला रहता है, और इसके मेम्बर अपने मकानों पर नियमानुसार पोथियाँ मँगा सकते हैं।

कोई २५ हज़ार रुपये की लागत से सभा ने अपना भवन भी बनवा लिया है। इसी के कारण उस पर ऋण हो गया था पर अब वह शीघ्र ही चुक जायगा! सभा की ७–८ शाखा-सभाएँ भी हैं। आशा की जाती है कि वे अपने कर्त्तव्य में शिथिलता न रख कर कार्य्यपटुता दिखलाने का प्रयत्न करेंगी।

(च) समय समय पर सभा लेखकों का उत्साह बढ़ाने और उत्तम ग्रन्थ तैयार कराने के विचार से अनेक पारितोषिक, पदक (मेडल) इत्यादि देती रहती है, जैसे हिन्दी-लेखों पर मेडल, हिन्दी ग्रन्थोत्तेजक पारितोषिक, डा० छन्नूलाल मेमोरियल मेडल, ललिता पारितोषिक, कालिदास रजत मेडल, रैडिची मेडल, राधा-कृष्णदास मेडल, हिन्दी-व्याकरण के लिए ५००) पारितोषिक, इत्यादि इत्यादि। इस भाँति सभा ने अपने उद्योग से अनेक उत्तम

लेख और ग्रन्थ लिखाये हैं और निरंतर इस ओर सभा का ध्यान रहता है ।

जिस ग्रन्थ के बनवाने का ध्यान सभा को सब से पहले हुआ था वह हिन्दीसाहित्य का इतिहास है । (उसके प्रथम वर्ष की रिपोर्ट पृष्ठ ८-१० देखिए ।) यह हमारे सौभाग्य की बात है कि सभा ने इतने महत्त्व का काम हमें सौंपा और हम (मिश्र-बंधुओं अर्थात् पं० गणेशविहारी मिश्र, मैं, और शुकदेवविहारी मिश्र) ने इस काम को पूरा कर दिया । सभा की आज्ञा प्राप्त करके इस ग्रन्थ को जिस में प्रायः १८०० पृष्ठ होंगे प्रयाग की हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक मंडली इंडियन प्रेस में छपा रही है । शायद इसी साल के अंत तक यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सकेगा ।

(छ) जब से सभा स्थापित हुई है, बराबर वह हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों को तैयार कराती और प्रकाशित करती रही है । इनमें से कतिपय नामी ग्रंथों में से ये हैं—

१—तुलसीदास का रामचरितमानस अर्थात् प्रसिद्ध रामायण । इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण अनेकों प्रेसों में भारतवर्ष के सभी हिन्दी-भाषी प्रान्तों के प्रायः सभी नामी स्थानों में प्रकाशित हुए हैं, पर जहाँ तक हमारे देखने में आया है, ऐसा शुद्ध और सर्वांगपूर्ण संस्करण कहीं भी नहीं निकला ।

२—चन्दबरदाई के प्रसिद्ध रासो का इतने दिनों तक न छपना हिन्दी के लिए लज्जा का विषय था । इस बड़े अभाव को दूर करके सभा ने बड़े महत्त्व का काम कर डाला है । प्रायः यह पूर्ण ग्रन्थ

अब छप चुका है और शेषांश के कुछ ही महीनों में निकल जाने की आशा है।

३—हिन्दी-वैज्ञानिक कोश (the Hindi scientific glossary) के छपने से वैज्ञानिक ग्रन्थों के लिखने एवं अँगरेज़ी से अनुवाद करने में लेखकों को बड़ा सुभीता होने लगा है और सदा होगा। वैज्ञानिक विशेष शब्दों के लिए हिन्दी में समुचित शब्द प्रायः मिलते ही न थे और बड़ी गड़बड़ी एवं अड़चन पड़ा करती थी। यह सब कठिनाइयाँ अब दूर हो गईं। सभा ने बड़े परिश्रम और विचार के साथ यह कोश तैयार किया है।

४—वनिताविनोद अर्थात् स्त्रियों के पढ़ने योग्य एक उत्तम ग्रन्थ, जिस में कई बड़े ही विशद निबंध हैं। इसका बँगला और शायद मराठी या गुजराती में भी अनुवाद हुआ है।

५—अनेक पाठ्य पुस्तकें अर्थात् पाठशालाओं में पढ़ाई जाने लायक़ किताबें जिन का प्रचार भी हुआ।

६—हिन्दीसाहित्य का इतिहास जिस का व्योरा ऊपर दिया जा चुका है।

७—संक्षेप लेख-प्रणाली अर्थात् हिन्दी-त्वरित-लेखन (Hindi short-hand) जो छप कर तैयार हो गई है। इसके परिपक्व हो जाने पर एक भारी अभाव की पूर्ति हो जायगी।

८—अनेक नामी और उत्तम ग्रन्थ, जिनका सम्पादन और प्रकाशन ग्रन्थ-माला द्वारा हुआ है।

९—सब से बढ़ कर काम जो सभा अब कर रही है वह "हिन्दी-शब्द-सागर" अर्थात् हिन्दी-भाषा का विस्तृत कोश है।

इसके बनाने का भी ध्यान सभा को पहले ही वर्ष हुआ था और उसने श्रीमान् महाराजा साहब दर्भंगा की सहायता इस कार्य्य के लिए तभी माँगी थी । अभी इसके बनने में ५०,०००) के व्यय का बजेट हुआ है । इसका पूरा व्योरा सभा की रिपोर्ट में मिलेगा, पर इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यह बड़े ही महत्त्व का काम है और इसके तैयार हो जाने से हिन्दी की एक भारी त्रुटि दूर हो जायगी । सभा ने इसके लिए ५०००) का पारितोषिक इसके सुयोग्य सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दासजी को देना चाहा और उसके न लेने पर १००) मासिक का पुरस्कार स्वीकार करने को उनसे कहा, पर उन्होंने दोनों ही बातें अस्वीकार कर यह महत् कार्य्य बिना कुछ लिये ही करने का दृढ़ संकल्प कर लिया है । काम भली भाँति चल रहा है और आशा है कि वह शीघ्र पूर्ण हो जायगा ।

निदान सभा से जहाँ तक हो सकता है वह तन, मन, धन से हिन्दी की सेवा कर रही है । आशा है कि आप महाशय गण उसका दिनों दिन उत्साह बढ़ाते ही जाइएगा । मैं आप लोगों का बहुत सा अमूल्य समय नष्ट कर चुका हूँ और विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है । आप लोगों से क्षमा माँगता हुआ अब मैं इस व्याख्यान को यहीं समाप्त करता हूँ ।

गेरहवाँ पुष्प ।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

२१ वाँ वार्षिकोत्सव ता० ३ अगस्त १९१४ ।

सभापति का व्याख्यान* (सं० १९७१) ।

प्रिय हिन्दीप्रेमी महाशयो !

आज का दिन धन्य है कि आप इतने महाशय इस सभा के २१ वें वार्षिकोत्सव को मनाने के लिए यहाँ एकत्रित हुए हैं। परसाल तक सभा ने क्या क्या काम किये थे उस का संक्षिप्त दिग्दर्शन मैंने गत वार्षिकोत्सव के समय आप महाशयों को कराया था। अब उन्हीं बातों के दोहराने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती और आप लोगों की आज्ञा से मेरा विचार है कि सभा की गत वर्ष में जो कुछ दशा रही एवं वर्ष भर में उस ने जो काम किये और आगे जो कुछ करने का संकल्प है उस का हाल थोड़े शब्दों में सुनाऊँ। जिन महाशयों को विस्तृत रूप से उसे जानने की आकांक्षा हो वे कृपया इस वर्ष वाले सभा के वार्षिक विवरण देखने का कष्ट उठावें।

सब से पहले मैं आप लोगों एवं सभा के अन्य सभ्यों का कृतज्ञ हूँ कि आप ने गत वर्ष के लिए मुझे फिर से सभापति

---

* यह लेख पं० श्यामविहारी मिश्र की ओर से सभा के वार्षिकोत्सव में पढ़ा गया था।

निर्वाचित होने का गौरव दिया था। मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि ये शब्द साधारण शिष्टाचार के नहीं हैं वरन मैं अपनी त्रुटियों को समझते हुए सच्चे हृदय से आप लोगों को इस कृपा के लिए धन्यवाद देता हूँ ।

सन् १९१३-१४ में सभा की कुल आय १९८८८)॥।२½ हुई और व्यय हुए १७४२५।=)।१½ अब आगामी वर्ष के लिए २८०७२॥।=)। की आय एवं २७९१८) का व्यय अनुमान किया जाता है। विगत वर्ष की बचत और अमानत खाता इत्यादि की रक़मों को छोड़ कर गत वर्ष की वास्तविक आय ५०५६॥।≡)। हुई और ऐसे ही वास्तविक व्यय हुआ ४८१७॥।)।१, अर्थात् सभा की आर्थिक दशा कुल मिला कर अच्छी रही। पर इसी ठौर पर यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि समुचित रीति से जैसी आय सभा की होनी चाहिए उस से वास्तव में अभी बहुत कम होती है। हिन्दी जैसी देशव्यापिनी भाषा की मुख्य सभा की आय क्या कम से कम एक लक्ष मुद्रा भी प्रतिवर्ष न होनी चाहिए! आशा है कि हमारे संरक्षक नरपतिगण एवं अन्य उत्साही महाशय इस ओर उचित ध्यान देने की कृपा करेंगे।

इस वर्ष स्थायी कोष के लिए आय का कुछ भी अनुमान नहीं किया गया है क्योंकि एक अन्य मद में जिसका वर्णन मैं आगे करूँगा १६०००) की आय का बजट रख लिया गया है। इस सम्बंध में मैं इतना कह देना आवश्यक समझता हूँ कि स्थायी कोष को सभा का जीव समझना चाहिए और उस के बढ़ाने का समुचित उपाय निरंतर करते रहना उचित है। जब तक कम से

कम इस में दो तीन लाख रुपये एकत्रित नहीं होजाते तब तक सभा की स्थिरता श्रौर दृढ़ता निश्चित नहीं मानी जा सकती। इसके लिए समुचित प्रबंध करने का उद्योग शीघ्रही करना होगा। आज मुझे इतनी ही सूचना देने में बड़ा हर्ष है कि जो छः सात हज़ार का ऋण सभा पर कई वर्षों से चला आता था वह इस साल मुक्त होगया है। इसके लिए बा० गौरीशंकरप्रसाद जी एवं अन्य कई महाशयों का उत्साह प्रशंसनीय है।

मैं परसाल कह चुका हूँ कि सौभाग्यवश हमारी सभा के सदस्यों की संख्या में प्रारम्भ से ही प्रत्येक वर्ष कुछ न कुछ उन्नति सदाही होती रही है, यद्यपि हिन्दी जानने वालों की संख्या के सन्मुख वह कदापि सन्तोष-जनक नहीं कही जा सकती। हर्ष का विषय है कि गत वर्ष में भी इस उन्नति में बाधा नहीं पड़ी श्रौर परसाल के १३४३ सभासदों के ठौर आज दिन १३६८ महाशयों के नाम सभा के रजिस्टर में पाये जाते हैं। प्रायः लोग कहने लगते हैं कि बहुत से सभासद समय समय पर इस्तीफ़े क्यों दिया करते हैं। इस का मुख्य कारण चन्दा का तक़ाज़ा ही है। दुःख की बात है कि इस वर्ष चन्दा न देने वालों की संख्या अधिक होगई है श्रौर सम्भव है कि नियमानुसार अनेक महाशयों के नाम सभासदों के रजिस्टर से काटने पड़ें। ऐसा करने में सभा को खेद अवश्य होता है पर ऐसे महापुरुषों के नाम निकाल देनाही उचित प्रतीत होता है। मैं विश्वास करता हूँ कि इस वर्ष जिन महाशयों के नाम पुराना चन्दा बाक़ी हो वे यथासम्भव उसे अदा करदेंगे श्रौर अन्य उत्साही सदस्यगण सभासदों की संख्या

बढ़ाने में दत्तचित्त होंगे जिससे कहीं ऐसा न होने पावे कि इस वर्ष पहली बार सभासदों की संख्या में गत वर्ष की अपेक्षा कमी हो जाय । सब महाशयों को अभी से सावधान हो जाना चाहिए । हमारे मान्य और प्रसिद्ध सभासदों में से माननीय राय गंगाप्रसाद वर्मा बहादुर और प्राचीन एवं प्रसिद्ध लेखक पं० बालकृष्ण भट्ट के शरीर-पात से सभा को बहुत दुःख हुआ है ।

गत वर्ष कुल मिलाकर सभा एवं प्रबंधकारिणी समिति के १८ अधिवेशन हुए । विगत साल २४ हुए थे । सभा का कार्य इस साल भी सुचारु रीति से चला । इन अधिवेशनों की कार्य-वाही नागरीप्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुआ करती है और ऐसा होना सभी प्रकार उचित प्रतीत होता है । सभा के उत्साही सभ्यों और शुभचिंतकों को सभा का विस्तृत हाल जानते रहने की उत्सुकता रहती है और उस का पूर्ण होना आवश्यक प्रतीत होता है । इस के अतिरिक्त एक बात यह भी है कि विघ्नकारी लोगों को ये समाचार प्रकाशित होते रहने से यह कहने का अवसर नहीं मिलता कि अमुक बात नियमों के विरुद्ध हुई । यह अवश्य ठीक है कि इस से साधारण लेख उतने अधिक नहीं प्रका-शित होने पाते और पत्रिका का कुछ कलेवर इस कार्य के लिए नियत कर देना पड़ता है पर केवल साधारण लेख छापने वाले पत्र पत्रिकाएँ अनेक हैं और कोई कारण नहीं कि दो एक पत्र पत्रिकाएँ भी ऐसी न हों कि जो साधारण लेखों के अतिरिक्त ऐसे समाचार भी प्रकाशित करें ।

हिन्दी-हस्तलिखित पुस्तकों की खोज का काम इस वर्ष भी मेरे निरीक्षण में होता रहा। अब संयुक्त प्रांत के सभी ज़िलों में सरसरी तौर पर यह काम हो चुका है पर विस्तृत रीति से इस खोज का काम होने से अवश्यही अभी हिन्दी के अनेक छिपे हुए रत्न प्राप्त हो सकते हैं। अभी और स्थानों में भी काम होना आवश्यक है और पुराने गद्य के नमूने प्राप्त करने के विचार से यह भी निश्चय हुआ है कि तीर्थस्थानों के पंड़ों और पुरोहितों की बहियों की भी जाँच की जाय। दूसरी त्रयवार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित हो कर गवर्नमेंट की सेवा में भेजी जा चुकी है और आशा है कि शीघ्र (५००) साल की सरकारी सहायता फिर से मिलने लगेगी।

अनेक कारणों से इस वर्ष सभा की सामयिक पत्रिकाओं के ठीक समय पर निकलने में कुछ अड़चन पड़ी पर त्रुटियों के हटाने का प्रबंध प्रायः ठीक होगया है और आशा है कि अब ये यथासमय प्रकाशित हो सकेँगी। हिन्दी-ग्रंथ-प्रकाशन का काम ठीक ठीक चला और चल रहा है। आनन्द का विषय है कि रासो छप कर पूरा तैयार होगया है। अब केवल उस की भूमिका तैयार होनी शेष है। शब्दसागर का काम उत्तमता से चलरहा है और सर्व-साधारण तथा सरकार में उस का अच्छा सत्कार होता दीखता है। हिन्दी के उस निरंतर सेवक, बा० श्यामसुन्दरदास के उत्साह से सभा ने उन्हीं के सम्पादकत्व में "मनोरंजन ग्रंथ-माला" नामक एक सौ पोथियों की एक विशद ग्रंथावली प्रकाशित करने का संकल्प कर लिया है। यह ग्रंथावली हिन्दी के एक भारी अभाव

की पूर्ति करेगी। इस के लिए इसी वर्ष (१६०००) का चन्दा होना आवश्यक है और बजेट में उस का हिसाब लगा लिया गया है। आशा है कि हिन्दी-प्रेमी जन इस की पूर्ति में त्रुटि न रक्खेंगे ।

सभा के पुस्तकालय की सूची अब शीघ्र छपने को है। उस में ६००० से अधिक हिन्दी के ग्रंथ हैं।

अदालतों व दफ़्तरों में नागरी-प्रचार अभी समुचित रीति से नहीं हुआ। जब तक वकील, मुख़तार और अरज़ी-लेखक लोग इस पर पूरा ध्यान न देंगे तब तक सफलता होनी कठिन है। सरकार से इस मामले में उचित आज्ञाएँ निकल चुकी हैं। अब सर्व-साधारण का काम है कि उन से लाभ उठावें। हर्ष की बात है कि अभी हालही में हिन्दी जानने वाले आनरेरी मजिस्ट्रेटों को नागरी अक्षरों में लिखने पढ़ने की आज्ञा भी हमारी दयालु सरकार ने देदी है।

अब मुझे विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है पर समाप्त करने के पहले एक आवश्यक विषय पर दो चार बातें कह देना उचित प्रतीत होता है। मैं देखता हूँ कि कतिपय संस्कृत-प्रेमी महाशयों के कारण कुछ लोगों का झुकाव हिन्दी को कठिन और संस्कृत-व्याकरण से जकड़ी हुई बना देने की ओर बड़ी द्रुतगति से हो रहा है। मैं यह कदापि नहीं कहता कि संस्कृतप्रेमी होना कोई अनुचित बात है पर दुःख के साथ इतना स्वीकार करना ही पड़ेगा कि वह एक मृत भाषा है और उसकी भूलभुलैयों में डाल कर हिन्दी को भी वैसी ही बना कर हमें अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी न मारना चाहिए। यह स्पष्ट है कि यदि हिन्दी में विभक्ति,

प्रत्यय, लिंगभेद में कड़ाई, शब्दों के रूपों में अनावश्यक स्थिरता, संधि के कारण अक्षरों में परिवर्तन इत्यादि के झमेले दृढ़ता से स्थिर कर दिये जायँगे तो उस में कठिनता बहुत आजायगी और बिना पाँच सात वर्ष के विकट परिश्रम के हम लोग अपनी मातृभाषा तक बिलकुल न जान सकेंगे। इसका परिणाम किसी विचारशील पुरुष से छिपा नहीं रहना चाहिए। दुर्भाग्यवश अभी हमारे देश में विद्या का संतोषजनक प्रचार कदापि नहीं है और न बहुत शीघ्र होने की आशा की जा सकती है। ऐसी दशा में सिवा इसके हो ही क्या सकता है कि बेचारी हिन्दी की गणना भी मृत भाषाओं में हो जाय और कोई नवीन गवाँरी नष्ट भ्रष्ट बोली उसकी स्थानापन्न हो कर जनसमुदाय की भाषा बन बैठे! क्या आप लोग नहीं देखते कि आज भी कतिपय अदूर-दर्शी लोग यह कहते नहीं सकुचते कि हिन्दी कोई जीवित भाषा ही नहीं है!! क्या आप लोग वास्तव में ऐसा ही हो जाना चाहेंगे!!! यदि नहीं, तो संस्कृत के हिन्दी पर इस अनुचित आक्रमण से उसे बचाने का प्रयत्न करिए और हिन्दी की सरलता को नष्ट न होने दीजिए। यही मेरी विनय है।

छतरपुर मध्य भारत।

३० जुलाई १९१४

बारहवाँ पुष्प ।

काशी-साहित्य-सम्मेलन में वक्तृतायें (सं०१९६८)।

पं० श्यामविहारी मिश्र की वक्तृता ।

अपने बड़े सौभाग्य से मुझे एक माननीय पुरुष के सम्बन्ध में कुछ कहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी महाशय ने जिन माननीय महाशय को सभापति बनाने का प्रस्ताव किया है, उनसे समस्त युक्त प्रदेश ही क्यों समग्र भारतवर्ष भली भाँति परिचित है। जिनका सम्मान युक्तप्रदेश के प्रायः सभी पूज्य बुद्धि महाशय करते हैं, जिनका सम्मान इस देश के भिन्न भाषाभाषी भी करते हैं, जिन महाशय ने अपनी योग्यता के कारण ब्रिटिश राज्य से सम्मान प्राप्त किया है, उन्हीं पण्डित मदनमोहन मालवीय महाशय को इस सम्मेलन का सभापति बना हमें अपने को धन्य समझना चाहिए। जिस समय मालवीय जी ने हिन्दी की उन्नति का यत्न करना आरम्भ किया था, उन दिनों हिन्दी के जानने वाले बहुत थोड़े थे, और उन दिनों हिन्दी की उन्नति का यत्न करने में हिन्दी-सेवियों को अगणित असुविधाओं से सामना करना पड़ता था। मालवीय जी उन दिनों हिन्दी की उन्नति के सम्बन्ध में हिन्दी में बहुतेरी वक्तृताएं दिया करते थे। मुझे याद है कि जब मैं बहुत छोटा था, तब एक दिन मैंने मालवीयजी की वक्तृता सुनी थी। उस

से पहले कभी वैसी वक्तृता मैंने न सुनी थी। वह घड़ी मुझे आज तक भली भाँति याद है। मालवीयजी ने हिन्दी को कभी नहीं बिसारा। इसकी उन्नति का जैसा उद्योग आप पहले करते थे, वैसा ही अब भी कर रहे हैं। हिन्दी की जो उन्नति आज दिखलाई देती है, उसमें मालवीयजी का उद्योग मुख्य कहना चाहिए। आप ही के यत्न से हिन्दी को अदालतों में जगह मिली है। यह बात सब लोगों को मालूम रहनी चाहिए कि तरह तरह के कामों में फँसे रह कर भी मालवीयजी हिन्दी की प्रचुर-सेवा किया करते हैं। अभ्युदय का जन्म दे आप हिन्दी का हित कर रहे हैं। हाल में आपने "मर्य्यादा" नाम की मासिक पत्रिका निकलवा कर उसके द्वारा हिन्दी की सेवा करने का प्रयत्न किया है। इन कारणों से मेरी सम्मति में इनसे बढ़ कर इस अवसर पर हमें दूसरा सभापति नहीं मिल सकता। इसलिए मैं महा-महोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी जी के प्रस्ताव का सहर्ष अनुमोदन करता हूँ।

पंडित शुकदेवविहारी मिश्र की वक्तृता।

प्रस्ताव—यह सम्मेलन समिति को अधिकार देता है कि वह भारतवर्ष के समस्त राजों महाराजों से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की संरक्षता स्वीकार करने की प्रर्थना करे।

प्रिय सभापति और सभ्यगण!

हमारी हिन्दी को पूर्व काल से राजा महाराजाओं का आश्रय

रहा है । सबसे प्रथम कवि "पुष्य" कहा जाता है, जो श्री राजा भोज के एक पूर्व पुरुष के यहाँ रहता था । चन्द बरदाई हिन्दी भाषा का वास्तविक वाल्मीकि है और वह भी महाराजा पृथ्वीराज के आश्रय में रहता था । भूषण, विहारी, मतिराम आदि बड़े बड़े कवि राजसम्मान से ही उन्नत दशा को पहुँचे थे । यदि महाराजा शिवाजी, छत्रसाल, भगवन्तराय खीची, काशीनरेश आदि हिन्दी को न अपनाते, तो आज उसका युद्ध-वर्णन-सम्बन्धी एक बहुत बड़ा बिभाग बिलकुल शून्य सा होता । अब ईश्वर की कृपा से वह समय आ गया है कि सर्वसाधारण विद्या से बड़े बड़े पद उपलब्ध कर सकते हैं । इस एवं अन्य कारणों से कवियों को किसी के आश्रय में रह कर साहित्य-रचना की आवश्यकता नहीं रही और मध्यम श्रेणी के सैकड़ों ऐसे विद्याप्रेमी महाशय गण गद्य एवं पद्य में ग्रन्थ-रचना करते हैं, जिनकी काव्य-रचना जीविका नहीं है और जो परोपकार एवं आत्मानन्द के वास्ते ही रचना करते हैं । यह बड़े सन्तोष की बात है, पर फिर भी सर्वसाधारण में अधिकाधिक हिन्दी-प्रचार के प्रयत्नों के लिए धनव्यय और सहानुभूति की आवश्यकता है और सदैव रहेगी । 'सर्वारम्भे तन्दुलं सारभूतम्' के अनुसार प्रत्येक काम में सहानुभूति और धन की आवश्यकता रहती है । कई वर्षों से सर्कार ५००) सालाना देकर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा हिन्दी-ग्रन्थों की खोज करा रही है । जिन लोगों ने इस खोज की रिपोर्टें एवं अन्य बातों को देखा है,

ग्रौर लगता जाता है। इससे द्रष्टा हिन्दी के महत्त्व पर आश्चर्यित हो उठता है। इस थोड़े से धन-व्यय से इतना भारी काम जब होगया, तब यदि भारत के समस्त राजे महाराजे साहित्य-सम्मेलन की संरक्षता स्वीकार कर लेवें तो थोड़े दिनों में हिन्दी की न जाने कितनी उन्नति हो ग्रौर सर्वसाधारण में इसका न जाने कितना प्रचार हो जावे। इस एक काम के हो जाने से हज़ारों उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित हो सकते हैं तथा बनाये जा सकते हैं, ग्रौर हिन्दी-भाण्डार की पूर्ति में बहुत बड़ा सहारा मिल सकता है। इन कारणों से सज्जनगण ! मैं बड़े हर्ष के साथ उपरोक्त प्रस्ताव करता हूँ। आशा है कि आप सर्वसम्मत होकर एक स्वर से इसे स्वीकृत करेंगे।